CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेश्याकोश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रा० १३५

२४८

श्री फूलचंद जी सिद्धांत शास्त्री को

कृपया इस ग्रन्थको निम्नांकित तिथि पर या उसके पूर्व लौटा दें। विलम्बसे लौटानेपर ५ पैसे प्रतिदिन दण्ड देना होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेश्या-कोश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेश्या-कोश

CYCLOPÆDIA OF LEŚYĀ

प्रा० १३५

जै० द० व० सं० ०४०४

सम्पादक
मोहनलाल बाँठिया
श्रीचन्द चोरड़िया

प्रकाशक
मोहनलाल बाँठिया
१६-सी, डोवर लेन, कलकत्ता-२९
१९६६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन विषय-कोश ग्रन्थमाला
प्रथम पुष्प—लेश्या-कोश : जैन दशमलव वर्गीकरण संख्या ०४०४

प्रथम आवृत्ति १०००
मूल्य रु० १०.००

मुद्रक :
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स,
२०५, रवीन्द्र सरणि,
कलकत्ता-७ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समर्पण

उन चारित्रात्माओं, बन्धु-बांधवों तथा सहयोगियों को

जिन्होंने इस कार्य के लिये प्रेरणा दी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकलन—सम्पादन में प्रयुक्त ग्रंथों की संकेत-सूची

अणुत्त०	अणुत्तरोववाइयदसाओ
अणुओ०	अणुओगदारसुत्तं
अंगु०	अंगुत्तरनिकाय
अंत०	अंतगडदसाओ
अभिधा०	अभिधान राजेन्द्र कोश
आया०	आयारांग
आव०	आवस्सय सुत्तं
उत्त०	उत्तरज्झयणं
उवा०	उवासगदसाओ
ओव०	ओववाइयसुत्तं
कप्पव०	कप्पवंडसियाओ
कप्पसु०	कप्पसुत्तं
कप्पि०	कप्पिया
कर्म०	कर्मग्रन्थ
गोक०	गोम्मटसार कर्मकांड
गोजी०	गोम्मटसार जीवकांड
चंद०	चंदपण्णत्ति
जंबु०	जंबुदीवपण्णत्ति
जीवा०	जीवाजीवाभिगमे
ठाण०	ठाणांग
तत्त्व०	तत्त्वार्थसूत्र
तत्त्वराज०	तत्त्वार्थ राजवार्तिक
तत्त्वश्लो०	तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार
तत्त्वसर्व०	तत्त्वार्थ सर्वार्थसिद्धि
तत्त्वसिद्ध०	तत्त्वार्थ सिद्धसेन टीका
दसवे०	दशवेआलियं सुत्तं
दसासु०	दसासुयक्खंधो
नंदी०	नंदीसुत्तं
नाया०	नायाधम्मकहाओ
निरि०	निरियावलिया
निसी०	निसीहसुत्तं
पण्ण०	पंण्णवणासुत्तं
पण्हा०	पण्हावागराणं
पाइअ०	पाइअसद्दमहण्णवो
पायो०	पातंजल योग
पुचू०	पुप्फ चूलियाओ
पुप्फि०	पुप्फियाओ
विह०	विहकप्पसुत्तं
भग०	भगवई
महा०	महाभारत
राय०	रायपसेणइयं
वव०	ववहारो
वण्हि०	वण्हिदसाओ
विवा०	विवागसुत्तं
सम०	समवायांग
सूय०	सूयगडांग
सूरि०	सूरियपण्णत्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना

जैन दर्शन सूक्ष्म और गहन है तथा मूल सिद्धान्त ग्रन्थों में इसका क्रमबद्ध विषयानुक्रम विवेचन नहीं होने के कारण इसके अध्ययन में तथा इसे समझने में कठिनाई होती है। अनेक विषयों के विवेचन अपूर्ण—अधूरे हैं। अतः अनेक स्थल इस कारण से भी समझ में नहीं आते हैं। अर्थ बोध की इस दुर्गमता के कारण जैन-अजैन दोनों प्रकार के विद्वान् जैन दर्शन के अध्ययन में सकुचाते हैं। क्रमबद्ध तथा विषयानुक्रम विवेचन का अभाव जैन दर्शन के अध्ययन में सबसे बड़ी बाधा उपस्थित करता है—ऐसा हमारा अनुभव है।

कुछ वर्ष पहले इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एक अजैन प्राध्यापक मिले। उन्होंने बतलाया कि वे विश्वविद्यालय के अन्तर्गत 'नरक' विषय पर एक शोध महानिबंध लिख रहे हैं। विभिन्न धर्मों और दर्शनों में नरक और नरकवासी जीवों के सम्बन्ध में क्या वर्णन है, इसकी वे खोज कर रहे हैं तथा जैन दर्शन में इसके सम्बन्ध में क्या विवेचन किया गया है, इसकी जानकारी के लिए आये हैं। उन्होंने पूछा कि किस ग्रंथ में इस विषय का वर्णन प्राप्त होगा। हमें सखेद कहना पड़ा कि किसी एक ग्रंथ में एक स्थान पर पूरा वर्णन मिलना कठिन हैं। हमने उनको पण्णवणा, भगवई तथा जीवाजीवाभिगम—इन तीन ग्रंथों के नाम बताए तथा कहा कि इन ग्रंथों में नरक और नरकवासियों के संबंध में यथेष्ट सामग्री मिल जायगी लेकिन क्रमबद्ध विवेचन तथा विस्तृत विषय सूची के अभाव में—इन तीनों ग्रंथों का आद्योपान्त अवलोकन करना आवश्यक है।

इसी तरह एक विदेशी प्राध्यापक पूना विश्वविद्यालय में जैन दर्शन के 'लेश्या' विषय पर शोध करने के लिए आये थे। उनके सामने भी यही समस्या थी। उन्हें भी ऐसी कोई एक पुस्तक नहीं मिली जिसमें लेश्या पर क्रमबद्ध और विस्तृत विवेचन हो। उनको भी अनेक आगम और सिद्धांत ग्रन्थों को टटोलना पड़ा यद्यपि पण्णवण्णा तथा उत्तरज्झयण में लेश्या पर अलग अध्ययन है।

जब हमने 'पुद्गल' का अध्ययन प्रारंभ किया तो हमारे सामने भी यही समस्या आयी। आगम और सिद्धांत ग्रन्थों से पाठों का संकलन करके इस समस्या का हमने आंशिक समाधान किया। इस प्रकार जब-जब हमने जैन दर्शन के अन्यान्य विषयों का अध्ययन प्रारंभ किया तब-तब हमें सभी आगम तथा अनेक सिद्धांत ग्रन्थों को सम्पूर्ण पढ़कर पाठ-संकलन करने पड़े। पुराने प्रकाशनों में विषयसूची तथा शब्दसूची नहीं होने के कारण पूरे ग्रन्थों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बार-बार पढ़कर नोंध करनी पड़ी। इसी तरह जिस विषय का भी अध्ययन किया हमें सभी ग्रन्थों का आद्योपांत अवलोकन करना पड़ा। इससे हमें अनुमान हुआ कि विद्वत् वर्ग जैन दर्शन के गंभीर अध्ययन से क्यों सकुचाते हैं।

ग्रन्थों को बार-बार आद्योपांत पढ़ने की समस्या को हल करने के लिये हमने यह ठीक किया कि आगम ग्रन्थों से जैन दर्शन के महत्त्वपूर्ण विषयों का विषयानुसार पाठ-संकलन एक साथ ही कर लिया जाय। इससे जैनदर्शन के विशिष्ट विषयों का अध्ययन करने में सुविधा रहेगी। ऐसा संकलन निज के अध्ययन के काम तो आयेगा ही शोधकर्ता तथा अन्य जिज्ञासु विद्वद्वर्ग के भी काम आ सकता है।

किन ग्रन्थों से पाठ संकलन किया जाय इस विषय पर विचार कर हमने निर्णय किया कि एक सीमा करनी आवश्यक है अन्यथा आगम व सिद्धांत ग्रन्थों की बहुलता के कारण यह कार्य असम्भव सा हो जायेगा। सर्वप्रथम हमने पाठ-संकलन को ३२ श्वेताम्बर आगमों तथा तत्त्वार्थसूत्र में सीमाबद्ध रखना उचित समझा। ऐसा हमने किसी साम्प्रदायिक भावना से नहीं बल्कि आगम व सिद्धांत ग्रन्थों की बहुलता तथा कार्य की विशालता के कारण ही किया है। श्वेताम्बर आगम ग्रन्थों से संकलन कर लेने के पश्चात् दिगम्बर सिद्धांत ग्रन्थों से भी संकलन करने का हमारा विचार है।

अपनी अस्वस्थता तथा कार्य की विशालता को देखते हुए इस पाठ-संकलन के कार्य में हमने बंधु श्री श्रीचन्द चोरड़िया का सहयोग चाहा। इसके लिये वे राजी हो गये।

सर्व प्रथम हमने विशिष्ट पारिभाषिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विषयों की सूची बनाई। विषय संख्या १००० से भी अधिक हो गई। इन विषयों के सुष्ठु वर्गीकरण के लिए हमने आधुनिक सार्वभौमिक दशमलव वर्गीकरण का अध्ययन किया। तत्पश्चात् बहुत कुछ इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए हमने सम्पूर्ण जैन वाङ्मय को १०० वर्गों में विभक्त कर के मूल विषयों के वर्गीकरण की एक रूपरेखा (देखें पृ० 14) तैयार की। यह रूपरेखा कोई अंतिम नहीं है। परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा संशोधन की अपेक्षा भी इसमें रह सकती है। मूल विषयों में से भी अनेकों के उपविषयों की सूची भी हमने तैयार की है। उनमें से जीव-परिणाम (विषयांकन ०४) की उपविषय सूची पृ० 17 पर दी गई है। जीव परिणाम की यह उपसूची भी परिवर्तन, परिवर्द्धन व संशोधन की अपेक्षा रख सकती है। विद्वद्वर्ग से निवेदन है कि वे इन विषय-सूचियों का गहरा अध्ययन करें तथा इनमें परिवर्तन, परिवर्द्धन व संशोधन सम्बन्धी अथवा अपने अन्य बहुमूल्य सुझाव भेज कर हमें अनुगृहीत करें।

पाठ-संकलन का कार्य पहले विभिन्न ग्रन्थों से लिख-लिखकर प्रारंभ किया गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाद में हमें ऐसा अनुभव हुआ कि इतने ग्रन्थों से इतने अधिक विषयोपविषयों के पाठ लिख-लिख कर संकलन करना श्रम व समय साध्य नहीं होगा। अतः हमने 'कतरन' पद्धति का अवलंबन किया। कतरन के लिए हमने प्रत्येक ग्रन्थ की दो-दो प्रकाशित प्रतियाँ संग्रह कीं। एक प्रति से सामने के पृष्ठ के पाठों का तथा दूसरी प्रति से उसी पृष्ठ की पीठ पर छपे हुए पाठों का कतरन कर संकलन किया। प्रत्येक विषय-उपविषय के लिये हमने अलग-अलग फाइलें बनाई। कतरन के साथ-साथ विषयानुसार फाइल करने का कार्य भी होता रहा। इस पद्धति को अपनाने से पाठ-संकलन में यथेष्ट गति आ गई और कार्य आशा के विपरीत बहुत कम समय में ही सम्पन्न हो गया।

कतरन व फाइल करने का कार्य पूरा होने के बाद हमने संकलित विषयों में से किसी एक विषय के पाठों का सम्पादन करने का विचार किया।

सम्पादन का पहला विषय हमने 'नारकी जीव' चुना था क्योंकि जीव दण्डक में इसका प्रथम स्थान है। सम्पादन का काम बहुत-कुछ आगे बढ़ चुका था तथा 'साप्ताहिक जैन भारती' में क्रमशः प्रकाशित भी हो रहा था लेकिन बंधुओं का उपालम्भ आया कि प्रथम कार्य का विषय अच्छा नहीं चुना गया। उनका सुझाव रहा कि 'नारकी जीव' को छोड़ कर कोई दूसरा विषय लो। अतः इस विषय को अधूरा छोड़कर हमने किसी दूसरे विशिष्ट दार्शनिक व पारिभाषिक महत्त्व के विषय का चयन करने का विचार किया। इस चयन में हमारी दृष्टि 'लेश्या' पर केन्द्रित हुई क्योंकि यह जैन दर्शन का एक रहस्यमय विषय है तथा जिसकी व्याख्या कोई भी प्राचीन आचार्य भलीभाँति असंदिग्ध रूप में नहीं कर सके हैं। इसीलिए हमने सम्पादन के लिए 'लेश्या' विषय को ग्रहण किया।

सम्पादन में निम्नलिखित तीन बातों को हमने आधार माना है :—

१. पाठों का मिलान,
२. विषय के उपविषयों का वर्गीकरण तथा
३. हिन्दी अनुवाद।

३२ आगमों से संकलित पाठों के मिलान के लिए हमने तीन मुद्रित प्रतियों की सहायता ली है जिनमें एक 'सुत्तागमे' को लिया तथा बाकी दो अन्य प्रतियाँ लीं। इन दोनों प्रतियों में से एक को हमने मुख्य माना। इन तीनों प्रतियों में यदि कहीं कोई पाठान्तर मिला तो साधारणतः हमने मुख्य प्रति को प्रधानता दी है। यह मुख्य प्रति संकलन-सम्पादन अनुसंधान में प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची में प्रति 'क' के रूप में उल्लिखित है। यदि कोई विशिष्ट पाठान्तर मिला तो उसे शब्द के बाद ही कोष्ठक में दे दिया है।

संदर्भ सब प्रति 'क' से दिये गये हैं तथा पृष्ठ संख्या 'सुत्तागमे' से दी गयी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहाँ लेश्या सम्बन्धी पाठ स्वतंत्र रूप में मिल गया है वहाँ हमने उसे उसी रूप में ले लिया है लेकिन जहाँ लेश्या के पाठ अन्य विषयों के साथ सम्मिश्रित हैं वहाँ हमने निम्न-लिखित दो पद्धतियाँ अपनाई हैं :—

१. पहली पद्धतिमें हमने सम्मिश्रित पाठों से लेश्या सम्बंधी पाठ अलग निकाल लिया है तथा जिस संदर्भ में वह पाठ आया है उस संदर्भ को प्रारम्भ में कोष्ठक में देते हुए उसके बाद लेश्या सम्बंधी पाठ दे दिया है, यथा—भग० श ११। उ १ का पाठ। इसमें उत्पल वनस्पतिकाय के सम्बंध में विभिन्न विषयों को लेकर पाठ है। हमने यहाँ लेश्या सम्बन्धी पाठ लिया है तथा उत्पल सम्बन्धी पाठ को पाठ के प्रारम्भ में कोष्ठक में दे दिया है—

(उप्पले णं एगपत्तए) ते णं भंते ! जीवा किं कण्हलेसा नीललेसा काऊलेसा तेऊलेसा ? गोयमा ! कण्हलेसे वा जाव तेऊलेसे वा कण्हलेस्सा वा नीललेस्सा वा काऊलेस्सा वा तेऊलेस्सा वा अहवा कण्हलेसे य नीललेसे य एवं एए दुयासंजोगतियया-संजोगचउक्कसंजोगेणं असीइ भंगा भवंति—विषयांकन '५३'१५'६। पृ० ६६।

२. दूसरी पद्धति में हमने सम्मिश्रित विषयों के पाठों में से जो पाठ लेश्या से सम्बन्धित नहीं हैं उनको वाद देते हुए लेश्या सम्बंधी पाठ ग्रहण किया है तथा वाद दिए हुए अंशों को तीन क्रॉस (xxx) चिह्नों द्वारा निर्देशित किया है, यथा—भग० श २४। उ १। प्र ७, १२—**पज्जत्ता (त्त) असन्नि पंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु उववज्जित्तए xxx तेसि णं भंते जीवाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! तिन्नि लेस्साओ पन्नत्ताओ। तं जहा कण्हलेस्सा, नील-लेस्सा, काऊलेस्सा**—विषयांकन '५८'१'१। गमक १। पृ० १००। इस उदाहरण में हमने प्रश्न ७ से प्रारम्भिक पाठ लेकर अवशेष पाठ को वाद दे दिया है तथा उसे क्रॉस चिह्नों द्वारा निर्देशित कर दिया है। प्रश्न ८, ६, १० तथा ११ को भी हमने वाद दे कर प्रश्न १२ जो कि लेश्या सम्बन्धी है ग्रहण कर लिया है। कई जगहों पर इन पद्धतियों के अपनाने में असुविधा होने के कारण हमने पूरा का पूरा पाठ ही दे दिया है।

मूल पाठों में संक्षेपीकरण होने के कारण अर्थ को प्रकट करने के लिए हमने कई स्थलों पर स्वनिर्मित पूरक पाठ कोष्ठक में दिए हैं, यथा —**कडजुम्मकडजुम्म सन्निपंचिंदिया णं भंते! ×××(कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ) ? कण्हलेस्सा जाय सुक्कलेस्सा। ××× एवं सोलससु वि जुम्मेसु भाणियव्वं**— विषयांकन '८६'६। पृ० २२०। यहाँ **'कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ'** पाठ जो कोष्टक में है सूत्र संक्षेपीकरण में वाद पड़ गया था उसे हमने अर्थ की स्पष्टता के लिए पूरक रूप में दे दिया है।

वर्गीकृत उपविषयों में हमने मूल पाठों को अलग-अलग विभाजित करके भी दिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है यथा—'एवं सक्करप्पभाएऽवि'—विषयांकन '५३'३। पृ० ६३। कहीं-कहीं समूचे मूल पाठ को एक वर्गीकृत उपविषय में देकर उस पाठ में निर्दिष्ट अन्य वर्गीकृत उपविषयों में उक्त मूल पाठ को वार-बार उद्धृत न करके केवल इंगित कर दिया है, यथा—'५८'३१'१ में '५८'३०'१ के पाठ को इंगित किया गया है।

प्रत्येक विषय के संकलित पाठों तथा अनुसंधित पाठों का वर्गीकरण करने के लिए हमने प्रत्येक विषय को १०० वर्गों में विभाजित किया है तथा आवश्यकतानुसार इन सौ वर्गों को दस या दस से कम मूल वर्गों में भी विभाजित करने का हमारा विचार है।

सामान्यतः सभी विषयों के कोशों में निम्नलिखित वर्ग अवश्य रहेंगे—

'० शब्द विवेचन (मूल वर्ग),

'०१ शब्द की व्युत्पत्ति—प्राकृत, संस्कृत तथा पाली भाषाओं में,

'०२ पर्यायवाची शब्द—विपरीतार्थक शब्द,

'०३ शब्द के विभिन्न अर्थ,

'०४ सविशेषण—सप्रमास शब्द,

'०५ परिभाषा के उपयोगी पाठ,

'०६ प्राचीन आचार्यों द्वारा की गई परिभाषा,

'०७ भेद-उपभेद,

'०८ शब्द सम्बन्धी साधारण विवेचन,

'९ विविध (मूल वर्ग),

'९९ विषय सम्बन्धी फुटकर पाठ तथा विवेचन।

अन्य सब मूल वर्ग या उपवर्ग संकलित पाठों के आधार पर बनाए जायंगे।

लेश्या-कोश में हमने निम्नलिखित मूल वर्ग रखे हैं—

'० शब्द-विवेचन

'१ द्रव्यलेश्या (प्रायोगिक)

'३ द्रव्यलेश्या (विस्रसा)

'४ भावलेश्या

'५ लेश्या और जीव

'६ सलेशी जीव

'९ विविध

इन ९ मूलवर्गों में से शब्द-विवेचन ८ उपवर्गों में, द्रव्य-लेश्या (प्रायोगिक) १९ उपवर्गों में, द्रव्यलेश्या (विस्रसा) ५ उपवर्गों में, भावलेश्या ९ उपवर्गों में, लेश्या और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव ६ उपवर्गों में, सलेशी जीव २६ उपवर्गों में तथा विविध ६ उपवर्गों में विभाजित किए गए हैं।

यथासम्भव वर्गीकरण की सब भूमिकाओं में एकरूपता रखी जायगी।

लेश्या का विषयांकन हमने ०४०४ किया है। इसका आधार यह है कि सम्पूर्ण जैन वाङ्मय को १०० भागों में विभाजित किया गया है (देखें मूलवर्गीकरण सूची पृ० 14) इसके अनुसार जीव-परिणाम का विषयांकन ०४ है। जीव परिणाम भी सौ भागों में विभक्त किया गया है (देखें जीव-परिणाम वर्गीकरण सूची पृ० 17)। इसके अनुसार लेश्या का विषयांकन ०४ होता है। अतः लेश्या का विषयांकन हमने ०४०४ किया है। लेश्या के अन्तर्गत आनेवाले विषयों के आगे दशमलव का चिह्न हैं, जैसे '५८ तथा '५८ के उपवर्ग के आगे फिर दशमलव का चिह्न है, जैसे '५८'२ तथा '५८'२ के विषय का उपविभाजन होने से इसके बाद आने वाली संख्या के आगे भी दशमलव विन्दु रहेगा (देखें चार्ट पृ० 18, 19)।

सामान्यतः अनुवाद हमने शाब्दिक अर्थ रूप ही किया है लेकिन जहाँ विषय की गम्भीरता या जटिलता देखी है वहाँ अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विवेचनात्मक अर्थ भी किया है। विवेचनात्मक अर्थ करने के किये हमने सभी प्रकार की टीकाओं तथा अन्य सिद्धान्त ग्रंथों का उपयोग किया है। छद्मस्थता के कारण यदि अनुवाद में या विवेचन करने में कहीं कोई भूल, भ्रांति व त्रुटि रह गई हो तो पाठकवर्ग सुधार लें।

वर्गीकरण के अनुसार—जहाँ मूल पाठ नहीं मिला है अथवा जहाँ मूल पाठ में विषय स्पष्ट रहा है वहाँ मूल पाठ के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हमने टीकाकारों के स्पष्टीकरण को भी अपनाया है तथा स्थान-स्थान पर टीका का पाठ भी उद्धृत किया है।

यद्यपि हमने संकलन का काम आगम ग्रन्थों तक ही सीमित रखा है तथापि सम्पादन, वर्गीकरण तथा अनुवाद के काम में निर्युक्ति, चूर्णि, वृत्ति, भाष्य आदि टीकाओं का तथा अन्य सिद्धान्त ग्रन्थों का भी आवश्यकतानुसार उपयोग करने का हमारा विचार है।

हमें खेद है कि हमारी छद्मस्थता के कारण तथा प्रूफरीडिंग की दक्षता के अभाव में तथा मुद्रक के कर्मचारियों के प्रमादवश अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं। हमने अशुद्धियों को तीन भागों में विभक्त किया है—१—मूलपाठ की अशुद्धि, २—संदर्भ की अशुद्धि तथा ३—अनुवाद की अशुद्धि। आशा है पाठकगण अशुद्धियों की अधिकता के लिए हमें क्षमा करेंगे तथा आवश्यकतानुसार संशोधन कर लेंगे। शुद्धि-पत्र पुस्तक के शेष में दिए गये हैं। भविष्य में इस वार के प्राप्त अनुभव से अशुद्धियाँ नहीं रहेंगी ऐसी आशा है।

लेश्या-कोश हमारी कोश परिकल्पना का परीक्षण (ट्रायल) है। अतः इसमें प्रथमानुभव की अनेक त्रुटियाँ हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। लेकिन इस प्रकाशन से हमारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिकल्पना में पुष्टता तथा हमारे अनुभव में यथेष्ट समृद्धि हुई है इस में कोई सन्देह नहीं है। पाठक वर्ग से सभी प्रकार के सुझाव अभिनन्दनीय हैं चाहे वे सम्पादन, वर्गीकरण, अनुवाद या अन्य किसी प्रकार के हों। आशा है इस विषय में विद्वद्वर्ग का हमें पूरा सहयोग प्राप्त होगा।

दिगम्बर ग्रन्थों से लेश्या सम्बन्धी पाठ-संकलन अधिकांशतः हमने कर लिया है। इसमें श्वेताम्बर पाठों से समानता, भिन्नता, विविधता तथा विशेषता देखी है तथा कितनी ही ही बातें जो श्वेताम्बर ग्रन्थों में हैं दिगम्बर ग्रन्थों में नहीं भी हैं। हमारे विचार में दिगम्बर लेश्या-कोश को भी प्रकाशित करना आवश्यक है। लेकिन इसको प्रकाशित करने का निर्णय हम इस लेश्या-कोश पर विद्वानों की प्रतिक्रियाओं को जानकर ही करेंगे। इसमें पाठों का वर्गीकरण इस पुस्तक की पद्धति के अनुसार ही होगा लेकिन दिगम्बरीय भिन्नता, विविधता तथा विशेषता को वर्गीकरण में यथोपयुक्त स्थान दिया जायगा। वर्गीकरण के अनुसार पाठों को सजाना हम शीघ्र ही प्रारम्भ कर रहे हैं।

क्रियाकोश की हमारी तैयारी प्रायः सम्पूर्ण हो चुकी है।

यद्यपि हमने इस पुस्तक का मूल्य १०·०० रुपया रखा है लेकिन वह विषयनुरूप ही है क्योंकि इस संस्करण की सर्व प्रतियाँ हम निर्मूल्य वितरित कर रहे हैं। वितरण भारतीय तथा विदेशी विश्वविद्यालयों में, भारतीय विद्या संस्थानों में तथा विदेशी प्राच्य संस्थानों में, श्वेताम्बर-दिगम्बर जैन विद्वानों में, अजैन दार्शनिक विद्वानों में, विशिष्ट विदेशी प्राच्य विद्वानों में, विशिष्ट भारतीय भंडारों तथा देशी व विदेशी विशिष्ट पुस्तकालयों में अधिकांशतः सीमित रहेगा।

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के पुस्तकाध्यक्षों तथा श्रीमती हीराकुमारी बोथरा व्याकरण-सांख्य-वेदान्ततीर्थ के हम बड़े आभारी हैं जिन्होने हमारे संपादन के कार्य में प्रयुक्त अधिकांश पुस्तकें हमें देकर पूर्ण सहयोग दिया। श्री अगर चन्द नाहटा, श्री मोहन लाल बैद, डा० सत्यरंजन बनर्जी तथा दिवंगत आत्मा मदन चन्द गोठी के भी हम कम आभारी नहीं हैं जो हमें इस कार्य के लिए सतत प्रेरणा तथा उत्साह देते रहे। श्री दामोदर शास्त्री एम० ए० जिन्होंने हमारी तरफ प्रूफ शुद्धि में हमें सहायता की उन्हें भी हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। सुराना प्रिंटिंग वर्क्स तथा उसके कर्मचारी भी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने इस पुस्तक का सुंदर मुद्रण किया है।

आषाढ़ शुक्ला दशमी, — **मोहनलाल बाँठिया**
वीर संवत् २४९३. — **श्रीचन्द चोरड़िया**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन वाङ्मय का दशमलव वर्गीकरण

मूल विभागों की रूपरेखा

जै० द० व० सं०	यू० डी० सी० संख्या
०—जैन दार्शनिक पृष्ठभूमि	+
०१—लोकालोक	५२३·१
०२—द्रव्य—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य	+
०३—जीव	१२८ तुलना ५७७
०४—जीव-परिणाम	+
०५—अजीव-अरूपी	११४
०६—अजीव-रूपी—पुद्गल	११७ तुलना ५३६
०७—पुद्गल-परिणाम	+
०८—समय—व्यवहार-समय	११५ तुलना ५२६
०९—विशिष्ट सिद्धान्त	+
१—जैन दर्शन	१
११—आत्मवाद	१२
१२—कर्मवाद—आस्रव-बंध-पाप-पुण्य	+
१३—क्रियावाद—संवर-निर्जरा-मोक्ष	+
१४—जैनेतरवाद	१४
१५—मनोविज्ञान	१५
१६—न्याय-प्रमाण	१६
१७—आचार-संहिता	१७
१८—स्याद्वाद-नयवाद-अनेकान्तादि	+
१९—विविध दार्शनिक सिद्धान्त	+
२—धर्म	२
२१—जैन धर्म की प्रकृति	२१
२२—जैन धर्म के ग्रन्थ	२२
२३—आध्यात्मिक मतवाद	२३
२४—धार्मिक जीवन	२४
२५—साधु-साध्वी-यति-भट्टारक-क्षुल्लकादि	२५
२६—चतुर्विध संघ	२६
२७—जैन का साम्प्रदायिक इतिहास	२७
२८—सम्प्रदाय	२८
२९—जैनेतर धर्म : तुलनात्मक धर्म	२९
३—समाज विज्ञान	३
३१—सामाजिक संस्थान	+

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जै० द० व० सं०	यू० डी० सी० संख्या
३२—राजनीति	३२
३३—अर्थ शास्त्र	३३
३४—नियम-विधि-कानून-न्याय	३४
३५—शासन	३५
३६—सामाजिक उन्नयन	३६
३७—शिक्षा	३७
३८—व्यापार-व्यवसाय-यातायात	३८
३९—रीति-रिवाज—लोक-कथा	३९
४—भाषा विज्ञान—भाषा	**४**
४१—साधारण तथ्य	४१
४२—प्राकृत भाषा	४९१·३
४३—संस्कृत भाषा	४९१·२
४४—अपभ्रंश भाषा	४९१·३
४५—दक्षिणी भाषाएँ	४९४·८
४६—हिन्दी	४९१·४३
४७—गुजराती-राजस्थानी	४९१·४
४८—महाराष्ट्री	४९१·४६
४९—अन्यदेशी—विदेशी भाषाएँ	४९१
५—विज्ञान	**५**
५१—गणित	५१
५१—खगोल	५२
५३—भौतिकी-यांत्रिकी	५३
५४—रसायन	५४
५५—भूगर्भ विज्ञान	५५
५६—पुराजीव विज्ञान	५६
५७—जीव विज्ञान	५७
५८—वनस्पति विज्ञान	५८
५९—पशु विज्ञान	५९
६—प्रयुक्त विज्ञान	**६**
६१—चिकित्सा	६१
६२—यांत्रिक शिल्प	६२
६३—कृषि-विज्ञान	६३
६४—गृह विज्ञान	६४
६५— +	+

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जै० द० व० सं०	यू० डी० सी० संख्या
६६-- रसायन शिल्प	६६
६७ -- हस्त शिल्प वा अन्यथा	६७
६८—विशिष्ट शिल्प	६८
६९—वास्तु शिल्प	६९
७—कला-मनोरंजन-क्रीड़ा	७
७१—नगरादि निर्माण कला	७१
७२—स्थापत्य कला	७२
७३—मूर्तिकला	७३
७४—रेखांकन	७४
७५—चित्रकारी	७५
७६—उत्कीर्णन	७६
७७—प्रतिलिपि -- लेखन-कला	७७
७८—संगीत	७८
७९—मनोरंजन के साधन	७९
८—साहित्य	८
८१—छंद-अलंकार-रस	८१
८२—प्राकृत साहित्य	+
८३ - संस्कृत जैन साहित्य	+
८४—अपभ्रंश जैन साहित्य	+
८५—दक्षिणी भाषा में जैन साहित्य	+
८६— हिन्दी भाषा में जैन साहित्य	+
८७—गुजराती-राजस्थानी भाषा में जैन साहित्य	+
८८—महाराष्ट्री भाषा में जैन साहित्य	+
८९—अन्य भाषाओं में जैन साहित्य	+
९—भूगोल-जीवनी-इतिहास	९
९१—भूगोल	९१
९२—जीवनी	९२
९३—इतिहास	९३
९४—मध्य भारत का जैन इतिहास	+
९५—दक्षिण भारत का जैन इतिहास	+
९६—उत्तर तथा पूर्व भारत का जैन इतिहास	+
९७—गुजरात-राजस्थान का जैन इतिहास	+
९८—महाराष्ट्र का जैन इतिहास	+
९९—अन्य क्षेत्र व वैदेशिक जैन इतिहास	+

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

०४ जीव परिणाम का वर्गीकरण

०४०० सामान्य विवेचन

०४०१ गति
०४०२ इन्द्रिय
०४०३ कषाय
०४०४ लेश्या
०४०५ योग
०४०६ उपयोग
०४०७ ज्ञान
०४०८ दर्शन
०४०९ चारित्र
०४१० वेद

०४११ शरीर
०४१२ अवगाहना
०४१३ पर्याप्ति
०४१४ प्राण
०४१५ आहार
०४१६ योनि
०४१७ गर्भ
०४१८ जन्म-उत्पत्ति-उत्पाद
०४१९ स्थिति
०४२० मरण-च्यवन-उद्वर्तन

०४२१ वीर्य
०४२२ लब्धि
०४२३ करण
०४२४ भाव
०४२५ अध्यवसाय
०४२६ परिणाम
०४२७ ध्यान
०४२८ संज्ञा
०४२९ मिथ्यात्व
०४३० सम्यक्त्व

०४३१ वेदना
०४३२ सुख
०४३३ दुःख
०४३४ अधिकरण
०४३५ प्रमाद
०४३६ ऋद्धि
०४३७ अगुरुलघु
०४३८ प्रतिघातित्व
०४३९ पर्याय
०४४० रूपत्व-अरूपत्व

०४४१ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य
०४४२ अस्ति-नित्य-अवस्थितत्व
०४४३ शाश्वतत्व
०४४४ परिस्पंदन
०४४५ संसार संस्थान काल
०४४६ संसारस्थत्व-असिद्धत्व
०४४७ भव्याभव्यत्व
०४४८ परित्त्वापरित्त्व
०४४९ प्रथमाप्रथम
०४५० चरमाचरम

०४५१ पाक्षिक
०४५२ आराधना-विराधना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूल वर्गों के

० जैन दार्शनिक पृष्ठभूमि →	०० सामान्य विवेचन	०० सामान्य विवेचन	० शब्द-विवेचन
		०१ गति	·१ } द्रव्यलेश्या
		०२ इन्द्रिय	·२ } (प्रायोगिक)
१ जैन दर्शन	०१ लोकालोक	०३ कषाय	
		०४ लेश्या →	·३ द्रव्यलेश्या
		०५ योग	(विस्रसा)
२ धर्म	०२ द्रव्य	०६ उपयोग	
		०७ ज्ञान-अज्ञान	·४ भावलेश्या
		०८ दर्शन	
३ समाज विज्ञान	०३ जीव	०९ चारित्र	
		१० वेद	·५ लेश्या और जीव →
		११ शरीर	
४ भाषा विज्ञान	०४ जीव-परिणाम →	१२ अवगाहना	
		१३ पर्याप्ति	·६ }
		१४ प्राण	·७ } सलेशी जीव
५ विज्ञान	०५ अजीव-अरूपी	१५ आहार	·८ }
		१६ योनि	
		१७ गर्भ	
६ प्रयुक्त विज्ञान	०६ अजीव-रूपी पुद्गल	१८ जन्म उत्पत्ति-उत्पाद	·९ विविध
		१९ स्थिति	
		२० मरण-च्यवन-उद्वर्तन	
७ कला-मनोरंजन-क्रीड़ा	०७ पुद्गल-परिणाम	२१ वीर्य	
		२२ लब्धि	
		२३ करण	
८ साहित्य	०८ समय, व्यवहार-समय	२४ भाव	
		२५ अध्यवसाय	
		२६ परिणाम	
९ भूगोल-जीवनी-इतिहास	०९ विशिष्ट सिद्धान्त	२७ ध्यान	
		२८ संज्ञा	
		आदि	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपविभाजन का उदाहरण

·५१ लेश्या की अपेक्षा जीव के भेद

·५२ लेश्या की अपेक्षा जीव की वर्गणा

·५३ विभिन्न जीवों में कितनी लेश्या

·५४ विभिन्न जीव और लेश्या-स्थिति

·५५ लेश्या और गर्भ-उत्पत्ति

·५६ जीव और लेश्या-समपद

·५७ लेश्या और जीव का उत्पत्ति-मरण

·५८ किसी एक योनि से स्व/पर योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में कितनी लेश्या →

·५९ जीव समूहों में कितनी लेश्या

·५८·१ रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में

·५८·२ शर्कराप्रभा०

·५८·३ वालुकाप्रभा०

·५८·४ पंकप्रभा०

·५८·५ धूमप्रभा०

·५८·६ तमप्रभा०

·५८·७ तमतमाप्रभा०

·५८·८ असुरकुमार०

·५८·९ नागकुमार यावत् स्तनितकुमार०

·५८·१० पृथ्वीकायिक० →

·५८·११ अप्कायिक०

·५८·१२ अग्निकायिक०

·५८·१३ वायुकायिक०

·५८·१४ वनस्पतिकायिक०

·५८·१५ द्वीन्द्रिय०

·५८·१६ त्रीन्द्रिय०

·५८·१७ चतुरिन्द्रिय०

५८ १८ पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि०

·५८·१९ मनुष्य योनि०

·५८·२० वानव्यंतर देव०

·५८·२१ ज्योतिषी देव०

·५८·२२ सौधर्म देव०

·५८·२३ ईशान देव०

आदि

·५८·१०·१ स्वयोनि से

·५८·१०·२ अप्कायिक योनि से

·५८·१०·३ अग्निकायिक योनि से

·५८·१०·४ वायुकायिक योनि से

·५८·१०·५ वनस्पतिकायिक योनि से

·५८·१०·६ द्वीन्द्रिय से

·५८·१०·७ त्रीन्द्रिय से

·५८·१०·८ चतुरिन्द्रिय से

·५८·१०·९ असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से

·५८·१०·१० संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से

·५८·१०·११ असंज्ञी मनुष्य से

·५८·१०·१२ संज्ञी मनुष्य से

·५८·१०·१३ असुरकुमार देवों से

·५८·१०·१४ नागकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों से

·५८·१०·१५ वानव्यंतर देवों से

·५८·१०·१६ ज्योतिषी देवों से

·५८·१०·१७ सौधर्म देवों से

·५८·१०·१८ ईशान देवों से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

FOREWORD

It gives me immense pleasure to introduce to the world of orientalists this valuable reference book, entitled Leśyā-kośa, compiled by Mr. Mohan Lal Banthia and his assistant Mr. Shrichand Choraria who is a student at our Institute. It is a specimen volume of a larger project prepared by Mr. Banthia to compile a series of such volumes on various subjects of Jainism, enlisted in a comprehensive and exhaustive catalogue that is under preparation by him. The compilers do not claim that the volume is an exhaustive and complete reference book on the subject as contained in the literature that is extant and available in print and manuscripts, accepted by the Digambara and the Śvetāmbara sects of Jainism. In fact, Mr. Banthia has proposed to publish another volume on the subject, containing the references to the subject embodied in the Digambara literature. The Leśyā-kośa will inspire the scholars of Jainism for a critical study of the subject, leading to a clear formulation and evaluation of the doctrine and its bearing on the metaphysical speculations of ancient India.

The concept of leśyā is a vital part of the Jaina doctrine of karman. Every activity of the soul is accompanied by a corresponding change in the material organism, subtle or gross. The leśyā of a soul has also such double aspect—one affecting the soul and the other its physical attachment. The former is called bhāva-leśyā, and the latter is known as dravya-leśyā. A detailed account of the mental and moral changes in the soul[1] and also an elaborate description of the material properties of various leśyās[2] are recorded in the Jaina scripture and its commentaries.

In the Ājīvika, the Buddhist and the Brāhmaṇical thought also, ideas similar to the Jaina concept of leśyā are found recorded. The leśyā *qua* matter is the 'colour-matter' accompanying the various gross

1. Pp. 251-3 (of the text).
2. Pp. 20ff.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

and subtle physical attachments of the soul.[3] This is the dravya-leśyā. The corresponding state of the soul of which the dravya-leśyā is the outward expression is bhāva-leśyā.[4] The dravya-leśyā, being composed of matter, has all the material properties *viz.* colour, taste, smell and touch. But its nomenclature as kṛṣṇa (black), nīla (dark blue), kāpota (grey, black-red[5]), tejas (fiery, red[6]), padma (lotus-coloured, yellow[7]) and śukla (white), is framed after its colour which appears to be its salient feature. The use of colour-names to indicate spiritual development was popular among the Ājīvikas and the leśyā concept of the Jainas seems to have had a similar origin. The Buddhists appear to have given a spiritual interpretation to the Ājīvika theory of six abhijātis and the Brāhmaṇical thinkers linked the colours to the various states of sattva, rajas and tamas.[8]

Although it is difficult to determine the chronology of these ideas in these religions, there should be no doubt that the concept of leśyā was an integral part of Jaina metaphysics in its most ancient version. The later Jaina thinkers made attempts at knitting up the doctrine of karman, placing the concept of leśyā at its proper place in the texture.

As regards the etymology of the word leśyā (Prakrit, lessā, lesā), I would like to suggest its derivation from √śliṣ 'to burn'[9], with its meaning extended to the sense—'shining in some colour'. This connotation and others allied to it appear to explain satisfactorily the senses of scriptural phrases containing the word lessā, collected on pages 4 and 5 of the leśyā-kośa. Dr. Jacobi's derivation of the term from kleśa[10] does not appear plausible, as the kaṣāya (the Jaina equivalent of kleśa) has no necessary connection with the leśyā, and the various

3. P. 10 (line 5) ; also p. 13 (line 11).
4. P. 9 (lines 21ff).
5. P. 45 (line 13).
6. P. 45 (line 13).
7. P. 45 (line 14).
8. Pp. 254-7 ; also Glasenapp : The Doctrine of Karman in Jaina Philosophy, p. 47, fn 2 ; Pandit Sukhlalji : Jain Cultural Research Society (Varanasi) Patrikā No. 15, pp. 25-6.
9. Śriṣu-śliṣu-pruṣu-pluṣu dāhe—Pāṇinīya-Dhātupāṭha, 701-4.
10. Glasenapp : op. cit., p. 47, fn 1.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

usages of the word (leśyā) found in the Jaina scripture do not imply such connotation.

Three alternative theories have been proposed by commentators to explain the nature of leśyā. In the first theory, it is regarded as a product of passions (kaṣāya-nisyanda), and consequently as arising on account of the rise of the kaṣāya-mohanīya karman. In the second, it is considered as the transformation due to activity (yoga-pariṇāma), and as such originating from the rise of karmans which produce three kinds of activity (physical, vocal and mental). In the third alternative, the leśyā is conceived as a product of the eight categories of karman (jñānāvaraṇīya, etc.), and as such accounted as arising on account of the rise of the eight categories of karman. In all these theories, the leśyā is accepted as a state of the soul, accompanying the realization (audayika-bhāva) of the effect of karman.[11]

Of these theories, the second theory appears plausible. The leśyā, in this theory, is a transformation (pariṇati) of the śarīra-nāmakarman (body-making karman),[12] effected by the activity of the soul through its various gross and subtle bodies—the physical organism (kāya), speech-organ (vāk), or the mind-organ (manas) functioning as the instrument of such activity.[13] The material aggregates involved in the activity constitute the leśyā. The material particles attracted and transformed into various *karmic* categories (jñānāvaraṇīya, etc.) do not make up the leśyā. There is presence of leśyā even in the absence of the categories of ghāti-karman in the sayogi-kevalin stage of spiritual development, which proves that such categories do not constitute leśyā. Similarly, the categories of aghāti-karman also do not form the leśyā as there is absence of leśyā even in the presence of such categories in the ayogi-kevalin stage of spiritual development.[14] The leśyā-matter involved in the activity aggravates the kaṣāyas if they are there.[15] It is also responsible for the anubhāga (intensity) of *karmic* bondage.[16]

---

11. For the refutation of the theory propounding leśyā as karma-nisyanda, vide pp. 11-2.
12. P. 10 (line 10).
13. P. 10 (lines 13-21).
14. P. 11 (lines 3-8).
15. P. 11 (lines 8-9).
16. P. 11 (lines 15-7) ; also the Ṭīkā on Karmagrantha, IV, 1.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Leśyā is also conceived by the commentators as having the aspect of viscosity.[17]

The compilers of the Leśyā-kośa have taken great pains to make the work as systematic and exhaustive as possible. Assistance of a trained scholar and proof-reader could, however, be requisitioned for better editing and correct printing. The scholars of Indian philosophy, particularly those working in the field of Jainism, will derive good help from such reference books. Although primarily a veteran business man, Mr. Banthia has shown keen understanding of ontological problems in systematically arranging the references and clinching crucial issues as is evident from the occasional remarks in his notes. Scholars will take off their hats to him in appreciation of his Herculean labour in defiance of the extremely precarious health that he has been enjoying for the last several years. We wish success to him in his larger scheme which is bound to be of great benefit to scholars devoted to the study of Jainism, and assure him of our full co-operation in the execution of the project.

NATHMAL TATIA
Director,
Research Institute of Prakrit
Jainology & Ahiṁsa, Vaishali

July 3, 1966.

17. P. 12 (line 11) ; p. 13 (line 13).

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आमुख

विषय-कोश परिकल्पना बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यदि सब विषयों पर कोश नहीं भी तैयार हो सकें तो दस-बीस प्रधान विषयों पर भी कोश के प्रकाशन से जैन दर्शन के अध्येताओं को बहुत ही सुविधा रहेगी। इस संबन्ध में सम्पादकों को मेरा सुझाव है कि वे पण्णवणा सूत्र के ३६ पदों में विवेचित विषयों के कोश तो अवश्य ही प्रकाशित कर दें।

यद्यपि यह कोश परिकल्पना सीमित संकलन है फिर भी इन संकलनों से विषय को समझने व ग्रहण करने में मेरे विचार में कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। पाठकों को श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों दृष्टिकोण उपलब्ध हो सकें इसलिए संपादकों से मेरा निवेदन है कि आगे के विषय-कोशों में तत्त्वार्थसूत्र तथा उसकी महत्त्वपूर्ण दिगम्बरीय टीकाओं से भी पाठ संकलन करें। इससे उनकी सीमा में बहुत अधिक वृद्धि नहीं होगी।

सम्पादकों ने सम्पूर्ण जैन वाङ्मय को सार्वभौमिक दशमलव वर्गीकरण पद्धति के अनुसार सौ वर्गों में विभाजित किया है। जैनदर्शन की आवश्यकता के अनुसार उन्होंने इसमें यत्र-तत्र परिवर्तन भी किया है; अन्यथा उसे ही अपनाया है। इस वर्गीकरण के अध्ययन से यह अनुभव होता है कि यह दूरस्पर्शी (far-reaching) है तथा जैन दर्शन और धर्म में ऐसा कोई विरला ही विषय होगा जो इस वर्गीकरण से अछूता रह जाय या इसके अन्तर्गत नहीं आ सके।

पर्याय की अपेक्षा जीव अनन्त परिणामी है, फिर भी आगमों में जीव के दस ही परिणामों का उल्लेख है। जीव परिणाम के वर्गीकरण को देखने से पता चलता है कि सम्पादकों ने इन दस परिणामों को प्राथमिकता देकर ग्रहण किया है लेकिन साथ ही कर्मों के उदय से वा अन्यथा होनेवाले अन्य अनेक प्रमुख परिणामों को भी वर्गीकरण में स्थान दिया हैं। इनमें से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आदि कई विषय तो अन्य-अन्य कोशों में भी समाविष्ट होने योग्य हैं।

पृष्ठ 18-19 पर दिए गए वर्गीकरण के उदाहरण से वर्गीकरण और परम्पर उपवर्गीकरणों की पद्धति का चित्र बहुत कुछ स्पष्टतर हो जाता है। सार्वभौमिक दशमलव वर्गीकरण (U. D. C) की तरह जैन वाङ्मय के वर्गीकरण का एक संक्षिप्त या विस्तृत संस्करण सम्पादकगण निकाल सकें तो अति उत्तम हो। तभी उनकी पूरी कल्पना का चित्र परिस्फुटित होकर विद्वानों के समक्ष आ सकेगा।

परिभाषाओं में अनेक विशिष्ट टीकाकारों द्वारा की गयी लेश्या की परिभाषाएँ नहीं दी गयी हैं। परिभाषाएँ अधिक से अधिक विद्वानों की दी जानी चाहिए थीं। उत्तराध्ययन के, जिसमें लेश्या पर एक अलग ही अध्ययन है, टीकाकार की परिभाषा का अभाव खटकता है। दी गयी परिभाषाओं का हिन्दी अनुवाद भी नहीं दिया गया है, यह भी एक कमी है। सम्पादकों ने परिभाषा सम्बन्धी अपना कोई मतामत भी नहीं दिया है।

जिस प्रकार योग, ध्यान आदि के साथ लेश्या के तुलनात्मक विवेचन दिए गये हैं, उसी प्रकार द्रव्य लेश्या के साथ द्रव्यमन, द्रव्यवचन, द्रव्यकषाय आदि पर तुलनात्यक मूल पाठ या टीकाकारों के कथन नहीं दिए गए हैं जो दिए जाने चाहिए थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विविध शीर्षक के अन्तर्गत विषय अनुक्रम से या वर्गीकरण की शैली से नहीं दिए गए हैं।

लेश्या-कोश एक पठनीय-मननीय ग्रन्थ हुआ है। लेश्याओं को समझने के लिए इसमें यथेष्ट मसाला है तथा शोधकर्त्ताओं के लिए यह अमूल्य ग्रन्थ होगा। रेफरेन्स पुस्तक के हिसाब से यह सभी श्रेणी के पाठकों के लिए उपयोगी होगा। वर्गीकरण की शैली विषय को सहजगम्य बना देती है। सम्पादकगण तथा प्रकाशक इसके प्रकाशन के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

लेश्या शाश्वत भाव है। जैसे लोक-अलोक-लोकान्त-अलोकान्त-दृष्टि-ज्ञान-कर्म आदि शाश्वत भाव हैं वैसे ही लेश्या भी शाश्वत भाव है।

लोक आगे भी है, पीछे भी है; लेश्या आगे भी है, पीछे भी है—दोनों अनानुपूर्वी हैं। इनमें आगे-पीछे का क्रम नहीं है। इसी प्रकार अन्य सभी शाश्वत भावों के साथ लेश्या का आगे-पीछे का क्रम नहीं है। सब शाश्वत भाव अनादि काल से हैं, अनन्त काल तक रहेंगे (देखें ·६४)।

सिद्ध जीव अलेशी होते हैं तथा चतुर्दश गुणस्थान के जीव को छोड़ कर अवशेष संसारी जीव सब सलेशी हैं। सलेशी जीव अनादि है। अतः यह कहा जा सकता है कि लेश्या और जीव का सम्बन्ध अनादि काल से है।

संसारी जीव भी अनादि काल से है। लेश्या भी अनादि काल से है। इनका सम्बन्ध भी अनादि काल से है (देखें ·६४)।

प्राचीन आचार्यों ने 'लेश्या' क्या है इस पर बहुत ऊहापोह किया है लेकिन वे कोई निश्चित परिभाषा नहीं बना सके। सब से सरल परिभाषा है—**लिश्यते श्लिष्यते आत्मा कर्मणा सहानयेति लेश्या**—आत्मा जिसके सहयोग से कर्मों से लिप्त होती है वह लेश्या है (देखें ·०५३·२ (ख))।

एक दूसरी परिभाषा जो प्राचीन आचार्यों में बहुलता से प्रचलित थी वह है—

कृष्णादि द्रव्य साचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः।
स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्या शब्द प्रयुज्यते॥

जिस प्रकार स्फटिक मणि विभिन्न वर्णों के सूत्र का सान्निध्य प्राप्त कर उन वर्णों में प्रतिभासित होता है उसी प्रकार कृष्णादि द्रव्यों का सान्निध्य पाकर आत्मा के परिणाम उसी रूप में परिणत होते हैं, और आत्मा की इस परिणति के लिये लेश्या शब्द का प्रयोग किया जाता है।

यहाँ जिन कृष्णादि द्रव्यों की ओर इंगित किया गया है वे द्रव्यलेश्या कहलाते हैं तथा आत्मा की जो परिणति है वह भावलेश्या कहलाती है। अभयदेवसूरि ने कहा भी है—**कृष्णादि द्रव्य साचिव्य जनिताऽऽत्मपरिणामरूपां भावलेश्याम्।**

प्राचीन आचार्यों ने लेश्या के विवेचन में निम्नलिखित परिभाषाओं पर विचार किया है :—

१. लेश्या योगपरिणाम है—**योगपरिणामो लेश्या।**

२. लेश्या कर्मनिस्यंद रूप है—**कर्मनिस्यन्दो लेश्या।**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. लेश्या कषायोदय से अनुरंजित योगप्रवृत्ति है—**कषायोदयरंजिता योगप्रवृत्ति-र्लेश्या।**

४. जिस प्रकार अष्टकर्मों के उदय से संसारस्थत्व तथा असिद्धत्व होता है उसी प्रकार अष्टकर्मों के उदय से जीव लेश्यत्व को प्राप्त होता है।

लेश्यत्व जीवोदयनिष्पन्न भाव है। अतः कर्मों के उदय से जीव के छः भावलेश्याएँ होती हैं।

द्रव्यलेश्या पौद्गलिक है, अतः अजीवोदयनिष्पन्न होनी चाहिए—**पओगपरिणामए वण्णे, गंधे, रसे, फासे, सेत्तं अजीवोदयनिप्फन्ने** (देखें '०५१'१४)।

द्रव्यलेश्या क्या है ?

१—द्रव्यलेश्या अजीव पदार्थ है।
२—यह अनंत प्रदेशी अष्टस्पर्शी पुद्गल है (देखें '१४ व '१५)।
३—इसकी अनंत वर्गणा होती है ('१७)।
४—इसके द्रव्यार्थिक स्थान असंख्यात हैं ('२१)।
५—इसके प्रदेशार्थिक स्थान अनंत हैं ('२६)।
६—छः लेश्या में पाँच ही वर्ण होते हैं ('२७)
७—यह असंख्यात प्रदेश अवगाह करती है ('१६)।
८—यह परस्पर में परिणामी भी है, अपरिणामी भी है ('१६ व '२०)।
९—यह आत्मा के सिवाय अन्यत्र परिणत नहीं होती है ('२०'७)।
१०—यह अजीवोदयनिष्पन्न है ('०५१'१४)।
११—यह गुरु-लघु है ('१८)।
१२—यह भावितात्मा अनगार के द्वारा अगोचर—अज्ञेय है ('०५१'१३)।
१३—यह जीवग्राही है ('०५१'१०)।
१४—प्रथम की तीन द्रव्यलेश्या दुर्गन्धवाली हैं तथा पश्चात् की तीन द्रव्यलेश्या सुगंधवाली हैं (पृ० १५)।
१५—प्रथम की तीन द्रव्यलेश्या अमनोज्ञ रसवाली हैं तथा पश्चात् की तीन द्रव्यलेश्या मनोज्ञ रसवाली हैं (पृ० १६)।
१६—प्रथम की तीन द्रव्यलेश्या शीतरूक्ष स्पर्शवाली हैं तथा पश्चात् की तीन द्रव्यलेश्या ऊष्णस्निग्ध स्पर्शवाली हैं (पृ० १६)।
१७—प्रथम की तीन द्रव्यलेश्या वर्ण की अपेक्षा अविशुद्ध वर्णवाली हैं तथा पश्चात् की तीन द्रव्यलेश्या विशुद्ध वर्णवाली हैं (पृ० १६)।
१८—यह कर्म पुद्गल से स्थूल है।
१९—यह द्रव्यकषाय से स्थूल है।
२०—यह द्रव्य मन के पुद्गलों से स्थूल है।
२१—यह द्रव्य भाषा के पुद्गलों से स्थूल है।
२२—यह औदारिक शरीर पुद्गलों से सूक्ष्म है।
२३—यह शब्द पुद्गलों से सूक्ष्म है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४—इसे तैजस शरीर पुद्‌गलों से सूक्ष्म होना चाहिये।
२५—इसे वैक्रिय शरीर पुद्‌गलों से सूक्ष्म होना चाहिये।
२६—यह इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य है।
२७—यह योगात्मा के साथ समकालीन है।
२८—यह बिना योग के ग्रहण नहीं हो सकती है।
२९—यह नोकर्म पुद्‌गल है, कर्म पुद्‌गल नहीं है।
३०—यह पुण्य नहीं है, पाप नहीं है, बंध नहीं है।
३१—यह आत्मप्रयोग से परिणत है ; अतः प्रायोगिक पुद्‌गल है।
३२—यह कषाय के अन्तर्गत पुद्‌गल नहीं है ; क्योंकि अकषायी के भी लेश्या होती है लेकिन यह सकषायी जीव के कषाय से संभवतः अनुरंजित होती है।
३३—यह पारिणामिक भाव है।
३४—इसका संस्थान अज्ञात है।
३५—देश-बंध—सर्व बंध का लेश्या संबंधी पाठ नहीं है।

भावलेश्या क्या है ?

१—भावलेश्या जीवपरिणाम है (देखें विषयांकन '४१)।
२—भावलेश्या अरूपी है। यह अवर्णी, अगंधी, अरसी तथा अस्पर्शी है ('४२)।
३—भावलेश्या अगुरुलघु है ('४३)।
४—विशुद्धता-अविशुद्धता के तारतम्य की अपेक्षा से इसके असंख्यात स्थान हैं ('४४)।
५—यह जीवोदयनिष्पन्न भाव है ('४६'१)।
६—आचार्यों के कथनानुसार भावलेश्या क्षय-क्षयोपशम, उपशम भाव भी हैं ('४६'२)।
७—प्रथम की तीन अधर्मलेश्या कही गई हैं तथा पीछे की तीन धर्मलेश्या कही गई हैं (पृ० १६)।
८—प्रथम की तीन भावलेश्या दुर्गति की हेतु कही गई हैं तथा पश्चात् की तीन भावलेश्या सुगति की हेतु कही गई हैं (पृ० १७)।
९—प्रथम की तीन भावलेश्या अप्रशस्त हैं तथा पश्चात् की तीन भावलेश्या प्रशस्त हैं (पृ० १६)।
१०—प्रथम की तीन भावलेश्या संक्लिष्ट हैं तथा पश्चात् की तीन भावलेश्या असंक्लिष्ट हैं (पृ० १७)।
११—परिणाम की अपेक्षा प्रथम की तीन भावलेश्या अविशुद्ध हैं तथा पश्चात् की तीन भावलेश्या विशुद्ध हैं (पृ० १७)
१२—नव पदार्थ में भावलेश्या—जीव, आस्रव, निर्जरा है।
१३—आस्रव में योग आस्रव है।
१४—निर्जरा में कौन-सी निर्जरा होनी चाहिए ?
१५—शुभ योग के समय में शुभलेश्या होनी चाहिये या विशुद्धमान लेश्या होनी चाहिए।
१६—अशुभ योग के समय में अशुभलेश्या होनी चाहिये या संक्लिष्टमान लेश्या होनी चाहिए।
१७—जो जीव सयोगी है वह नियमतः सलेशी है तथा जो जीव सलेशी है वह नियमतः सयोगी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतीत होता है कि परिणाम, अध्यवसाय व लेश्या में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहाँ परिणाम शुभ होते हैं, अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं वहाँ लेश्या विशुद्धमान होती है। कर्मों की निर्जरा के समय में परिणामों का शुभ होना, अध्यवसायों का प्रशंस्त होना तथा लेश्या का विशुद्धमान होना आवश्यक है (देखें '९६'२)। जब वैराग्य भाव प्रकट होता है तब इन तीनों में क्रमशः शुभता, प्रशस्तता तथा विशुद्धता होती है (देखें '९६'२३)। यहाँ परिणाम शब्द से जीव के मूल दस परिणामों में से किस परिणाम की ओर इंगित किया गया है यह विवेचनीय है। लेश्या और अध्यवसाय का कैसा सम्बन्ध है यह भी विचारणीय विषय है; क्योंकि अच्छी-बुरी दोनों प्रकार की लेश्याओं में अध्यवसाय प्रशस्त-अप्रशस्त दोनों होते हैं (देखें '९६'१९)। इसके विपरीत जब परिणाम अशुभ होते हैं, अध्यवसाय अप्रशस्त होते हैं तब लेश्या अविशुद्ध—संक्लिष्ट होनी चाहिए। जब गर्भस्थ जीव नरक गति के योग्य कर्मों का बन्धन करता है तब उसका चित्त, उसका मन, उसकी लेश्या तथा उसका अध्यवसाय तदुपयुक्त होता है। उसी प्रकार जब गर्भस्थ जीव देव गति के योग्य कर्मों का बन्धन करता है तब उसका चित्त, उसका मन, उसकी लेश्या तथा उसका अध्यवसाय तदुपयुक्त होता है। इससे भी प्रतीत होता है कि इन तीनों का—मन व चित्त के परिणामों का, लेश्या और अध्यवसाय का सम्मिलित रूप से कर्म बन्धन में पूरा योगदान है (देखें '९६'९)। इसी प्रकार कर्म की निर्जरा में भी इन तीनों का पूरा योगदान होना चाहिये।

जीव लेश्या द्रव्यों को ग्रहण करता है तथा पूर्व में गृहीत लेश्या द्रव्यों को नव गृहीत लेश्या द्रव्यों के द्वारा परिणत करता है, कभी पूर्ण रूप से तथा कभी आकार-भाव मात्र—प्रतिबिम्बभाव मात्र से परिणत करता है। जीव द्वारा लेश्या द्रव्यों का ग्रहण किस कर्म के उदय से होता है यह विवेचनीय विषय है। इस विषय पर किसी भी टीकाकार का कोई विशेष विवेचन नहीं है। केवल एक स्थल पर लेश्यत्व को संसारस्थत्व-असिद्धत्व की तरह अष्ट कर्मों का उदय जन्य माना है। लेकिन इससे द्रव्यलेश्या के ग्रहण की प्रक्रिया समझ में नहीं आती है।

आचार्य मलयगिरि का कथन है कि शास्त्रों में आठों कर्मों के विपाकों का वर्णन मिलता है लेकिन किसी भी कर्म के विपाक में लेश्या रूप विपाक उपदर्शित नहीं है। सामान्यतः सोचा जाय तो लेश्या द्रव्यों का ग्रहण किसी नामकर्म के उदय से होना चाहिए। नामकर्मों में भी शरीर नामकर्म के उदय से ही ग्रहण होना चाहिए। यदि लेश्या को योग के अन्तर्गत माना जाय तो द्रव्यलेश्या के पुद्गलों का ग्रहण शरीर नामकर्म के उदय से होना चाहिये; क्योंकि योग शरीर नामकर्म की परिणति विशेष है (देखो पृ० १०)। शुभ नामकर्म के उदय से शुभ लेश्याओं का ग्रहण होना चाहिए तथा अशुभ नामकर्म से अशुभ लेश्या का ग्रहण होना चाहिए। लेकिन तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य—जयाचार्य का कहना है कि अशुभ लेश्याओं से पापकर्म का बन्धन होता है तथा पापकर्म का बन्धन केवल मोहनीय कर्म से होता है। अतः अशुभ द्रव्य लेश्याओं का ग्रहण मोहनीय कर्म के उदय के समय होना चाहिये।

अन्यत्र ठाणांग के टीकाकार कहते हैं कि योग वीर्य-अन्तराय के क्षय-क्षयोपशम से होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब जीव एक योनि से मरण, च्यवन, उद्वर्तन करके अन्य योनि में जाता है तब जाने के पथ में जितने समय लगते हैं उतने समय में वह सलेशी होता है। मरण के समय जीव द्रव्यलेश्या के जिन पुद्गलों को ग्रहण करता है उसी लेश्या में जाकर जन्म-उत्पाद करता है और तदनुरूप ही उसकी भावलेश्या होती है। इस अंतराल गति में सम्भवतः वह द्रव्य-लेश्या के नये पुद्गलों को ग्रहण नहीं करता है लेकिन मरण— च्यवन के समय द्रव्यलेश्या के जिन पुद्गलों का ग्रहण किया था, वे अवश्य ही उसके साथ में रहते हैं।

एक समय दर्शन चर्चा का था जब पथ, घाट गोष्ठी आदि में सर्वत्र दर्शन चर्चा होती थी जैसे कि आज राजनीति और देश चर्चा होती है। उस समय जीव के अच्छे-बुरे विचारों और परिणामों को वर्णों में वर्णित किया जाता था। कलुष विचारों के लिये कालिमामय वर्ण जैसे कृष्ण-नील-कापोतादि का उपयोग किया जाता था तथा प्रशस्त विचारों के लिए शुभ वर्ण जैसे रक्त-पद्म-शुक्लादि वर्ण का उपयोग किया जाता था। विभिन्न दर्शनों में इस वर्णवाद का किस प्रकार विवेचन किया गया है उसके लिये विषयांकन ·९८ देखें। आधुनिक विज्ञान में भी जीव के शरीर से किस वर्ण की आभा निकलती है इसका अनु-संधान हो रहा है यथा उसके तत्कालीन विचारों के साथ वर्णों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा रहा है।

लेश्याओं का नामकरण वर्णों के आधार पर हुआ है। इस पर यह कल्पना की जा सकती है कि द्रव्यलेश्या के पुद्गल स्कंधों में वर्ण गुण की प्रधानता है। यद्यपि आगमों में द्रव्यलेश्या के गंध-रस-स्पर्श गुणों का भी थोड़ा-बहुत वर्णन है। लेकिन इन तीन गुणों से वर्ण गुण का प्राधान्य अधिक है। जिस प्रकार वस्त्र आदि रंगनेवाले पदार्थों में वर्ण गुण की प्रधानता होती है उसी प्रकार अपने सान्निध्य मात्र से आत्मपरिणामों को प्रभावित करनेवाले द्रव्लेश्या के पुद्गलों में वर्ण गुण की प्रमुखता होती है। जिस प्रकार स्फटिक मणि पिरोये हुए सूत्र के वर्ण को प्रतिभासित करता है उसी प्रकार द्रव्यलेश्या अपने वर्ण के अनुसार आत्म परिणामों को प्रभावित करती है।

प्राचीन आचार्यों की यह धारणा रही है कि देह-वर्ण ही द्रव्यलेश्या है। विशेष करके नारकी और देवताओं की द्रव्यलेश्या—उनके शरीर का वर्ण रूप ही है। दिगम्बर जैनाचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती लेश्या की परिभाषा शरीर के वर्ण के आधार पर ही करते हैं।

'वण्णोदयसंपादितसरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा।'

अर्थात् वर्ण नाम कर्म के उदय से जो शरीर का वर्ण (रंग) होता है उसको द्रव्यलेश्या कहते हैं। यह परिभाषा ठीक नहीं है। मनुष्यों में गोरी चमड़ी का जीव भी हिटलर की तरह अशुभलेशी हो सकता है। अतः शरीर के वर्ण से लेश्या का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। आगमों में नारकी और देवताओं के शरीर और लेश्या का वर्ण अलग-अलग प्रतिपादित है तथा उनके शरीर के वर्ण और लेश्या के वर्ण में किंचित् अंतर भी है। अतः नारकी और देवताओं के शरीर के वर्ण को ही उनकी लेश्या नहीं कहनी चाहिये।

विषयांकन '९६'१२ तथा '९६'१३ में क्रमशः वैमानिक देवों तथा नारकियों के शरीर के वर्ण का तथा उनकी लेश्याओं का वर्णन है जिसका चार्ट भी दिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसको देखने से पता चलता है कि रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी के शरीर का वर्ण काला या कालावभास तथा परम कृष्ण होता है लेकिन लेश्या कापोत नाम की कापोत वर्णवाली ही होती है। इस विषय में और भी अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

भावलेश्या जीव परिणामों के दस भेदों में से एक भेद है। अतः जीव की एक परिणति विशेष है। टीकाकारों के अनुसार जीव की लेश्यत्व रूप परिणति आत्म प्रदेशों के साथ कृष्णादि द्रव्यों के साचिव्य—सान्निध्य से होती है। यह साचिव्य या सान्निध्य किस कर्म या कर्मों से होता है—यह विवेचनीय है।

लेश्यत्व जीवोदयनिष्पन्न भाव है। अतः कर्म या कर्मों के उदय से जीव के आत्म-प्रदेशों से कृष्णादि द्रव्यों का सान्निध्य होता है तथा तज्जन्य जीव के छ भावलेश्यायें होती हैं। अतः लेश्या को उदयनिष्पन्न भाव कहा गया है। निर्युक्तिकार भी कहते हैं—

भावे उदओ भणिओ, छण्हं लेसाण जीवेसु।

जीवों में—उदयभाव से छ लेश्यायें होती हैं। निर्युक्तिकार के अनुसार विशुद्ध भाव-लेश्या—कषायों के उपशम तथा क्षय से भी होती है। अतः औपशमिक तथा क्षायिक भाव भी हैं। निर्युक्ति की इस गाथा पर टीकाकार का कथन है कि विशुद्ध लेश्या को जो औप-शमिक तथा क्षायिक भाव कहा गया है वह एकान्त विशुद्धि की अपेक्षा से कहा गया है अन्यथा क्षायोपशमिक भाव में भी तीनों विशुद्ध लेश्यायें होती हैं।

गोम्मटसार के कर्ता भी मोहनीय कर्म के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम से जीव के प्रदेशों की जो चंचलता होती है उसमें भावलेश्या मानते हैं।

'लेश्या' के कर्मलेश्या (कम्मलेस्सा) तथा सकर्म लेश्या (सकम्मलेस्सा) दो पर्यायवाची शब्द हैं। कर्मलेश्या शब्द आत्मप्रदेशों को कर्मों से लिश्य—लिप्त करनेवाली प्रायोगिक द्रव्य-लेश्या का द्योतक है। इसको भावितात्मा अनगार पौद्गलिक सूक्ष्मता के कारण न जान सकता है, न देख सकता है। दूसरा पर्यायवाची शब्द सकर्मलेश्या—चन्द्र, सूर्य आदि से निर्गत ज्योति, प्रभा आदि विस्रसा द्रव्यलेश्याओं का द्योतक है (देखें '०२)।

सविशेषण—ससमास लेश्या शब्दों में कितने ही शब्द प्रायोगिक द्रव्य और भाव-लेश्या से संबंधित हैं। शब्द नं० १४-१५-१६ तेजोलब्धि जन्य लेश्या से संबंधित हैं। 'अवहिल्लेस्से' जैसे शब्द भावितात्मा अनगार की लेश्या के द्योतक हैं (देखो '०४)।

द्रव्यलेश्या विस्रसा यद्यपि जीवपरिणाम से संबंधित नहीं है तो भी सम्पादकों ने द्रव्यलेश्या विस्रसा संबंधी कतिपय पाठ इस पुस्तक में उद्धृत किये हैं। ऐसा उन्होंने द्रव्य-लेश्या प्रायोगिक के साथ तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से ही किया होगा। द्रव्यलेश्या प्रायोगिक तथा द्रव्यलेश्या विस्रसा के पुद्गलों में परस्पर क्या समानता अथवा भिन्नता है इस सम्बन्ध में सम्पादकों ने कोई पाठ नहीं दिया है (देखें '३)।

विशिष्ट तपस्या करने से बाल तपस्वी, अनगार तपस्वी आदि को तेजोलेश्या रूप तेजोलब्धि की प्राप्ति होती है। देवताओं में भी तेजोलेश्यालब्धि होती है। यह तेजोलेश्या प्रायोगिक द्रव्यलेश्या के तेजोलेश्या भेद से भिन्न प्रतीत होती है। यह तेजोलेश्या दो प्रकार की होती है—(१) शीतोष्ण तेजोलेश्या तथा (२) शीतल तेजोलेश्या। शीतोष्ण तेजोलेश्या ज्वाला—दाह पैदा करती है, भस्म करती है। आजकल के अणुबम की तरह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसमें अंग, बंग इत्यादि १६ जनपदों को घात, वध, उच्छेद तथा भस्म करने की शक्ति होती है।

शीतल तेजोलेश्या में शीतोष्ण तेजोलेश्या से उत्पन्न ज्वाला—दाह को प्रशान्त करने की शक्ति होती है। वैश्यायण बाल तपस्वी ने गोशालक को भस्म करने के लिए शीतोष्ण तेजोलेश्या निक्षिप्त की थी। भगवान महावीर ने शीतल तेजोलेश्या छोड़कर उसका प्रतिघात किया था। निक्षेप की हुई तेजोलेश्या का प्रत्याहार भी किया आ सकता है।

तेजोलेश्या जब अपने से लब्धि में अधिक बलशाली पुरुष पर निक्षेप की जाती है तब वह वापस आकर निक्षेप करने वाले के भी ज्वाला-दाह उत्पन्न कर सकती है तथा उसको भस्म भी कर सकती है।

यह तेजोलेश्या जब निक्षेप की जाती है तब तैजस शरीर का समुद्घात करना होता है तथा इस तेजोलेश्या के निर्गमन काल में तैजस शरीर नामकर्म का परिशात (क्षय) होता है। निक्षिप्त की हुई तेजोलेश्या के पुद्गल अचित्त होते हैं (देखें '२५, '६६'४, '६६'१४, '६६'१५)।

और एक प्रकार की तेजोलेश्या का वर्णन मिलता है। उसे टीकाकार सुखासीकाम अर्थात् आत्मिक सुख कहते हैं। देवता पुण्यशाली होते हैं तथा अनुपम सुख का अनुभव करते हैं फिर भी पाप से निवृत्त आर्य अनगार को प्रव्रज्या ग्रहण करने से जो आत्मिक सुख का अनुभव होता है—वह देवताओं के सुख को अतिक्रम करता है अर्थात् उनके सुख से श्रेष्ठ होता है यथा पाप से निवृत्त पाँच मास की दीक्षा की पर्यायवाला आर्य श्रमण निर्ग्रन्थ चन्द्र और सूर्य देवताओं के सुख से भी अधिक उत्तम सुख का अनुभव करता है। (देखें '२५'५)

यह निश्चित नियम है कि जीव जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके मरण को प्राप्त होता है उसी लेश्या में जाकर उत्पन्न होता है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जीव जैसी भावलेश्या के परिणामों को लेकर मरता है वैसी ही भावलेश्या के परिणामों के साथ परभव में जाकर उत्पन्न होता है (देखें '५७)।

अब यह प्रश्न उठता है कि कृष्णलेशी जीव परभव में जाकर जिस जीव के गर्भ में उत्पन्न होता है वह जीव क्या कृष्णलेशी ही होना चाहिये? ऐसा नियम नहीं है। कृष्णलेशी जीव छओं लेश्याओं में से किसी भी लेश्या वाले जीव के गर्भ में उत्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार अन्य लेश्याओं के विषय में भी समझना चाहिये ('५५)।

मरण के समय लेश्या परिणाम तीन प्रकार के होते हैं (१) स्थित परिणाम (२) संक्लिष्ट परिणाम तथा (३) पर्यवजात परिणाम अर्थात् विशुद्धमान परिणाम। बालमरणवाले जीवों के तीनों प्रकार के लेश्या परिणाम हो सकते हैं। बालपंडित मरणवाले जीव के यद्यपि मूल पाठ में तीन प्रकार के परिणामों का वर्णन है फिर भी टीकाकार कहते हैं कि उस जीव के केवल स्थित लेश्या परिणाम होने चाहिये। इसी प्रकार पंडित मरणवाले जीव के भी मूल पाठ में तीन प्रकार के परिणाम बतलाये गए हैं लेकिन टीकाकार ने कहा है कि उस जीव के केवल पर्यवजात अर्थात् विशुद्धमान लेश्या के परिणाम होने चाहिये (देखें '६६)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवता और नारकी को छोड़ कर सामान्यतः अन्य जीवों के लेश्या परिणाम एक लेश्या से दूसरी लेश्या के परिणाम में अन्तर्मुहूर्त में परिणमित होते रहते हैं। प्रश्न उठता है कि एक लेश्या से जब अन्य लेश्या में परिणमन होता है तो वह क्रमबद्ध होता है अथवा क्रम व्यतिक्रम करके भी हो सकता है।

विषयांकन ·१६ के पाठों से अनुभूत होता है कि क्रमबद्ध परिणमन हो ऐसा एकान्त नियम नहीं है। कृष्णलेश्या नीललेश्या के पुद्गलों को प्राप्त होकर नीललेश्या में परिणमन करती है तथा कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या पुद्गलों को प्राप्त होकर उस-उस लेश्या के वर्ण-गंध-रस-स्पर्श रूप में परिणत हो जाती है। ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं मालूम पड़ता है कि कृष्णलेश्या को शुक्ल लेश्या में परिणमन करने के लिये पहिले नील में, फिर कापोत में, फिर क्रम से शुक्ललेश्या में परिणत होना होगा। कृष्णलेश्या शुक्ललेश्या के पुद्गलों को प्राप्त होकर सीधे शुक्ललेश्या में परिणत हो सकती है।

लेश्या आत्मा--आत्मप्रदेशों में ही परिणमन करती है, अन्यत्र नहीं करती है। इससे पता चलता है कि संसारी आत्मा का लेश्या के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह अनादि काल से चला आ रहा है। जीव जब तक अन्तक्रिया नहीं करता है तब तक यह सम्बन्ध चलता रहता है और आत्मा में लेश्याओं का परिणमन होता रहता है (देखें ·२०·७)।

कृष्ण यावत् शुक्ल लेश्या में 'वट्टमान'—वर्तता हुआ जीव और जीवात्मा एक हैं, अभिन्न हैं, दो नहीं है। जब जीवात्मा (पर्यायात्मा) लेश्या परिणामों में वर्तता है तब वह जीव यानि द्रव्यात्मा से भिन्न नहीं है, एक है। अर्थात् वही जीव है, वही जीवात्मा है (देखें ·६६·१०)।

रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी सब कापोतलेशी होते हैं। उनकी एक वर्गणा कही गई है (देखें ·५२)। लेकिन वे सब समलेशी नहीं हैं ; अर्थात् उनकी लेश्या के स्थान समान नहीं हैं। जो पूर्वोपपन्नक हैं उनकी लेश्या जो पश्चादुपपन्नक हैं उनसे विशुद्धतर है क्योंकि पूर्व में उत्पन्न हुए नारकी ने बहुत से अप्रशस्त लेश्या द्रव्यों का अनुभव किया है तथा अनुभव करके क्षीण किया है। इसलिए वे विशुद्धतर लेश्या वाले हैं तथा पश्चात् उत्पन्न हुए नारकी इसके विपरीत अविशुद्ध लेश्या वाले होते हैं। यह पाठ समान स्थिति वाले नारकी की अपेक्षा से ही समझना चाहिए। (देखें ·५६, ·६१)।

पूर्वोपपन्नक नारकी की यह लेश्या-विशुद्धि किसी कर्म के क्षय से होती है अथवा जैसा कि टीकाकर कहते हैं कि लेश्या पुद्गलों का अनुभव कर करके लेश्या पुद्गलों का क्षय करने से होती है? यदि टीकाकार की बात ठीक मानी जाय तो लेश्या के परिणमन तथा उसके ग्रहण और क्षय के साथ कर्मों का सम्बन्ध नहीं बैठता है। यह विषय सूक्ष्मता के साथ विवेचन करने योग्य है।

लेश्या और योग का अविनाभावी सम्बन्ध है। जहाँ लेश्या है वहाँ योग है ; जहाँ योग है वहाँ लेश्या है। फिर भी दोनों भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। भावतः लेश्या परिणाम तथा योगपरिणाम जीव परिणामों में अलग-अलग बतलाये गये हैं। अतः भिन्न हैं। द्रव्यतः मनोयोग तथा वाक्योग के पुद्गल चतुःस्पर्शी हैं तथा काययोग के पुद्गल अष्टस्पर्शी स्थूल हैं। लेश्या के पुद्गल अष्टस्पर्शी तो हैं लेकिन सूक्ष्म हैं ; क्योंकि लेश्या के पुद्गलों को भावितात्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनगार न जान सकता है, न देख सकता है। अतः द्रव्यतः भी योग ओर लेश्या भिन्न-भिन्न हैं।

लेश्यापरिणाम जीवोदयनिष्पन्न है (·४६·१) तथा योग वीर्यान्तराय कर्म के क्षय-क्षयोपशम जनित है (देखें ठाण० स्था ३। सू० १२४ की टीका)। कहा भी है—योग वीर्य से प्रवाहित होता है (देखें भग० श १। उ ३। प्र० १३०)।

जीव परिणामों का विवेचन करते हुए ठाणांग के टीकाकार लेश्या परिणाम के बाद योगपरिणाम क्यों आता है, इसका कारण बतलाते हुए कहते हैं कि योग परिणाम होने से लेश्या परिणाम होते हैं तथा समुच्छिन्न क्रिया-ध्यान अलेशी को होता है। अतः परिणाम के अनंतर योग परिणाम का वर्णन किया गया है। जिस प्रकार द्रव्य मन और द्रव्य वचन के पुद्गल काय योग से गृहीत होते हैं उसी प्रकार लेश्या-पुद्गल भी काययोग के द्वारा ग्रहण होने चाहिए। तेरहवें गुणस्थान के शेष के अंतर्मुहूर्त में मनोयोग तथा वचनयोग का सम्पूर्ण निरोध हो जाता है तथा काययोग का अर्ध निरोध हो जाता है तब लेश्या परिणाम तो होता है लेकिन काययोग की अर्धता-क्षीणता के कारण द्रव्यलेश्या के पुद्गलों का ग्रहण रुक जाना चाहिए। १४वें गुणस्थान के प्रारंभ में जब योग का पूर्ण निरोध हो जाता है तब लेश्या का परिणमन भी सर्वथा रुक जाता है। अतः तब जीव अयोगी—अलेशी हो जाता है।

योग और लेश्या में भिन्नता प्रदर्शित करनेवाला एक विषय और है। वह है वेदनीय कर्म का बंधन। सयोगी जीव के प्रथम दो भंग से अर्थात् (१) बांधा है, बांधता है, बांधेगा, (२) बांधा है, बांधता है, बांधेगा नहीं—से वेदनीय कर्म का बंध होता है। लेकिन सलेशी के प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ भंग—(४) बांधा है, न बांधता है, न बांधेगा से वेदनीय कर्म का बंध होता है (देखें ·६६·२४)। सलेशी के (शुक्ललेशी सलेशी के) चतुर्थ भंग से वेदनीय कर्म का बंधन समझ के बाहर की बात है। फिर भी मूल पाठ में यह बात है तथा टीकाकार भी इसका कोई विवेकपूर्ण एक्स्प्लेनेसन नहीं दे सके हैं। टीकाकार ने घंटा-लाला न्याय की दोहाई देकर अवशेष बहुश्रुत गम्य करके छोड़ दिया है।

लेश्या एक रहस्यमय विषय है तथा इसके रहस्य की गुत्थी इस कलिकाल में खुलनी कठिन है। फिर भी यह बड़ा रोचक विषय है। सम्पादकों ने इसका वर्गीकरण बड़े सुन्दर ढंग से किया है जो इसको समझने में अति सहायक होता है। सम्पादकों से निवेदन है कि वे दिगम्बर संकलन को शीघ्र ही प्रकाशित कर दें जिससे पाठकों को इसकी अनसुलझी गुत्थियाँ सुलझाने में सम्भवतः कुछ सहायता मिल सके। इत्यलम्।

कलकत्ता-२६,
आषाढ़ शुक्ला दशमी,
वि० संवत् २०२३

हीराकुमारी बोथरा
(व्याकरण—सांख्य—वेदान्त तीर्थ)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

	विषय	पृष्ठ
—	संकलन—सम्पादन में प्रयुक्त ग्रन्थों की संकेत सूची	6
—	प्रस्तावना	7
—	जैन वाङ्मय का दशमलव वर्गीकरण	14
—	जीव परिणाम का वर्गीकरण	17
—	मूल वर्गों के उपविभाजन का उदाहरण	18—19
—	Foreword	21
—	आमुख	25
·०	**शब्द विवेचन**	**१—१६**
·०१	व्युत्पत्ति—प्राकृत, संस्कृत, पाली	१
·०२	लेश्या शब्द के पर्यायवाची शब्द	२
·०३	लेश्या शब्द के अर्थ	३
·०४	सविशेषण-ससमास लेश्या शब्द	४
·०५	परिभाषा के उपयोगी पाठ	५
·०५३	प्राचीन आचार्यों द्वारा की गई लेश्या की परिभाषा	६
·०६	लेश्या के भेद	१४
·०७	लेश्या पर विवेचन गाथा	१७
·०८	लेश्या का निक्षेपों की अपेक्षा विवेचन	१८
·१।·२	**द्रव्यलेश्या (प्रायोगिक)**	**२०—४६**
·११	द्रव्यलेश्या के वर्ण	२०
·१२	द्रव्यलेश्या की गंध	२४
·१३	द्रव्यलेश्या के रस	२५
·१४	द्रव्यलेश्या के स्पर्श	२६
·१५	द्रव्यलेश्या के प्रदेश	३०
·१६	द्रव्यलेश्या और प्रदेशावगाह—क्षेत्रावगाह	३०
·१७	द्रव्यलेश्या की वर्गणा	३०
·१८	द्रव्यलेश्या और गुरुलघुत्व	३१
·१९	द्रव्यलेश्याओं की परस्पर में परिणमन-गति	३१
·२०	द्रव्यलेश्याओं का परस्पर में अपरिणमन	३४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ
·२०·७ आत्मा के सिवाय अन्यत्र अपरिणमन	३६
·२१ द्रव्यलेश्या और स्थान	३७
·२२ द्रव्यलेश्या की स्थिति	३८
·२३ द्रव्यलेश्या और भाव	४०
·२४ द्रव्यलेश्या और अंतरकाल	४०
·२५ तपोलब्धि से प्राप्त तेजोलेश्या की पौद्गलिकता ; भेद ; प्राप्ति के उपाय ; घात—भस्म करने की शक्ति ; श्रमण-निर्ग्रन्थ और देवताओं की तेजोलेश्या की तुलना	४१
·२६ द्रव्यलेश्या और दुर्गति-सुगति	४४
·२७ द्रव्यलेश्या के छः भेद तथा पाँच (पुद्गल) वर्ण	४५
·२८ द्रव्यलेश्या और जीव के उत्पत्ति-मरण के नियम	४५
·२९ द्रव्यलेश्या के स्थानों का अल्पबहुत्व	४७
·३ द्रव्यलेश्या (विस्रसा— अजीव— नोकर्म)	४९—६०
·३१ द्रव्यलेश्या नोकर्म के भेद	४९
·३२ सरूपी सकर्मलेश्या का अवभास यावत् प्रभास करना	५०
·३३ सूर्य की लेश्या का शुभत्व	५०
·३४ सूर्य की लेश्या का प्रतिघात—अभिताप	५१
·३५ चन्द्र-सूर्य की लेश्या का आवरण	५२
·४ भावलेश्या	५२—६०
·४१ भावलेश्या—जीव परिणाम ; भेद ; विविधता	५२
·४२ भावलेश्या अवर्णी—अगंधी—अरसी—अस्पर्शी	५३
·४३ भावलेश्या और अगुरुलघुत्व	५३
·४४ भावलेश्या और स्थान	५४
·४५ भावलेश्या की स्थिति	५५
·४६ भावलेश्या जीवोदयनिष्पन्न भाव ; पाँच भाव	५५
·४७ भावलेश्या के लक्षण	५७
·४८ भावलेश्या के भेद	५९
·४९ विभिन्न जीवों में लेश्या-परिणाम	५९
·४९·१ भावपरावृत्ति से छओं लेश्या	६०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय		पृष्ठ
·५	**लेश्या और जीव**	**९०-१४५**
·५१	लेश्या की अपेक्षा जीव के भेद	९१
·५२	लेश्या की अपेक्षा जीव की वर्गणा	९१
·५३	विभिन्न जीवों में कितनी लेश्या	९३
·५४	विभिन्न जीव और लेश्या-स्थिति	९२
·५५	लेश्या और गर्भ-उत्पत्ति	९५
·५६	जीव और लेश्या-समपद	९६
·५७	लेश्या और जीव का उत्पत्ति-मरण	९७
·५८	किसी एक योनि से स्व/पर योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में कितनी लेश्या	१००
·५९	जीव समूहों में कितनी लेश्या	१४४
·६।·८	**सलेशी जीव**	**१४५—२४५**
·६१	सलेशी जीव और समपद	१४५
·६२	सलेशी जीव और प्रथम-अप्रथम	१४८
·६३	सलेशी जीव और चरम-अचरम	१४८
·६४	सलेशी जीव की सलेशीत्व की अपेक्षा स्थिति	१४९
·६५	सलेशी जीव और लेश्या की अपेक्षा अंतरकाल	१५१
·६६	सलेशी जीव और काल की अपेक्षा सप्रदेशी-अप्रदेशी	१५२
·६७	सलेशी जीव के लेश्या की अपेक्षा उत्पत्ति-मरण के नियम	१५४
·६८	समय और संख्या की अपेक्षा सलेशी जीव की उत्पत्ति, मरण और अवस्थिति	१६०
·६९	सलेशी जीव और ज्ञान	१६५
·७०	सलेशी जीव और अनन्तर भव में मोक्ष प्राप्ति	१७३
·७१	सलेशी जीव और आरम्भ—परारम्भ—उभयारम्भ—अनारम्भ	१७४
·७२	सलेशी जीव और कषायोपयोग के विकल्प	१७६
·७३	सलेशी जीव और त्रिविध बंध	१८१
·७४	सलेशी जीव और कर्म-बंधन	१८१
·७५	सलेशी जीव और कर्म का करना	१९०
·७६	सलेशी जीव और कर्म का समर्जन-समाचरण	१९१
·७७	सलेशी जीव और कर्म का प्रारम्भ व अंत	१९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ
·७८ सलेशी जीव और कर्म प्रकृति का सत्ता-बंधन-वेदन	१६५
·७९ सलेशी जीव और अल्पकर्मतर-बहुकर्मतर	१९८
·८० सलेशी जीव और अल्पऋद्धि-महाऋद्धि	१९९
·८१ सलेशी जीव और वोधि	२०१
·८२ सलेशी जीव और समवसरण	२०१
·८३ सलेशी जीव और आहारक-अनाहारकत्व	२०८
·८४ सलेशी जीव के भेद	२०९
·८५ सलेशी क्षुद्रयुग्म जीव	२०९
·८६ सलेशी महायुग्म जीव	२१४
·८७ सलेशी राशियुग्म जीव	२२४
·८८ सलेशी जीवों का आठ पदों से विवेचन	२३०
·८९ सलेशी जीव और अल्पबहुत्व	२३२
·९ लेश्या और विविध विषय	**२४६—२५७**
·९१ लेश्याकरण	२४६
·९२ लेश्यानिर्वृत्ति	२४६
·९३ लेश्या और प्रतिक्रमण	२४७
·९४ लेश्या शाश्वत भाव है	२४७
·९५ लेश्या और ध्यान	२४८
·९६ लेश्या और मरण	२५०
९७. लेश्या परिणामों को समझाने के लिए दृष्टान्त	२५१
·९८ जैनेतर ग्रन्थों में लेश्या के समतुल्य वर्णन	२५४
·९९ लेश्या सम्बन्धी फुटकर पाठ	**२५७—२८३**
·९९·१ भिक्षु और लेश्या	२५७
·९९·२ देवता और उनकी दिव्य लेश्या	२५८
·९९·३ नारकी और लेश्या परिणाम	२५८
·९९·४ निक्षिप्त तेजोलेश्या के पुद्गल अचित्त होते हैं	२५९
·९९·५ परिहारविशुद्ध चारित्री और लेश्या	२५९
·९९·६ लेसणा-बंध	२६०
·९९·७ नारकी और देवता की द्रव्यलेश्या	२६०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय		पृष्ठ
'९९'८	चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-ताराओं की लेश्याएं	२६३
'९९'९	गर्भ में मरने वाले जीव की गति में लेश्या का योग	२६५
'९९'१०	लेश्या में विचरण करता हुआ जीव और जीवात्मा	२६६
'९९'११	(सलेशी) रूपी जीव का अरूपत्व में तथा (अलेशी) अरूपी जीव का रूपत्व में विकुर्वण	२६७
'९९'१२	वैमानिक देवों के विमानों का वर्ण, शरीरों का वर्ण तथा उनकी लेश्या	२६८
'९९'१३	नारकियों के नरकावासों का वर्ण, शरीरों का वर्ण तथा उनकी लेश्या	२७०
'९९'१४	देवता और तेजोलेश्या-लब्धि	२७१
'९९'१५	तैजस समुद्घात और तेजोलेश्या-लब्धि	२७३
'९९'१६	लेश्या और कषाय	२७३
'९९'१७	लेश्या और योग	२७४
'९९'१८	लेश्या और कर्म	२७५
'९९'१९	लेश्या और अध्यवसाय	२७६
'९९'२०	किस और कितनी लेश्या में कौन से जीव	२७७
'९९'२१	भुलावण (प्रति संदर्भ) के पाठ	२७८
'९९'२२	सिद्धान्त ग्रन्थों से लेश्या सम्बन्धी पाठ	२८०
'९९'२३	अभिनिष्क्रमण के समय भगवान् महावीर की लेश्या की विशुद्धि	२८१
'९९'२४	वेदनीय कर्म का बंधन तथा लेश्या	२८२
'९९'२५	छूटे हुए पाठ	२८३
—	अध्ययन, गाथा, सूत्र आदि की संकेत सूची	२८३
—	संकलन—सम्पादन—अनुसंधान में प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची	२८४-८८
—	**शुद्धि-पत्र**	२८९-२९६
—	मूल पाठों का शुद्धि-पत्र	२८९
—	सन्दर्भों का शुद्धि-पत्र	२९४
—	हिन्दी का शुद्धि-पत्र	२९५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं०............
दिनांक............
नरिया, (का. हि. वि. वि.) वाराणसी-५

'० शब्द-विवेचन

'०१ व्युत्पत्ति

'०१।१ प्राकृत शब्द 'लेश्या' की व्युत्पत्ति

रूप=लेसा, लेस्सा।

लिंग=स्त्रिलिंग।

धातु—लिस् (स्वप) सोना, शयन करना।

लिस् (श्लिष्) आलिंगन करना।

लिस्स (देखो लिस्) (श्लिष्) लिस्संति।

पाइ० पृष्ठ ६०२

इसमें लेस्सा पारिभाषिक शब्द के मूल धातु का संकेत नहीं है। श्लिष् भाव लिया जाय तो 'लिस्स' धातु से लिस्सा तथा ल की इ का विकार से ए—लेस्सा शब्द बन सकता है। टीकाकारों ने "लिश्यते—श्लिष्यते कर्मणा सह आत्मा अनयेति लेश्या" ऐसा अर्थ ग्रहण किया है। अतः लिस्स को ही 'लेस्सा' का मूल धातु रूप मानना चाहिये।

यदि संस्कृत शब्द लेश्या का प्राकृत रूप 'लेस्सा' बना ऐसा माना जाय तो लेश्या शब्द के 'श' का दंती 'स' में विकार, य का लोप तथा स का द्वित्व ; इस प्रकार लेस्सा शब्द बन सकता है, यथा—वेश्या से वेस्सा।

यदि लेश्या का पारिभाषिक अर्थ से भिन्न अर्थ तेज, ज्योति, आदि लिया जाय तो 'लस' धातु से लेस्सा शब्द की व्युत्पत्ति उपयुक्त होगी। 'लस' का अर्थ पाइ० में चमकना अर्थ भी दिया है अतः तेज ज्योति अर्थ वाला लेस्सा शब्द इससे (लस धातु से) व्युत्पन्न किया जा सकता है।

'०१।२ संस्कृत 'लेश्या' शब्द की व्युत्पत्ति

लिश् धातु में यत्+टाप् प्रत्ययों से लेश्या शब्द की व्युत्पत्ति बनती है।

(क) लिश् धातु से दो रूप बनते हैं—(१) लिशति, (२) लिश्यति।

लिशति=जाना, सरकना।

लिश्यति=छोटा होना, कमना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेकिन लेश्या शब्द का ज्योति अर्थ भी मिलता है लेकिन वह दोनों धातु अर्थों से मेल नहीं खाता।

देखो आप्ते संस्कृति अंग्रेजी छात्र कोष पृ० ४८३

(ख) लिश्=फाड़ना, तोड़ना ; विलिशा=टूटा हुआ।

देखो संस्कृत अंग्रेजी कोष—सम्पादक, आर्थर अन्थोनी मैक्डोनल्ड, प्रकाशक—ओक्स्फोर्ड विश्वविद्यालय, सन् १९२४। इस कोश में लेश्या शब्द नहीं है।

(ग) लिश् (रिश् का पिछला रूप) लिश्यते=छोटा होना, कमना।

लिशति=जाना, सरकना।

लेश=कण।

देखो संस्कृति-अंग्रेजी कोष—सर मोनियर मोनियर विलियम्—प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास सन् १९६३।

इस कोष में भी लेश्या शब्द नहीं है।

.०१।३ पाली में लेश्या शब्द

पाली कोषों में लेसा या लेस्सा शब्द नहीं मिलता है। लेस शब्द मिलता है।

लेस—(१) कण।

(२) नकली, वहाना, चालाकी।

दूसरे अर्थ में Vin : III : 169 में 'लेस' के दश भेद वताये हैं, यथा—

जाति, नाम, गोत्र, लिंग, आपत्ति, पत्र, चीवर, उपाध्याय, आचार्य, सेनासन।

(देखो पाली अंग्रेजी कोश—सम्पादक रिसडैभिडस्—यकार खण्ड—पन्ना ४४—प्रकाशक पाली टेक्स्ट सोसाइटी)

(देखो कन्साइज पाली अंग्रेजी कोश—बुद्धदत्त महाथेरा—प्रकाशक—यु-चन्द्रदास डी सिल्भा सन् १९४९—कोलम्वो)

लेस शब्द का अर्थ लेस्सा शब्द से नहीं मिलता है।

.०२ लेश्या शब्द के पर्यायवाची शब्द

१ कम्मलेस्सा

(क) छण्हंपि कम्मलेसाणं।

उ० अ० ३४। गा० १। तृतीय चरण। पृ० १०४५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) अणगारेणं भंते ! भावियप्पा। अप्पणो कम्मलेस्सं ण जाणइ ण पासइ।

भग० श० १४। उ० ६। प्र० १। पृ० ७०६।

२ सकम्मलेस्सा

(क) तं (भावियप्पा अगणारं) पुण जीव सरूवीं सकम्मलेस्सं जाणइ पासइ।

भग० श० १४। उ० ६। प्र० १। पृ० ७०६।

(ख) कयरे णं भंते ! सरूवीं सकम्मलेस्सा पोग्गला ओभासंति जाव पभासेंति ? गोयमा ! जाओ इमाओ चंदिम-सूरियाणं देवाणं विमाणेहिंतो लेस्साओ ××× जाव पभासेंति।

——भग० श० १४। उ० ६। प्र० ३। पृ० ७०६।

·०३ लेश्या शब्द के अर्थ

१ आत्मा का परिणाम विशेष—पाइ० ६०५।

२ आत्म-परिणाम निमित्त भूत कृष्णादि द्रव्य विशेष—पाइ० ६०५।

३ अध्यवसाय—अभिधा० ६७४।

आया० श्रु० १। अ० ६। उ० ५ सू० ५ पृ० २२।

४ अन्तकरण वृत्ति—अभिधा० ६७४। आया १।८।५।

(आयारंग का पाठ खोजकर उपरोक्त सन्दर्भ में नहीं मिला)।

५ तेज—पाइ० ६०५।

६ दिप्ति—पाइ० ६०५। विवा० (चोकसी-मोदी) शब्दकोष पृ० ११०।

७ ज्योति—आप्तेकोष० पृ० ४८३।

प्रकाश-उजियाला=संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ पृ० ६६७।

८ किरण—पाइ० ६०५ (सुज्ज० १६)

६ मण्डल बिम्ब—पाइ० ६०५। सम० १५। पृ० ३२८।

१० देह सौन्दर्य—पाइ० ६०५। राज० ॥

११ ज्वाला—पाइ० द्वि० सं० ७२६।

१२ सुख—भग० श० १४ उ० ६ प्र० १२। पृ० ७०७।

१३ वर्ण—भग० श० १४ उ० ६ प्र० १०-११। पृ० ७०७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'०४-सविशेषण-ससमास लेश्या-शब्द

१ दव्वलेस्सं—भग० श १२। उ ५। प्र० १६ (पृ० ६६४)
२ भावलेस्सं— ,, ,,
३ कण्हलेस्सा—पण्ण० प १७। उ २। सू १२ (पृ० ४३७)
४ नीललेस्सा— ,, ,,
५ काऊलेस्सा— ,, ,,
६ तेऊलेस्सा— ,, ,,
७ पम्हलेस्सा— ,, ,,
८ सुक्कलेस्सा— ,, ,,
६ सलेस्सा—पण्ण० प १८। सू० ६। द्वा ८ (पृ० ४५६)
१० अलेस्सा— ,, ,,
११ लेस्सागइ—पण्ण० प १६। सू० १४ (पृ० ४३३)
१२ लेस्साणुवायगइ— ,, ,,
१३ लेस्साभिताव—भग० श ८। उ ८। प्र ३८ (पृ० ५६०)
१४ संखित्तविउलतेऊलेस्से—भग० श २। उ ५। प्र ३६ (पृ० ४३०)
१५ सिओसिणंतेऊलेस्सं—भग० श० १५। पद ६ (पृ० ७१४)
१६ सियलीयंतेऊलेस्सं— ,, ,,
१७ चन्दलेस्सं—सम० ३ (पृ० ३१८)
१८ किट्ठिलेस्सं—सम० ४ (पृ० ३१६)
१६ सूरलेस्सं—सम० ५ (पृ० ३२०)
२० वीर लेस्सं—सम० ६ (पृ० ३२०)
२१ पम्हलेस्सं—सम० ६ (पृ० ३२३)
२२ सुज्जलेस्सं— ,,
२३ रुइल्ललेस्सं— ,,
२४ बंभलेस्सं—सम० ११ (पृ० ३२५)
२५ लोगलेस्सं—सम० १३ (पृ० ३२७)
२६ बजलेस्सं—सम० १३ (पृ० ३२७)
२७ वइरलेस्सं— ,,
२८ असिलेस्सा—सम० १५ (पृ० ३२८)
२६ नन्दलेस्सा—सम० १५ (पृ० ३२६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३० पुप्फलेस्सं—सम० २० (पृ० ३३३)

३१ सुहलेस्सा—चन्द० प्रा १६ (पृ० ७४५)

३२ मन्दलेस्सा— ,,

३३ चित्तंतरलेस्सा—चन्द० प्रा० १६ (पृ० ७४५)

३४ चरिमलेस्संतर—चन्द० प्रा ५ (पृ० ६६४)

३५ छिन्नलेस्साओ—चन्द० प्रा० ६ (पृ० ७८०)

३६ मन्दायवलेस्सा—चन्द० प्रा १६ (पृ० ७४६)

३७ लेस्सा अणुवद्ध चारिणो—चन्द० प्रा० २० (पृ० ७४८)

३८ समलेस्सा—भग० श १ । उ २ । प्र० ७५-७६ (पृ० ३६१)

३६ विसुद्धलेस्सतरागा— ,,

४० अविशुद्धलेस्सतरागा— ,,

४१ चक्खुलोयणलेस्सं—राय० सू० २८ (पृ० ४६)

४२ अवहिल्लेस्से—आया० श्रु १ । अ ६ । उ ५ । सू १६२ (पृ० २२)

—भग० श २ । उ १ । प्र १८ (पृ० ४२२)

—पण्हा श्रु २ अ ५ । सू २६ (पृ० १२३६)

४३ दिव्वाए लेस्साए—पण्ण० प २ । सू २८ (पृ० २६६)

४४ सीयलेस्सा——जीवा० प्रति ३ उ २ । सू १७६ (पृ० ३२०)

४५ परम कण्हलेस्से—पण्ण० प २३ । उ २ । सूत्र ३६ । (पृ० ४६६)

४६ परम सुक्कलेस्साए—भग० श २५ । उ ६ । प्र० ६० । पृ० ८८२

·०५ परिभाषा के उपयोगी पाठ

·०५१ द्रव्यलेश्या की परिभाषा के उपयोगी पाठ

·१ वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श ।

कण्हलेस्सा णं भन्ते ! कइ वण्णा, कइ रसा, कइ गन्धा, कइ फासा पन्नत्ता ? गोयमा ! दव्व लेस्सं पडुच्च पंच वण्णा, जाव अट्ठफासा पन्नत्ता × × × एवं जाव सुक्कलेस्सा ।

—भग० श १२ । उ ५ । प्र १६ (पृ० ६६४)

·२ छ लेश्या और पाँच वर्ण ।

एयाओ णं भन्ते ! छल्लेस्साओ कईसु वण्णेसु साहिज्जंति ? गोयमा ! पंचसु वण्णेसु साहिज्जंति, तंजहा—कण्हलेस्सा कालेएणं वण्णेणं साहिज्जई, नीललेस्सा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीलवण्णेणं साहिज्जई, काऊलेस्सा काललोहिएणं वण्णेणं साहिज्जइ, तेऊलेस्सा लोहियेणं वण्णेणं साहिज्जइ, पह्मलेस्सा हालिद्दएणं वण्णेणं साहिज्जइ, सुक्कलेस्सा सुक्किल्लएणं वण्णेणं साहिज्जइ।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४० (पृ० ४४७)

·३ पुद्गल भी वर्ण, गंध, रस, स्पर्शी है अतः द्रव्यलेश्या पुद्गल है।

पोग्गलत्थिकाएणं भन्ते ! कइ वण्णे, कइ गन्धे, कइ रसे, कइ फासे पन्नते ? गोयमा ! पंच वण्णे, पंच रसे, दुगंधे, अट्ठफासे।

—भग० श २। उ० १०। प्र ५७ (पृ० ४३४)

·४ द्रव्यलेश्या पुद्गल है अतः पुद्गल के गुण भी द्रव्यलेश्या में है।

पोग्गलत्थिकाए रूवी, अजीवे, सासए, अवट्ठिए, लोग दव्वे, से समासओ पंचविहे पन्नत्ते—तंजहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।

१—दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं,

२—खेत्तओ लोयप्पमाणमेत्ते,

३—कालओ न कयाइ, न आसी, जाव णिच्चे,

४—भावओ वण्णमंते, गंध-रस-फासमन्ते।

५—गुणओ गहण गुणे।

—भग० श २। उ १०। प्र ५७ (पृ० ४३४)

·५ द्रव्यलेश्या अनन्त प्रदेशी है।

कण्हलेस्साणं भन्ते ! कइ पएसिया पन्नत्ता ? गोयमा ! अणंत पएसिया पन्नत्ता, एवं जाव सुक्कलेस्सा।

पण्ण० प १७। उ० ४। सू ४६ (पृ० ४४६)

·६ द्रव्यलेश्या असंख्यात् प्रदेशी क्षेत्र-अवगाह करती है।

कण्हलेस्साणं भन्ते ! कइ पएसोगाढा पन्नत्ता ? गोयमा ! असंखेज्जपएसोगाढा पन्नत्ता।

पण्ण० प १७। उ ४। सू ४६ (पृ० ४४६)

·७ द्रव्यलेश्या की अनन्त वर्गणा होती है।

कण्हलेस्साएणं भन्ते ! केवइयाओ वग्गणाओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! अणंताओ वग्गणाओ पन्नत्ताओ एवं जाव सुक्कलेस्साए।

पण्ण० प १७। उ ४। सू ४६ (पृ० ४४६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·८ द्रव्यलेश्या के असंख्यात् स्थान हैं।

केवइया णं भन्ते! कण्हलेस्सा ठाणा पन्नत्ता? गोयमा! असंखेज्जा कण्हलेस्सा ठाणा पन्नत्ता, एवं जाव सुक्कलेस्सा।

पण्ण० प १७। उ ४। सू ५० (पृ० ४४६)

·९ द्रव्यलेश्या गुरूलघु है।

कण्हलेस्साणं भन्ते! किं गुरूया, जाव अगुरूलहुया? गोयमा! णो गुरूया, णो लहुया, गुरूयलहुयावि, अगुरूलहुयावि। से केणट्ठेणं? गोयमा! दव्वलेस्सं पडुच्च ततियपएणं, भावलेस्सं पडुच्च चउत्थपएणं, एवं जाव सुक्कलेस्सा।

भग० श १। उ ९। प्र० २८९-९० (पृ० ४११)

·१० द्रव्यलेश्या जीवग्राह्य है।

जल्लेसाइं दव्वाइं परिआइत्ता कालं करेइ (जीव) तल्लेस्सेसु उववज्जइ।

भग० श ३। उ ४। प्र १७ पृ० ४५६

·११ द्रव्यलेश्या परस्पर परिणामी है।

से नूणं भन्ते! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प ता रूवत्ताए, ता वण्णत्ताए, ता गंधत्ताए ता रसत्ताए ता फासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ।

पण्ण० प १७। उ ५। प्र ५४ (पृ० ४५०)

·१२ द्रव्यलेश्या परस्पर कदाचित् अपरिणामी भी है।

से नूणं भन्ते! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प णो ता रूवत्ताए जाव णो ता फासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ? हंता गोयमा! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प णो ता रूवत्ताए, णो ता वन्नत्ताए, णो ता गंधत्ताए, णो ता रसत्ताए, णो ता फासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ। से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ? गोयमा! आगारभावमायाए वा से सिया, पलिभागभावमायाए वा से सिया।

पण्ण० प १७। उ ५। प्र ५५ (पृ० ४५०)

·१३ द्रव्यलेश्या (सूक्ष्मत्व के कारण) छद्मस्थ अगोचर—अज्ञेय है।

अणगारे णं भन्ते! भावियप्पा अप्पणो कम्मलेस्सं न जाणइ पासइ तं पुण जीव सरूविं सकम्मलेस्सं जाणइ पासइ? गोयमा! अणगारेणं भावियप्पा अप्पणो जाव पासइ।

भग० श १४। उ ९। प्र १ (पृ० ७०६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

.१४ द्रव्यलेश्या अजीवउदयंनिष्पन्न भाव है क्योंकि जीव द्वारा ग्रहण होने के बाद द्रव्य लेश्या का प्रायोगिक परिणमन होता है।

सेकिंतं अजीवोदयनिप्फन्ने ? अजीवोदयनिप्फन्ने अणेगविहे पन्नत्ते, तंजहा— उरालिय वा सरीरं, उरालियसरीरपओगपरिणामियं वा दव्वं, वेउवियं वा सरीरं, वेउव्वियसरीरपओगपरिणामियं वा दव्वं, एवं आहारगं सरीरं, तेयगं सरीरं, कम्मगसरीरं च भाणियव्वं। पओगपरिणामए वण्णे, गंधे, रसे, फासे, सेत्तं अजीवोदयनिप्फन्ने।

अणुओ सू० १२६ । पृ० ११११

.०५२ भावलेश्या की परिभाषा के उपयोगी पाठ

.१ भावलेश्या जीव परिणाम है।

जीवे परिणामे णं भंते! कइविहे? गोयमा! दसविहे पन्नत्ते, तंजहा— गइपरिणामे, इन्दियपरिणामे, कसायपरिणामे, लेस्सापरिणामे, जोगपरिणामे, उवओगपरिणामे, णाणपरिणामे, दंसणपरिणामे, चरित्तपरिणामे, वेयपरिणामे।

पण्ण० प० १३ । सू० १ । पृ० ४०६

.२ भावलेश्या अवर्णी, अगंधी, अरसी, अस्पर्शी है।

(कण्हलेस्सा) भावलेस्सं पडुच्च अवण्णा, अरसा, अगंधा, अफासा, एवं जाव सुक्कलेस्सा।

भग० श० १२ । उ० ५ । प्र० १६ । पृ७ ६६४

.३ भावलेश्या अवर्णी, अगंधी, अरसी, अस्पर्शी तथा जीव परिणाम है अतः जीव है।

जीवत्थिकाए णं भंते! कइ वण्णे, कइ गंधे, कइ रसे, कइ फासे? गोयमा! अवण्णे, जाव अरूवी, जीवे, सासए, अवट्ठिए, लोगदव्वे × × × ।

भग० श० २ । उ० १० । प्र० ५७ । पृ० ४३४

.४ भावलेश्या अगुरुलघु है।

कण्हलेस्साणं भंते। किं गुरुया जाव अगुरुलहुया? णो गुरुया, णो लहुआ, गुरुलहुआ वि, अगुरुलहुया वि। से केणट्ठेणं? गोयमा! दव्वलेस्सं पडुच्च ततियपएणं, भावलेस्सं पडुच्च चउत्थ पएणं, एवं जाव सुक्कलेस्सा।

भग० श० १ । उ० ६ । प्र० २८९-९० । पृ० ४४१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

.५ भावलेश्या उदय निष्पन्न भाव है।

से किं तं जीवोदयनिप्फन्ने ? अणेगविहे पन्नते, तं जहा—णेरइए × × पुढविकाइए जाव तसकाइए, कोहकसाई जाव लोहकसाई × × × कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से × × × संसारत्थे असिद्धे, से तं जीवोदयनिप्फन्ने।

—अणुओ० सू १२६। पृ० ११११

.६ भावलेश्या परस्पर में परिणमन करती है।

गोयमा! (कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता) लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु २, कण्हलेस्सं परिणमइ कण्हलेस्सं परिणमइत्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति।

गोयमा! (कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता) लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु वा विसुज्झमाणेसु नीललेस्सं परिणमइ नीललेस्सं परिणमइत्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति।

—भग० श १३। उ १। प्र १९-२०। पृ० ६७६

.७ भावलेश्या सुगति-दुर्गति की हेतु है। अतः कर्म वन्धन में भी किसी प्रकार का हेतु है।

तओ दुग्गइगामियाओ (कण्ह, नील, काऊलेस्साओ) तओ सुग्गइगामियाओ (तेऊ, पम्ह, सुक्कलेस्साओ)।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४७। पृ० ४४६

·०५३ प्राचीन आचार्यों द्वारा की गई लेश्या की परिभाषा :—

·१ अभयदेवसूरि :—

(क) कृष्णादि द्रव्य सान्निध्य जनितो जीव परिणामो—लेश्या।

यदाह :- कृष्णादि द्रव्य साचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः।
स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्या शब्द प्रयुज्यते॥

—भग० श १। उ १। प्र ५३ की टीका।

[नोट—उपरोक्त पद अनेक प्राचीन आचार्यों ने उद्धृत किया है। 'प्रयुज्यते' की जगह 'प्रवर्तते' शब्द का प्रयोग भी मिलता है।]

(ख) कृष्णादि द्रव्य साचिव्य जनिताऽऽत्मपरिणामरूपां भावलेश्यां।

—भग० श १। उ २। प्र ९७ की टीका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ग) आत्मनि कर्मपुद्गलानाम् लेश्नात्—संश्लेषणात् लेश्या, योगपरिणामश्चैताः, योग निरोधे लेश्यानामभावात्, योगश्च शरीरनामकर्मपरिणति विशेषः।

—भग० श १। उ २। प्र ९८ की टीका।

(घ) द्रव्यतः कृष्णलेश्या औदारिकादि शरीर वर्णः।

—भग० श १। उ ९। प्र २९० की टीका।

(ङ) आत्मनः सम्बन्धनीं कर्मणोयोग्य लेश्या कृष्णादिका कर्म्मणो वा लेश्या 'श्लिश श्लेषणे' इति वचनात् सम्बन्धः कर्मलेश्या।

—भग० श १४। उ ९। प्र १ की टीका।

(च) इयं (लेश्यां) च शरीरनाम कर्म्मपरिणतिरूपा योगपरिणतिरूपत्वात्, योगस्य च शरीरनामकर्म्मपरिणति विशेषत्वात्, यत उक्तं प्रज्ञापना वृत्तिकृता—

"योगपरिणामोलेश्या, कथं पुनर्योग परिणामो लेश्या, यस्मात् सयोगिकेवली शुक्ललेश्यापरिणामेन विहृत्यान्तर्मुहूर्त्ते शेषे योगनिरोधं करोति ततोऽयोगित्वमलेश्यत्वं च प्राप्नोति अतोऽवगम्यते 'योगपरिणामोलेश्ये' ति, स पुनर्योगः शरीरनाम कर्म्मपरिणतिविशेषः, यस्मादुक्तम्—'कर्म्म हि कार्मणस्य कारणमन्येषां च शरीराणा' मिति" तस्मादौदारिकादि शरीरयुक्तस्यात्मनो वीर्यपरिणतिविशेषः काययोगः १, तथौदारिकवैक्रियाहारकशरीरव्यापाराहृतवाग्द्रव्यसमूहसाचिव्यात् जीव-व्यापारो यः स वाग्योगः २, तथौदारिकादि शरीरव्यापाराहृतमनोद्रव्यसमूह साचिव्यात् जीवव्यापारो यः स मनोयोग इति ३, ततो यथैव कायादिकरण युक्तस्यात्मनो वीर्य परिणतिर्योग उच्यते तथैवलेश्यापीति, अन्ये तु व्याचक्षते—'कर्म्मनिस्यन्दो लेश्ये'ति सा च द्रव्यभावभेदात् द्विधा, तत्र द्रव्यलेश्या कृष्णादिद्रव्याण्येव, भावलेश्या तु तज्जन्यो जीवपरिणाम इति।"

(छ) लिश्यते प्राणी कर्मणा यया सा लेश्या।

(ज) यदाह "श्लेष इव वर्णबंधस्य कर्मबंधस्थिति तिविधात्र्यः"।

उपरोक्त तीनों—ठाण० स्था १। सू ५१ पर टीका।

·२ मलयगिरि :

(क) इह योगे सति लेश्या भवति, योगाभावे च न भवति ततो योगेन सहान्वयव्यतिरेकदर्शनात् योगनिमित्ता लेश्येति निश्चीयते, सर्वत्रापि तन्निमित्तत्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चयस्यान्वयव्यतिरेक दर्शनामूलत्वात्, योगनिमित्ततायामपि विकल्पद्वयमवतरति—

किं योगान्तरगतद्रव्यरूपा योगनिमित्तकर्मद्रव्यरूपा वा ? तत्र न तावद्योगनिमित्तकर्म्मद्रव्यरूपा, विकल्प द्वयानतिक्रमात्, तथाहि—योगनिमित्त कर्म्मद्रव्यरूपा सती घातिकर्मद्रव्यरूपा अघातिकर्म्मद्रव्यरूपा वा ? न तावद् घातिकर्म्मद्रव्यरूपा, तेषामभावेऽपि सयोगिकेवलिनि लेश्यायाः सद्भावात्, नापि अघातिकर्म्मरूपा, तत्सद्भावेऽपि अयोगिकेवलिनि लेश्याया अभावात्, ततः पारिशेष्यात् योगान्तगर्तं द्रव्यरूपा प्रत्येया। तानि च योगान्तर्गतानि द्रव्याणि यावत्कषायास्तावत्तेषामप्युदयोपबृंहकाणि भवन्ति, दृष्टं च योगान्तरगतानां द्रव्याणां कषायोदयोपबृंहणसामर्थ्यम्। यथा पित्त द्रव्यस्य—तथाहि—

पित्तप्रकोपविशेषादुपलक्ष्यते महान् प्रवर्द्धमानः कोपः, अन्यच्च-वाह्यान्यपि द्रव्याणि कर्मणामुदयक्षयोपशमादिहेतवः उपलभ्यन्ते, यथा ब्राह्मयोषधिर्ज्ञानावरणक्षयोपशमस्य, सुरापानं ज्ञानावरणोदयस्य, कथमन्यथा युक्तायुक्त विवेकविकलतोपजायते, दधिभोजनं निद्रारूप दर्शनावरणोदयस्य, तत्कि योगद्रव्याणि न भवन्ति ? तेन यः स्थितिपाकविशेषो लेश्यावशादुपगीयते शास्त्रान्तरे स सम्यगुपपन्नः, यतः स्थितिपाकोनामानुभाग उच्यते, तस्य निमित्तं कषायोदयान्तर्गत कृष्णादिलेश्यापरिणामाः, ते च परमार्थतः कषायस्वरूपा एव, तदन्तर्गतत्वात्; केवलं योगान्तर्गत द्रव्य सहकारिकारण भेदवैचित्र्याभ्यां ते कृष्णादिभेदैर्भिन्नाः तारतम्यभेदेन विचित्राश्चोपजायन्ते, तेन यद् भगवता कर्मप्रकृतिः कृता शिवशर्माचार्येण शतकाख्ये ग्रन्थेऽभिहितम्—'ठिइ अणुभागं कसायओ कुणइ' इति तदपि समीचीनमेव, कृष्णादिलेश्या-परिणामानामपि कषायोदयान्तर्गतानां कषायरूपत्वात्। तेन यदुच्यते कैश्चिद्योगपरिणामत्वे लेश्यानाम् "जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ" इति वचनात् प्रकृतिप्रदेशबन्धहेतुत्वमेव स्यान्न कर्म्मस्थिति हेतुत्वमिति, तदपि न समीचीनम्, यथोक्तभावार्थापरिज्ञानात् ? अपि च न लेश्याः स्थितिहेतवः;

किन्तु कषायाः, लेश्यास्तु कषायोदयान्तर्गताः अनुभागहेतवः, अतएव च—'स्थितिपाकविशेषस्तस्य भवति लेश्याविशेषेण' इत्यत्रानुभागप्रतिपत्त्यर्थं पाकग्रहणम्। एतच्च सुनिश्चितं कर्म्मप्रकृतिटीकादिषु, ततः सिद्धान्तपरिज्ञानमपि न सम्यक् तेषामस्ति। यदप्युक्तम—'कर्म्मनिष्यन्दोलेश्या, निष्यन्दरूपत्वे हि यावत् कषायोदयः तावन्निष्यन्दस्यापि सद्भावात्, कर्म्मस्थितिहेतुत्वमपि युज्यते एवेत्यादि, तदप्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शीलम्, लेश्यानामनुभागबन्धहेतुतया स्थितिबंधहेतुत्वायोगात्। अन्यच्च—कर्म्म-निष्यन्दः किं कर्म्मकल्क उत कर्म्मसारः? न तावत्कर्म्मकल्कः तस्यासारतयोत्कृष्टानुभागबन्ध हेतुत्वानुपपत्तिप्रसक्तेः, कल्को हि असारो भवति, असारश्च कथमुत्कृष्टानुभागबन्धहेतुः? अथ चोत्कृष्टानुभागबन्धहेतवोऽपि लेश्या भवन्ति, अथ कर्म्मसार इति पक्षस्तर्हि कस्य कर्म्मणः सार इति वाच्यम्? यथायोगमष्टानामपीतिचेत् अष्टानामपि कर्म्मणां शास्त्रे विपाका वर्ण्यन्ते, न च कस्यापि कर्म्मणो लेश्यारूपो विपाक उपदर्शितः; ततः कथं कर्म्मसारपक्षमङ्गीकुर्म्महे? तस्मात् पूर्वोक्त एव पक्षः श्रेयानित्यंगीकर्त्तव्यः। तस्य हरिभद्रसूरि प्रभृतिभिरपि तत्र तत्र प्रदेशे अंगीकृतत्वादिति।

—पण० प १७। प्रारम्भ में टीका

(ख) उच्यते, लिष्यते—श्लिष्यते आत्मा कर्मणा सहानयेति लेश्या।

—पण्ण० प १७। प्रारम्भ में टीका

·३ उमास्वाति या उमास्वामी :

'तत्वार्थाधिगम' में कोई परिभाषा नहीं दी गयी है।

स्वोपज्ञभाष्य। इसमें भी लेश्या की कोई परिभाषा नहीं है।

·४ पूज्यपादाचार्य :

(क) भावलेश्या कषायोदयरंजिता योगप्रवृत्तिरिति कृत्वा औदयिकीत्युच्यते।

—सर्व० अ २। सू ६।

इसको अकलंक ने उद्धृत किया है।

—राज० अ २। सू ६। पृ० १०९। ला २४

·५ अकलंक देव :

(क) कषायोदयरंजिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या।

—राज० अ २। सू ६। पृ० १०९। ला २१

(ख) द्रव्यलेश्या पुद्गलविपाकिकर्मोदयापादितेति सा नेह परिगृह्यत आत्मनोभावप्रकरणात्।

—राज० अ २। सू ६। पृ० १०९। ला २३

(ग) तस्यात्मपरिणामस्याऽशुद्धिप्रकर्षाप्रकर्षापेक्षया कृष्णादि शब्दोपचारः क्रियते।

—राज० अ २। सू ६। पृ० १०९। ला २८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(घ) कषायश्लेषप्रकर्षाप्रकर्षयुक्ता योगवृत्तिर्लेश्या।

—राज० अ ६। सू ७। पृ० ६०४। ला १३

·६ विद्यानन्दि :

कषायोदयतो योगप्रवृत्तिरूपदर्शिता।
लेश्याजीवस्य कृष्णादिः षड्भेदा भावतोनघैः॥

—श्लो० अ २। सू ६। श्लो ११। पृ ३१६।

·७ सिद्धसेन गणि :

लिश्यन्ते इति लेश्याः, मनोयोगावष्टम्भजनितपरिणामः, आत्मना सह लिश्यते एकीभवतीत्यर्थः।

-- सिद्ध० अ २। सू ६। पृ० १४७

द्रव्यलेश्याः कृष्णादिवर्णमात्रम्।

भावलेश्यास्तु कृष्णादि वर्णद्रव्यावष्टम्भजनिता परिणाम कर्मबन्धनस्थितेर्विधातारः, श्लेषद्रव्यवद् वर्णकस्य चित्राद्यर्पितस्येति, तत्राविशुद्धोत्पन्नमेव कृष्णवर्णस्तत्सम्बद्ध द्रव्यावष्टम्भादविशुद्ध परिणाम उपजायमानः कृष्णलेश्येति व्यपदिश्यते।

आगमश्चायं—

* 'जल्लेसाइं दव्वाइं आदिअन्ति तल्लेस्से परिणाम भवति (प्रज्ञा० लेश्यापदे)

—सिद्ध० अ २। सू ६। पृ० १४७ टीका

·८ विनय विजय गणि :

इन्होंने 'लेश्या' का विवेचन प्रज्ञापना लेश्यापद की वृत्ति को अनुसृत्य किया है निज का कोई विशेष विवेचन नहीं किया है शेष में वृत्ति की भोलावण भी दी है।

लोद्र० स ३। गा २८४

·९ नेमिचन्द्राचार्य चक्रवर्ती :

लिंपइ अप्पीकीरइ एदीए णियअपुण्णपुण्णं च।
जीवोत्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा ॥४८८॥
जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरंजिया होइ।
तत्तो दोण्णं कज्जं बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं ॥४८९॥

* यह पद प्रज्ञापना लेश्यापद में नहीं मिला है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहवा जोगपउत्ती मुक्खोत्ति तहिं हवे लेस्सा ॥५३२॥
वण्णोदयसंपादितसरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा।
मोहुदयखओवसमोवसमखयजजीवफंदणं भावो ॥५३५॥

—गोजी० गाथा।

·१० हेमचन्द्र सूरि द्वारा उद्धृत :

अपरस्त्वाह—ननु कर्मोदय जनितानां नारकत्वादीनां भवत्विहोपन्यासो लेश्यास्तु कस्यचित् कर्मण उदये भवन्तीत्यन्येतन्न प्रसिद्ध' तत्किमितीह तदुपन्यासः ? सत्यं किन्तु योगपरिणामो लेश्याः, योगस्तु त्रिविधोऽपि कर्मोदयजन्य एव ततो लेश्यानामपि तदुभयजन्यत्वं न विहन्यते, अन्येतु मन्यन्ते—कर्माष्टकोदयात् संसारस्थत्वासिद्धत्ववल्लेश्या वत्त्वमपि भावनीयमित्यलम्।

—अणुओ० सू० १२६ पर हेमचन्द्र सूरि वृत्ति।

·११ अज्ञाताचार्याह :

(क) श्लेष इव वर्णबन्धस्य कर्मबन्धस्थितिविधात्र्यः।

—अभयदेव सूरि द्वारा उद्धृत।

(ख) कृष्णादिद्रव्य साचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः।
स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्यशब्दः प्रयुज्यते॥

—अभयदेवसूरि आदि अनेक विद्वानों द्वारा उद्धृत।

(ग) लिश्यते—श्लिष्यते कर्मणो सहऽऽत्माऽनयेति लेश्या।

—अनेक विद्वानों द्वारा उद्धृत।

·०६ लेश्या के भेद :

·०६१ मूलतः-सामान्यतः भेद.

(क) दो भेद.

कण्हलेस्साणं भन्ते ! कइ वण्णा (जाव कइ फासा) पन्नत्ता ? गोयमा ! दव्वलेस्सं पडुच्च पंच वण्णा जाव अट्ठफासा पन्नत्ता, भावलेस्सं पडुच्च अवण्णा (जाव अफासा) पन्नत्ता, एवं जाव सुक्कलेस्सा।

—भग० श १२। उ ५। प्र १६। पृ० ६६४

लेश्या के दो भेद—द्रव्य तथा भाव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) छः भेद.

(१) कइ णं भन्ते ! लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! छल्लेस्साओ पन्नत्ताओ, तं जहा--कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा, तेऊलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा ।

—सम० लेश्या विचार । पृ० ३७५

—सम० ६ । प ३२० (उत्तर केवल)

—भग० श १ । उ २ । प्र ९८ । पृ० ३२०

—भग० श १९ । उ २ । प्र १ । पृ० ७८१

—भग० श २५ । उ १ । प्र १ । पृ० ८५१

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १५ । पृ० ४३७

(२) कइ णं भन्ते ! लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! छल्लेस्साओ पन्नत्ताओ, तं जहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

—भग० श १९ । उ १ । प्र १ । पृ० ७८१

—ठाण० स्था ६ । सू ५०४ । पृ० २७२

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ३१ । पृ० ४४५

—पण्ण० प १७ । उ ५ । सू ५४ । पृ० ४५०

(३) कइ णं भंते ! लेस्सा पन्नत्ता ? गोयमा ! छ लेस्सा पन्नत्ता, तं जहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

—पण्ण० प १७ । उ ६ । सू ५६ । पृ० ४५१

(४) छण्णंपि कम्मलेसाणं, अणुभावे सुणेह मे ॥ १ ॥
कण्हानीला य काऊ य, तेऊ पम्हा तहेव य ।
सुक्कलेसा य छट्ठा य, नामाइं तु जहक्कमं ॥ ३ ॥

—उत्त० अ ३४ । गा १, ३ । पृ० १०४५, ४६

लेश्या के छह भेद=कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल ।

·०६२ दलगत भेद :

(क) द्रव्यलेश्या के—

(१) दुर्गन्धवाली—सुगन्धवाली.

कइ णं भन्ते ! लेस्साओ दुब्भिगंधाओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! तओ लेस्साओ दुब्भिगंधाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा । कइ णं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भन्ते ! लेस्साओ सुब्भिगंधाओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! तओ लेस्साओ सुब्भिगंधाओ पन्नत्ताओ, तंजहा— तेऊलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा ।

—ठाण० स्था ३ । उ ४ । सू २२१ । (उत्तर केवल) पृ० २२०

— पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४७ । पृ० ४४८

प्रथम तीन लेश्या दुर्गन्धवाली तथा पश्चात् की तीन लेश्या सुगन्धवाली हैं।

(२) मनोज्ञ—अमनोज्ञ.

(तओ) अमणुन्नाओ, (तओ) मनुणुन्नाओ ।

—ठाण० स्था ३ । उ ४ । सू २२१ । पृ० २२०

प्रथम तीन लेश्या (रस की अपेक्षा) अमनोज्ञ तथा पश्चात् की तीन मनोज्ञ हैं।

(३) शीतरूक्ष—उष्णस्निग्ध.

(तओ) सीयलुक्खाओ, (तओ) निद्धुण्हाओ ।

—ठाण० स्था ३ । उ ४ । सू २२१ । पृ० २२०

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४७ । पृ० ६४६

प्रथम तीन लेश्या (स्पर्श की अपेक्षा) शीतरूक्ष तथा पश्चात् की तीन उष्णस्निग्ध हैं।

(४) विशुद्ध—अविशुद्ध.

एवं तओ अविशुद्धाओ, तओ विशुद्धाओ ।

—ठाण० स्था ३ । उ ४ । सू २२१ । पृ० २२०

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४७ । पृ० ४४६

प्रथम तीन लेश्या (वर्ण की अपेक्षा) अविशुद्ध, पश्चात् की तीन लेश्या विशुद्ध वर्णवाली हैं।

(ख) भावलेश्या के—

(१) धर्म—अधर्म.

कण्हा नीला काऊ, तिण्णि वि एयाओ अहम्मलेस्साओ ।

तेऊ पम्हा सुक्का, तिण्णि वि एयाओ धम्मलेसाओ ।

—उत्त० अ ३४ । गा ५६, ५७ पूर्वार्ध । पृ० १०४८

प्रथम तीन अधर्म लेश्या हैं तथा पश्चात् की तीन धर्म लेश्या हैं।

(२) प्रशस्त—अप्रशस्त.

तओ अप्पसत्थाओ, तओ पसत्थाओ ।

—ठाण० स्था ३ । उ ४ । सू २२१ । पृ० २२०

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४७ पृ० ४४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम तीन लेश्या अप्रशस्त तथा पश्चात् की तीन प्रशस्त हैं।

(३) संक्लिष्ट—असंक्लिष्ट

तओ संकिलिट्ठाओ, तओ असंकिलिट्ठाओ।

ठाण० स्था ३ । उ ४ । सू २२० । पृ० २२० (तओ बाद)

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४७ । पृ० ४४६

प्रथम तीन संक्लिष्ट परिणामवाली तथा पश्चात् की तीन लेश्या असंक्लिष्ट परिणामवाली हैं।

(४) दुर्गतिगमी—सुगतिगामी

तओ दुग्गइगामियाओ, तओ सुगइगामियाओ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४७ । पृ० ४४६

(तओ) एवं दुग्गइगामिणीओ, सुगइगामिणीओ।

—ठाण० स्था ३ । उ ४ । सू २२१ । पृ० २२०

प्रथम तीन लेश्या दुर्गति ले जानेवाली है तथा पश्चात् की तीन सुगति ले जानेवाली हैं।

(५) विशुद्ध—अविशुद्ध

एवं तओ अविसुद्धाओ, तओ विसुद्धाओ।

—ठाण० स्था० ३ । उ ४ । सू २२० । पृ० २२० (एवं व तओ बाद)

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४७ । पृ० ४४६

प्रथम तीन लेश्या (परिणाम की अपेक्षा) अविशुद्ध है तथा पश्चात् की तीन विशुद्ध हैं।

.०७ लेश्या पर विवेचन गाथा

आगमों में लेश्या पर विवेचन विभिन्न अपेक्षाओं से किया गया है। तीन आगमों में यथा—भगवई, पन्नवणा तथा उत्तराज्झयणं में लेश्या पर विशेष विवेचन किया गया है। विवेचन के प्रारम्भ में किन-किन अपेक्षाओं से विवेचन किया गया है इसकी एक गाथा दी गई है। भगवई तथा पन्नवण्णा में एक समान गाथा है तथा उत्तराज्झयणं में भिन्न गाथा है

(क) परिणाम-वन्न-रस-गन्ध-सुद्ध - अपसत्थ-संक्लिट्ठुण्हा।
गइ-परिणाम - पएसो - गाह - वग्गणा - ट्ठाणमप्पबहुं॥

—भग० श ४ । उ १० । गा० १ । पृ० ४६८

—पण्ण० प १७ । उ ४ । गा० १ । पृ० ४४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) परिणाम, (२) वर्ण, (३) रस, (४) गन्ध, (५) शुद्ध, (६) अप्रशस्त, (७) संक्लिष्ट, (८) उष्ण, (६) गति, (१०) परिणाम (संक्रमण), (११) प्रदेश, (१२) अवगाहना, (१३) वर्गणा, (१४) स्थान, (१५) अल्पवहुत्व इन १५ प्रकार से लेश्या का विवेचन किया गया है।

(ख) नामाइं वन्न रस गन्ध, फास परिणाम लक्खणं।
ठाणं ठिईं गइं चाउं, लेसाणं तु सुणेह मे ॥

—उत्त० उ ३४। गा० २। पृ० १०४६

(१) नाम, (२) वर्ण, (३) रस, (४) गन्ध, (५) स्पर्श, (६) परिणाम, (७) लक्षण, (८) स्थान, (६) स्थिति, (१०) गति, (११) आयु इन ११ अपेक्षाओं से लेश्या का वर्णन सुनो।

दोनों पाठ मिलाकर निम्नलिखित अपेक्षाओं से लेश्याओं का विवेचन बनता है।

१ द्रव्यलेश्या—नाम, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, स्थान, अल्पवहुत्व।

२ भावलेश्या—नाम, शुद्धत्व, प्रशस्तत्व, संक्लिष्ठत्व, परिणाम, स्थान, गति, लक्षण, अल्पवहुत्व।

(३) विविध—वर्गणा।

इनके सिवाय भी अन्य अपेक्षाओं से लेश्या का विवेचन मिलता है।
(देखो विषय सूची)

·०८ लेश्या का निक्षेपों की अपेक्षा विवेचन

आगम नोआगतो, नोआगमतो य सो तिविहो।
लेसाणं निक्खेवो, चउक्कओ दुविह होइ नायव्वो ॥५३४॥
जाणगभवियसरीरा, तव्वइरित्ता य सा पुणो दुविहा।
कम्मा नोकम्मे या, नोकम्मे हुंति दुविहा उ ॥५३५॥
जीवाणमजीवाण य, दुविहा जीवाण होइ नायव्वा।
भवमभवसिद्धिआणं, दुविहाणवि होइ सत्तविहा ॥५३६॥
अजीवकम्मनोदव्व-लेसा, सा दसविहा उ नायव्वा।
चन्दाण य सुराण य, गहगणनक्खत्ततारणं ॥५३७॥
आभरणच्छायणा-दंसगाण, मणिकागिणीणजा लेसा।
अजीवदव्वलेसा, नायव्वा दसविहा एसा ॥५३८॥
जा दव्वकम्मलेसा, सा नियमा छव्विहा उ नायव्वा।
किण्हा नीला काऊ, तेऊ पम्हा य सुक्का य ॥५३६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुविहा उ भावलेस्सा, विसुद्धलेस्सा तहेव अविसुद्धा।
दुविहा विसुद्धलेसा, उवसमखइआ कसायाणं ।।५४०।।
अविसुद्धभावलेसा, सा दुविहा नियमसो उ नायव्वा।
पिज्जमि अ दोसम्मि अ, अहिगारो कम्मलेस्साए।।५४१।।
नो-कम्मदव्वलेसा, पओगसा वीससाउ नायव्वा।
भावे उदओ भणिओ, छण्हं लेसाण जीवेसु।।५४२।।
अज्झयेण निक्खेवो, चउक्कओ दुविह होइ दव्वम्मि।
आगम नोआगतो, नो आगमतो यं तं तिविहं।।५४३।।
जाणगभवियसरीरं, तव्वइरित्तं-च पोत्यगइसु।
अज्झप्पस्साणयणं, नायव्वं भावमज्झयणं।।५४४।।

—उत्त० अ ३४। निर्युक्तिगाथा

लेश्या के दो विवेचन—आगम से, नोआगम से।

नोआगम विवेचन तीन प्रकार का होता है।

लेश्या शब्द का विवेचन निक्षेपों की अपेक्षा चार प्रकार का है, यथा—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव।

लेश्या दो प्रकार की है—जाणगभविय शरीरी तथा तद्‌व्यतिरिक्त।

तद्‌व्यतिरिक्त के दो भेद हैं—कार्मण तथा नोकार्मण।

नो कार्मण के दो भेद हैं—जीव लेश्या तथा अजीव लेश्या।

जीव लेश्या के दो भेद हैं—भवसिद्धिक तथा अभवसिद्धिक।

औदारिक, औदारिकमिश्र आदि की अपेक्षा लेश्या के सात भेद हैं। या कृष्णादि ६ तथा संयोगजा सात भेद हो सकते हैं।

अजीव नोकर्म द्रव्यलेश्या के दश भेद हैं, यथा—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारा लेश्या, आभरण, छाया, दर्पण, मणि, कांकणी लेश्या।

द्रव्य कर्म लेश्या के छ भेद हैं, यथा—कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, तथा शुक्ल।

भाव लेश्या के दो भेद हैं—विशुद्ध तथा अविशुद्ध।

विशुद्ध लेश्या के दो भेद हैं—उपशम कषाय लेश्या तथा क्षायिक कषाय लेश्या।

अविशुद्ध लेश्या के दो भेद हैं—रागविषय कषाय लेश्या तथा द्वेष विषय कषाय लेश्या।

नोकर्म द्रव्य लेश्या के दो भेद भी होते हैं—प्रायोगिक तथा विस्रसा।

भाव की अपेक्षा जीव के उदय भाव में छहों लेश्या होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·१।·२ द्रव्यलेश्या (प्रायोगिक)

·११ द्रव्यलेश्या के वर्ण

कण्हलेस्साणं भंते कइ वण्णा ××× पन्नता ? गोयमा ! दव्वलेस्सं पडुच्च पंचवण्णा ××× एवं जाव सुक्कलेस्सा।

—भग० श १२। उ ५। प्र १६। पृ ६६४

द्रव्य लेश्या के छहों भेद पांच वर्ण वाले हैं।

११.१ कृष्ण लेश्या के वर्ण।

(क) कण्हलेस्सा णं भंते ! वन्नेणं केरिसिया पन्नत्ता ? गोगमा ! से जहानामए जीमूए इ वा अंजणे इ वा खंजणे इ वा कज्जले इ वा गवले इ व गवलवलए इ वा जंबूफले इ वा अद्दारिट्ठपुप्फे इ वा परपुट्ठे इ वा भमरे इ वा भमरावली इ वा गयकलभे इ वा किण्हकेसरे इ वा आगासथिग्गले इ वा कण्हासोए इ वा कण्हकंणवीरए वा कण्हबंधुजीवए इ वा, भवे एयारूवे ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, कण्हलेस्सा णं इत्तो अणिट्ठतरिया चेव अकंतरिया चेव अप्पियतरिया चेव अमणुन्नतरिया चेव अमणामतरिया चेव वन्नेणं पन्नत्ता।

—पण्ण० प १७ उ ४। सू ३४। पृ० ४४६

(ख) जीमूयनिद्धसंकासा, गवलरिट्ठगसन्निभा।
खंजणनयणनिभा, किण्हलेस्सा उ वण्णओ॥

—उत्त० अ ३४। गा ४। पृ० १०४६

(ग) कण्हलेस्सा कालएणं साहिज्जइ।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४०। पृ० ४४७

घने मेघ, अंजन, खंजन, काजल, बकरे के सींग, वलयाकार सींग, जासुन, अरीठे के फूल, कोयल, भ्रमर, भ्रमर की पंक्ति, गज शावक, काली केसर, मेघाच्छादित घटाटोप आकाश, कृष्ण अशोक, काली कनेर, काला बंधुजीव, आँख की पुतली, आदि के वर्ण की कृष्णता से अधिक के अंकतकर, अनिष्टकर, अप्रीतकर, अमनोज्ञ तथा अनभावने वर्ण वाली कृष्णलेश्या होती है।

कृष्ण लेश्या पंचवर्ण में काले वर्णवाली होती है।

११.२ नील लेश्या के वर्ण।

(क) नीललेस्सा णं भन्ते ! केरिसिया वन्नेणं पन्नत्ता ? गोयमा ! से जहानामए भिंगए इ वा भिंगपत्ते इ वा चासे इ वा चासपिच्छए इ वा सुए इ वा सुयपिच्छे इ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वा वणराई इ वा उच्चंतए इ वा पारेवयगीवा इ वा मोरगीवा इ वा हलहरवसणे इ वा अयसिकुसुमे इ वा वणकुसुमे इ वा अंजणकेसियाकुसुमे इ वा नीलुप्पले इ वा नीलाऽसोए इ वा नीलकणवीरए इ वा नीलबन्धुजीवे इ वा, भवेयारूवे ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । एत्तो जाव अमणामतरिया चेव वन्नेणं पन्नत्ता ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ३५ । पृ ४४६

(ख) नीलाऽसोगसंकासा, चासपिच्छसमप्पभा ।
वेरुलियनिद्धसंकासा, नीललेसा उ वण्णओ ।।

—उत्त० अ ३४ । गा ५ । पृ० १०४६

(ग) नीललेस्सा नीलवन्नेणं साहिज्जइ ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४० । पृ० ४४७

भृंग, भृंग की पंख, चास, चासपिच्छ, शुक, शुक के पंख, श्यामा, वनराजि, उच्चंतक, कबूतर की ग्रीवा, मोरकी की ग्रीवा, बलदेव के वस्त्र, अलसीपुष्प, वनफूल, अंजन के शिकर पुष्प, नीलोत्पल, नीलाशोक, नीलकणवीर, नीलवंधुजीव, स्निग्ध नीलमणि आदि के वर्ण की नीलता से अधिक अनिष्टकर, अकंतर, अप्रीतकर, अमनोज्ञ, अनभावने नील वर्ण वाली नील लेश्या होती है ।

नील लेश्या पंचवर्ण में नील वर्णवाली होती है ।

११·३ कापोत लेश्या के वर्ण ।

(क) काऊलेस्सा णं भन्ते ! केरिसिया वन्नेणं पन्नत्ता ? गोयमा ! से जहानामए खइरसारए इ वा कइरसारए इ वा धमाससारे इ वा तंबे इ वा तंबकरोडे इ वा तंबच्छियाडियाए इ वा वाइंगणिकुसुमे इ वा कोइलच्छदकुसुमे इ वा जवासाकुसुमे इ वा, भवेयारूवे ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । काऊलेस्सा णं एत्तो अणिट्ठतरिया जाव अमणामतरिया चेव वन्नेणं पन्नत्ता ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ३६ । पृ ४४६

(ख) अयसीपुप्फसंकासा, कोइलच्छदसन्निभा ।
पारेवयगीवनिभा, काऊलेसा उ वण्णओ ।।

—उत्त० अ ३४ । गा ६ । पृ १०४६

(ग काऊलेस्सा काललोहिएणं वन्नेणं साहिज्जइ ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू पृ ४४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खेरसार, करीरसार, धमासार, ताम्र, ताम्रकरोटक, ताम्र की कटोरी, बैंगनी पुष्प, कोकिलच्छद (तेल कंटक) पुष्प, जवासा कुसुम, अलसी के फूल, कोयल के पंख, कबुतर की ग्रीवा आदि के वर्ण के कापोतीत्व से अधिक अनिष्टकर, अकंतकर, अप्रीतकर, अमनोज्ञ तथा अनभावने कापोत वर्ण वाली कापोत लेश्या होती है।

कापोत लेश्या पंचवर्ण में काल-लोहित वर्णवाली होती है।

११.४ तेजोलेश्या के वर्ण।

(क) तेऊलेस्सा णं भंते ! केरिसिया वन्नेणं पन्नत्ता ? गोयमा ! से जहानामए ससरुहिरए इ वा उरब्भरुहिरे इ वा वराहरुहिरे इ वा संबररुहिरे इ वा मणुस्सरुहिरे इ वा इंदगोपे इ वा वालेंदगोपे इ वा बालदिवायरे इ वा संझारागे इ वा गुंजद्धरागे इ वा जाइहिंगुले इ वा पवालंकुरे इ वा लक्खारसे इ वा लोहिअक्खमणी इ वा किमिरागकंबले इ वा गयतालुए इ वा चिणपिट्ठरासी इ वा पारिजायकुसुमे इ वा जासुमणकुसुमे इ वा किंसुयपुप्फरासी इ वा रत्तुप्पले इ वा रत्तासोगे इ वा रत्तकणवीरए इ वा रत्तबंधुयजीवए इ वा, भवेयारूवे ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। तेऊलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव वन्नेणं पन्नत्ता।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ३७। पृ० ४४७

(ख) हिंगुलधाउसंकासा, तरुणाइच्चसंनिभा।
सुयतुंडपईवनिभा, तेऊलेसा उ वण्णओ॥

—उत्त० अ ३४। गा ७ पृ० १०४६

(ग) तेऊलेस्सा लोहिएणं वन्नेणं साहिज्जइ।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४०। पृ० ४४७

शशक का रुधिर, मेष का रुधिर, बराह का रुधिर, सांवर का रुधिर, मनुष्य का रुधिर, इन्द्रगोप, नवीन इन्द्रगोप, बालसूर्य या संध्या का रंग, जाति हिंगुल, प्रवालांकुर, लाक्षारस, लोहिताक्षमणि, किरमिची रंग की कम्बल, गज का तालु, दाल की पिष्ट-राशि, पारिजात कुसुम, जपाके सुमन, केसु पुष्पराशि, रक्तोत्पल, रक्ताशोक, रक्त कनेर, रक्तवन्धुजीव, तोते की चोंच, दीपशिखा आदि के रक्त वर्ण से अधिक इष्टकर, कंतकर, प्रीतकर, मनोज्ञ तथा मनभावने लाल वर्णवाली तेजो लेश्या होती है।

पंचवर्ण में तेजोलेश्या रक्त वर्ण की होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११·५ पद्मलेश्या के वर्ण ।

(क) पम्हलेस्सा णं भंते ! केरिसिया वन्नेणं पन्नत्ता ? गोयमा ! से जहानामए चम्पे इ वा चंपयछल्ली इ वा चंपयभेये इ वा हालिद्दा इ वा हालिद्दगुलिया इ वा हालिद्दभेये इ वा हरियाले इ वा हरियालगुलिया इ वा हरियालभेये इ वा चिउरे इ वा चिउररागे इ वा सुवन्नसिप्पी इ वा वरकणगणिहसे इ वा वरपुरिसवसणे इ वा अल्लइकुसुमे इ वा चंपयकुसुमे इ वा कण्णियारकुसुमे इ वा कुहंडयकुसुमे इ वा सुवण्णजूहिया इ वा सुहिरन्नियाकुसुमे इ वा कोरिंटमल्लदामे इ वा पीतासोगे इ वा पीतकणवीरे इ वा पीतबंधुजीवए इ वा, भवेयारूवे ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । पम्हलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया जाव मणामतरिया चेव वन्नेणं पन्नत्ता ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ३८ । पृ० ४४७

(ख) हरियालभेयसंकासा, हलिद्दाभेयसमप्पभा ।
सणासणकुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ ॥

—उत्त० अ ३४ । गा ८ । पृ० १०४६

(ग) पम्हलेस्सा हालिद्दएणं वन्नेणं साहिज्जइ ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४० । पृ० ४४७

चम्पा, चम्पा की छाल, चम्पा का खण्ड, हल्दी, हल्दी की गोली, हल्दी का टुकड़ा, हड़ताल, हड़ताल गुटिका, हड़ताल खण्ड, चिकुर, चिकुरराग, सोने की छीप, श्रेष्ठ सुवर्ण, वासुदेव का वस्त्र, अल्लकी पुष्प, चम्पक पुष्प, कर्णिकार पुष्प, (कनेर का फूल) कुष्माण्ड कुसुम, सुवर्ण जूही, सुहिरिण्यक, कोरंटक की माला, पीला अशोक, पीत कनेर, पीत वन्धुजीव, सन के फूल, असन के फूल आदि के वर्ण की पीतता से अधिक इष्टकर, कंतकर, प्रीतकर, मनोज्ञ, मनभावने वर्णवाली पद्मलेश्या होती है।

पद्मलेश्या पंचवर्ण में पीले वर्ण की है ।

११·६ शुक्ललेश्या के वर्ण ।

(क) सुक्कलेस्साणं भंते ! किरिसिया वन्नेणं पन्नत्ता ? गोयमा ! से जहानामए अंके इ वा संखे इ वा चन्दे । इ वा कुंदे इ वा दगे इ वा दगरए इ वा दहि इ वा दहिघणे इ वा खीरे इ वा खीरपूरए इ वा सुक्कच्छिवाडिया इ वा पेहुणभिंजिया इ वा घंतधोयरुप्पपट्टे इ वा सारदबलाहए इ वा कुमुददले इ वा पोंडरीयदले इ वा सालिपिट्ठरासी इ वा कुडगपुप्फरासी इ वा सिंदुवारमल्लदामे इ वा सेयासोए इ वा सेय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कणवीरे इ वा सेयबंधुजीवए इ वा, भवेयारूवे ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । सुक्कलेसा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव मणुण्णतरिया चेव (मणामतरिया चेव) वन्नेणं पन्नत्ता ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ३६ । पृ० ४४७

(ख) संखंककुंदसंकासा, खीरपूरसमप्पभा ।
रययहारसंकासा, सुक्कलेसा उ वण्णओ ।।

—उत्त० अ ३४ । गा ८ । पृ० १०४६

(ग) सुक्कलेस्सा सुक्किल्लएणं वन्नेणं साहिज्जइ ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४० । पृ० ४४७

अंकरत्न, शंख, चन्द्र, कुंद-मोगरा, पानी, पानी की बूँद, दही, दहीपिण्ड, क्षीर दूध, खीर, शुष्क फली विशेष, मयुर पिच्छ का मध्यभाग, अग्नि में तपा कर शुद्ध किया हुआ रजतपट्ट, शरतकाल का मेघ, कुमुददल, पुंडरीक दल, शालिपिष्टराजी, कुटज पुष्प राशी, सिंदुवार पुष्प की माला, श्वेत अशोक, श्वेत केनर, श्वेत बन्धुजीव, सुचकन्द के फूल, दूध की धारा, रजतहार आदि के वर्ण की श्वेतता से अधिक इष्टकर, कंतकर, प्रीतकर, मनोज्ञ, मनभावने श्वेतवर्णवाली शुक्ललेश्या होती है ।

पंचवर्ण में शुक्ललेश्या श्वेत-शुक्ल वर्णवाली है ।

·१२ द्रव्यलेश्या की गन्ध

कण्हलेस्सा णं भन्ते ! कइ × × × गन्धा × × × पन्नत्ता ? गोयमा ! दव्वलेस्सं पडुच्च × × × दुगन्धा × × × एवं जाव सुक्कलेस्सा ।

—भग० श १२ । उ ५ । प्र १६ । पृ० ६६४

द्रव्यलेश्या के छहों भेद दो गन्धवाले हैं ।

१२·१— प्रथम तीन लेश्या दुर्गन्धवाली हैं ।

(क) कइ णं भंते ! लेस्साओ दुब्भिगंधाओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! तओ लेस्साओ दुब्भिगंधाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४७ । पृ० ४४७

—ठाण० स्था ३ । उ ४ । सू २२१ । पृ० २२० (उत्तर केवल)

(ख) जह गोमडस्स गंधो, सुणगमडस्स व जहा अहिमडस्स ।
एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं ।।

—उत्त० अ ३४ । गा १६ । पृ० १०४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, दुर्गन्धित द्रव्यवाली हैं। मृत गाय, मृत श्वान तथा मृत सर्प की जैसी दुर्गन्ध होती है उससे अनन्तगुणी दुर्गन्ध इन तीन अप्रशस्त लेश्याओं की होती है।

१२·२ पश्चात् की तीन लेश्या सुगन्धवाली है।

(क) कइ णं भंते! लेस्साओ सुब्भिगंधाओ पन्नत्ताओ? गोयमा! तओ लेस्साओ सुब्भिगंधाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—तेऊलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४७। पृ० ४४८,६

- ठाण० स्था ३। उ ४। सू २२१। पृ० २२० (उत्तर केवल)

(ख) जह सुरभिकुसुमगंधो, गंधवासाण पिस्समाणाणं।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि॥

—उत्त० अ ३४। गा १७। पृ० १०४६

तेजो लेश्या, पद्मलेश्या तथा शुक्ललेश्या सुगन्धित द्रव्यवाली हैं तथा इनकी सुगन्ध सुरभित पुष्पों तथा घिसे हुए सुगन्धित द्रव्यों से अनन्तगुणी सुगन्धवाली हैं।

.१३ द्रव्यलेश्या के रस :—

कण्हलेस्साणं भन्ते कइ × × रसा × × पन्नत्ता? गोयमा! दव्वलेस्सं पडुच्च × × पंच रसा × × एवं जाव सुक्कलेस्सा।

—भग० श १२। उ ५। प्र १६। पृ० ६६४

द्रव्यलेश्या के छहों भेद पाँचरसवाले हैं।

१३·१ कृष्णलेश्या के रस

(क) कण्हलेस्सा णं भंते! केरिसिया आसाएणं पन्नत्ता? गोयमा! से जहानामए निंबे इ वा निंबसारे इ वा निंबछल्ली इ वा निंबफाणिए इ वा कुडए इ वा कुडगफलए इ वा कुडगछल्ली इ वा कुडगफाणिए इ वा कडुगतुंबी इ वा कडुगतुंबिफले इ वा खारतउसी इ वा खारतउसीफले इ वा देवदाली इ वा देवदालीपुप्फे इ वा मियवालुंकी इ वा मियवालुंकीफले इ वा घोसाडए इ वा घोसाडइफले इ वा कण्हकंदए इ वा वज्जकंदए इ वा, भवेयारूवे? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, कण्हलेस्सा णं एत्तो अणिट्ठतरिया चेव जाव अमणामतरिया चेव आसाएणं पन्नत्ता।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४१। पृ० ४४७-४४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) जह कडुयतुंबगरसो, निंबरसो कडुयरोहिणिरसो वा।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो य किण्हाए नायव्वो॥

—उत्त० अ ३४। गा १०। पृ० १०४६

नीम, नीमसार, नीम की छाल, नीम की क्वाथ, कुटज, कुटज फल, कुटज छाल, कुटज क्वाथ, कडुवी तुंबी, कडुवी तुम्बी का फल, क्षास्त्र पुष्पी, उसका फल, देवदाली, उसका पुष्प, मृगवालुंकी, उसका फल, घोषातकी, उसका फल, कृष्णकंद, वज्रकंद, कटुरोहिणी आदि के स्वाद से अनिष्टकर, अकंतकर अप्रीतकर, अमनोज्ञ तथा अनभावने आस्वादवाली कृष्णलेश्या होती है।

१३·२ नीललेश्या के रस

(क) नीललेस्साए पुच्छा। गोयमा! से जहानामए भंगी इ वा भंगीरए इ वा पाढा इ वा चविया इ वा चित्तामूलए इ वा पिप्पली इ वा पिप्पलीमूलए इ वा पिप्पलीचुण्णे इ वा मिरिए इ वा मिरियचुंण्णए इ वा सिंगबेरे इ वा सिंगबेरचुण्णे इ वा, भवेयारूवे? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, नीललेस्सा णं एत्तो जाव अमणामतरिया चेव आसाएणं पन्नत्ता।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४२। पृ० ४४८

(ख) जह तिगडुयस्स रसो, तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ नीलाए नायव्वो॥

—उत्त० अ ३४। गा ११। पृ० १०४६

भंगी-भांग, भंगीरज, पाठा, चर्व्यक, चित्रमूल, पींपल, पींपल मूल, पींपल चूर्ण, मरि, मरिचूर्ण, सोंठ, सोंठचूर्ण, मीर्च, गजपींपल आदि के आस्वाद से अधिक अनिष्टकर, अकंतकर, अप्रीतकर, अमनोज्ञ तथा अनभावने आस्वादवाली नीललेश्या होती है।

१३·३ कापोत लेश्या के रस

(क) काऊलेस्साए पुच्छा। गोयमा! से जहानामए अंबाण वा अंबाडगाण वा माउलिंगाण वा बिल्लाण वा कविट्ठाण वा भज्जाण वा फणसाण वा दाडिमाण वा पारेवताण वा अक्खोडयाण वा चोराण वा बोराण वा तिंदुयाण वा अपक्काणं अपरिवागाणं वन्नेणं अणुववेयाणं गंधेणं अणुववेयाणं फासेणं अणुववेयाणं, भवेयारूवे? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, जाव एत्तो अमणामतरिया चेव काऊलेस्सा आस्साएणं पन्नत्ता।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४३। पृ० ४४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) जह तरुणअंबगरसो, तुवरकविट्ठस्स वावि जारिसओ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ काऊए नायव्वो।।

—उत्त० अ ३४। गा १२। पृ० १०४६

आम्रातक, बिजोरा, बीलां, कपित्थ, भज्जा, फणस, दाडिम (अनार) पारापत, अखोड, चोर, बोर, तिंदक (अपक्व), सम्पूर्ण परिपाक को अप्राप्त, विशिष्ट वर्ण, गन्ध तथा स्पर्श रहित कच्चे आम, तूवर, कच्चे कपित्थ के आस्वाद से अधिक अनिष्टकर, अकंतकर, अप्रीतकर, अमनोज्ञ, अनभावने आस्वादवाली कापोतलेश्या होती है।

१३.४ तेजोलेश्या के रस

(क) तेऊलेस्सा णं भंते! पुच्छा। गोयमा! से जहानामए अंबाण वा जाव पक्काणं परियावन्नाणं वन्नेणं उववेयाणं पसत्थेणं जाव फासेणं जाव एत्तो मणामतरिया चेव तेऊलेस्सा आसाएणं पन्नत्ता।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४४। पृ० ४४८

(ख) जह परिणयंबगरसो, पक्ककविट्ठस्स वा वि जारिसओ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ तेऊए नायव्वो।।

—उत्त० अ ३४। गा १३। पृ० १०४६

आम आदि यावत् (देखो कापोत लेश्या) पक्व, अच्छी तरह से परिपक्व, प्रशस्त वर्ण, गंध तथा स्पर्शवाले तथा कवीठ आदि के आस्वाद से अधिक इष्टकर, कंतकर, प्रीतकर, मनोज्ञ तथा मनभावने आस्वादवाली तेजोलेश्या होती है। अनन्तगुण मधुर आस्वादवाली होती है।

१३.५ पद्म लेश्या के रस

(क) पम्हलेस्साए पुच्छा। गोयमा! से जहानामए चन्दप्पभा इ वा मणसिला इ वा वरसीधू इ वा वरवारुणी इ वा पत्तासवे इ वा पुप्फासवे इ वा फलासवे इ वा चोयासवे इ वा आसवे इ वा महू इ वा मेरए इ वा कविसाणए इ वा खज्जूरसारए इ वा मुद्दियासारए इ वा सुपक्कखोयरसे इ वा अट्ठपिट्ठणिट्ठिया इ वा जम्बुफलकालिया इ वा वरप्पसन्ना इ वा [आसला] मंसला पेसला ईसिं अट्ठवलंबिणी इसिं वोच्छेदकडुई ईसिं तंबच्छिकरणी उक्कोसमयपत्ता वन्नेणं उववेया जाव फासेणं, आसायणिज्जा वीसायणिज्जा पीणणिज्जा बिंहणिज्जा दीवणिज्जा दप्पणिज्जा मयणिज्जा सव्वेंदियगायपल्हायणिज्जा, भवेयारूवा? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, पम्हलेस्सा एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव आसएणं पन्नत्ता।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४५। पृ० ४४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) वरवारुणीए व रसो, विविहाण व आसवाण जारिसओ।
महुमेरयस्स व रसो, एत्तो पम्हाए परएणं ॥

—उत्त० अ ३४ । गा १४ । पृ० १०४६

चन्द्रप्रभा, मणिशीला, श्रेष्ठसीधु, श्रेष्टवारूणी, पत्रासव, पुष्पासव, फलासव, चोयासव, आसव, मधु, मैरेय, कापिशायन, खर्जुरसार, द्राक्षासार, सुपक्व इक्षुरस, अष्टप्रकारीयपिष्ट, जाम्बुफल कालिका, श्रेष्ट प्रसन्ना, आसला, मासला, पेशल, इषत् ओष्ठावलंबिनी, इषत् व्यवच्छेद कटुका, इषत् ताम्राक्षिकरणी, उत्कृष्ट मद्प्रयुक्ता, उत्तम वर्ण, गंध, स्पर्शवाले, आस्वादनीय, विस्वादनीय, पीनेयोग्य, बृंहणीय, पुष्टिकारक, प्रदीप्तिकारक, दर्पणीय, मदनीय, सर्व इन्द्रिय, सर्व गात्र को आनन्दकारी आस्वाद से अधिक इष्टकर, कंतकर, प्रीतकर, मनोज्ञ तथा मनभावने आस्वाद वाली पद्म लेश्या होती है। मद, आसव, मधु, मेरक आदि से अनन्त गुण मधुर आस्वादन वाली होती है।

१३.६ शुक्ल लेश्या के रस

(क) सुक्कलेस्सा णं भन्ते! केरिसिया आसाएणं पन्नत्ता? गोयमा! से जहानामए गुले इ वा खंडे इ वा सक्करा इ वा मच्छंडिया इ वा पप्पडमोदए इ वा भिसकंदए इ वा पुप्फुत्तरा इ वा पउमुत्तरा इ वा आदंसिय इ वा सिद्धत्थिया इ वा आगासफालितोवमा इ वा उवमा इ वा अणोवमा इ वा, भवेयारूवे? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, सुक्कलेस्सा एतो इट्ठतरिया चेव पियतरिया चेव मणामतरिया चेव आसाएणं पन्नत्ता।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू० ४६ । पृ० ४४८

(ख) खजूरमुद्दियरसो, खीररसो खंडसक्कररसो वा।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ सुक्काए नायव्वो ॥

—उत्त० अ ३४ । गा १५ । पृ० १०४६

गोला, चीनी, शक्कर, मत्स्यंडिका पर्पटमोदक बीसकंद, पुष्पोत्तरा, पद्मोत्तरा, आदर्शिका, शिद्धार्थिका, आकाशस्फटिकोपमाके उपम एवं अनुपम आस्वाद से अधिक इष्टकर, कन्तकर, प्रीतकर, मनोज्ञ, मनभावने आस्वाद वाली शुक्ल लेश्या होती है। खजूर, द्राक्ष, दूध, चीनी, शक्कर से अनन्त गुणी मधुर आस्वादवाली शुक्ल लेश्या होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·१४ द्रव्य लेश्या के स्पर्श

कण्ह लेस्साणं भन्ते कइ × × × फासा पन्नत्ता ? गोयमा ! दव्वलेस्सं पडुच्च × × × अट्ठफासा पन्नत्ता एवं × × × जाव सुक्कलेस्सा।

—भग० श १२। उ ५। प्र १६। पृ० ६६४

द्रव्यलेश्या के आठों पौद्गलिक स्पर्श होते हैं।

१४.१ प्रथम तीन लेश्या का स्पर्श

(क) जह करगयस्स फासो, गोजिब्भाए व सागपत्ताणं।
एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं॥

करवत, गाय की जीभ, शाक के पत्ते का जैसा स्पर्श होता है उससे भी अनन्तगुण अधिक रूक्ष स्पर्श प्रथम तीन अप्रशस्त लेश्याओं का होता है।

—उत्त० अ ३४। गा १८। पृ० १०४६

(ख) (तओ) सीयलुक्खाओ।

—ठाण० स्था ३। उ ४। सू. २२१। पृ० २२०

(ग) तओ सीयललुक्खाओ

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४७। पृ० ४४६

प्रथम तीन लेश्या शीत-रूक्ष की स्पर्शवाली होती है।

१४.२ पश्चात् की तीन लेश्या का स्पर्श

(क) जह बूरस्स फासो नवणीयस्स व सिरीसकुसुमाणं।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थ लेसाण तिण्हं पि॥

--उत्त० अ ३४। गा १६। पृ० १०४६

बूर वनस्पति, नवनीत (मक्खन) और सिरीष के फूल का जैसा स्पर्श होता है उससे भी अनन्त गुण कोमल (स्निग्ध) स्पर्श तीन प्रशस्त लेश्याओं का होता है।

(ख) (तओ) निद्धुण्हाओ।

—ठाण० स्था ३। उ ४। सू. २२१। पृ० २२०

(ग) तओ निद्धुण्हाओ।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू. ४७। पृ० ४४६

पश्चात् की तीन लेश्याओं का स्पर्श उष्ण-स्निग्ध होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·१५ द्रव्य लेश्या के प्रदेश

कण्हलेस्सा णं भन्ते। कइ पएसिया पन्नत्ता ? गोयमा ! अणंत पएसिया पन्नत्ता, एवं जाव सुक्कलेस्सा।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४६। पृ० ४४६

कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या अनन्त प्रदेशी होती है। द्रव्य लेश्या का एक स्कन्ध अनन्त प्रदेशी होता है।

·१६ द्रव्य लेश्या और प्रदेशावगाह—क्षेत्रावगाह

(क) कण्हलेस्सा णं भंते ! कइ पएसोगाढा पन्नत्ता ? गोयमा !
असंखेज्ज पएसोगाढा पन्नत्ता, एवं जाव सुक्कलेस्सा।

—पण्ण० प० १७। उ ४। सू ४६ पृ० ४४६

कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या असंख्यात् प्रदेश क्षेत्र अवगाह करती है। यह लेश्या के एक स्कंध की अपेक्षा वर्णन मालूम होता है।

(ख) लेश्या क्षेत्राधिकार—क्षेत्रावगाह

सट्ठाणंसमुग्घादे उववादे सव्वलोय सुहाणं।
लोयस्सासंखेज्जदिभागं खेत्तं तु तेउतिये॥ ५४२

—गोजी० गाथा

सुक्कस समुग्घादे असंखलोगा य सव्व लोगो य।

—गोजी० पृ० १६६। गाथा अनअंकित

प्रथम तीन लेश्याओं का सामान्य से (सर्व लेश्या द्रव्यों की अपेक्षा) स्वस्थान, समुद्घात तथा उपपाद् की अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण क्षेत्र अवगाह है तथा तीन पश्चात् की लेश्याओं का लोक के असंख्यात् भाग क्षेत्र परिमाण अवगाह है। शुक्ललेश्या का क्षेत्रावगाह समुद्घात का अपेक्षा लोक का असंख्यात् भाग (वहु भाग) या सर्वलोक परिमाण है।

·१७ द्रव्यलेश्या की वर्गणा

कण्हलेस्साए णं भंते ! केवइयाओ वग्गणाओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! अणंताओ वग्गणाओ एवं जाव सुक्कलेस्साए।

कृष्ण यावत् शुक्ल लेश्याओं की प्रत्येक की अनन्त वर्गणा होती है।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ४६। पृ० ४४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·१८ द्रव्यलेश्या और गुरुलघुत्व

कण्हलेसा णं भंते ! किं गुरूया, जाव अगुरूयलहुया ? गोयमा ! नो गुरुया नो लहुया, गुरुयलहुया वि, अगुरूयलहुया वि। से केणट्ठेणं ? गोयमा ! दव्वलेस्सं पडुच्च ततियपएणं, भावलेस्सं पडुच्च चउत्थपएणं एवं जाव सुक्कलेस्सा।

—भग० श १ । उ ६ । प्र २८६।६० पृ० ४११

कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या द्रव्यलेश्या की अपेक्षा गुरुलघु है सथा भावलेश्या की अपेक्षा अगुरुलघु है।

·१९ द्रव्यलेश्याओं की परस्पर परिणमन-गति

से किं तं लेस्सागइ ? २ जण्णं कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ एवं नीललेसा काऊलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए परिणमइ, एवं काऊलेस्सावि तेऊलेस्सं, तेऊलेस्सावि पम्हलेस्सं; पम्हलेस्सावि सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव परिणमइ, से तं लेस्सागइ।

—पण्ण० प १६ । उ ४ । सू १५ । पृ ४३३

एक लेश्या दूसरी लेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उस रूप, वर्ण, गन्ध, रस तथा स्पर्श रूप में परिणत होती है वह उसकी लेश्यागति कहलाती है।

लेश्यागति विहायगइ का ११ वाँ भेद है। —पण्ण० प १६। सू १४ । पृ० ४३२-३

१९·१ कृष्णलेश्या का अन्य लेश्याओं में परिणमन

(क) से नूणं भंते ! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो २ परिणमइ ? हंता गोयमा ! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—'कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ' ? गोयमा ! से जहानामए खीरे दूसिं पप्प सुद्धे वा वत्थे रागं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए भुज्जो २ परिणमइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—'कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू० ३१ । पृ० ४४५

—भग० श ४ । उ १० । प्र० १ । पृ० ४६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) से नूणं भंते ! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ ? इत्तो आढ़त्तं जहा चउत्थओ उद्देसओ तहा भाणियव्वं जाव वेरुलियमणिदिट्ठंतोत्ति।

—पण्ण० प १७ । उ ५ । सू ५४ । पृ ४५०

कृष्णलेश्या नीललेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उसके रूप, उसके वर्ण, उसकी गन्ध, उसके रस, उसके स्पर्श में बार-बार परिणत होती है, यथा दूध दही का संयोग पाकर दही-रूप तथा शुद्ध (श्वेत) वस्त्र रंग का संयोग पाकर रंगीन वस्त्र रूप परिणत होता है।

(ग) से नूणं भंते ! कण्हलेस्सा नीललेस्सं काऊलेस्सं तेऊलेस्सं पम्हलेस्सं सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो २ परिणमइ ? हंता गोयमा ! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए तागंधत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो २ परिणमइ। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ--'कण्हलेस्सा नीललेस्सं जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ' ? गोयमा ! से जहानामए वेरुलियमणी सिया कण्हसुत्तए वा नीलसुत्तए वा लोहियसुत्तए वा हालिद्दसुत्तए वा सुक्किल्लसुत्तए वा आइए समाणे तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ—'कण्हलेस्सा नीललेस्सं जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए भुज्जो २ परिणमइ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ३२ । पृ० ४४५-४४६

कृष्णलेश्या नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या तथा शुक्ललेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उन उन लेश्याओं के रूप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप बार-बार परिणत होती है, यथा—वैडूर्यमणि में जैसे रंग का सूता पिरोया जाय वह वैसे ही रंग में प्रतिभासित हो जाती है।

१६.२ नीललेश्या का अन्य लेश्याओं में परस्पर परिणमन

(क) एवं एएणं अभिलावेणं नीललेस्सा काऊलेस्सं पप्प × × जाव भुज्जो २ परिणमइ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ३१ । पृ० ४४५

(ख) से नूणं भंते ! नीललेस्सा कण्हलेस्सं जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ ? हंता गोयमा ! एवं चेव।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ३३ । पृ० ४४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीललेश्या कापोतलेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उस रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श में परिणत होती है।

नीललेश्या कृष्ण, कापोत, तेजो, पद्म, तथा शुक्ल लेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उनके रूप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप परिणत होती है।

१६·३ कापोत लेश्या का अन्य लेश्याओं में परस्पर परिणमन

(क) एवं एएणं अभिलावेणं ×× काऊलेस्सा तेऊलेस्सं पप्प ×× जाव भुज्जो भुज्जो परिणमइ।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ३१। पृ० ४४५

(ख) काऊलेस्सा कण्हलेस्सं नीललेस्सं तेऊलेस्सं पम्हलेस्सं सुक्कलेस्सं पप्प ×× जाव भुज्जो भुज्जो परिणमइ? हंता गोयमा! तं चेव।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ३३। पृ० ४४६

कापोत लेश्या तेजो लेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उस रूप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप परिणत होती है।

कापोत लेश्या कृष्ण, नील, तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उनके रूप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप परिणत होती है।

१६·४ तेजो लेश्या का अन्य लेश्याओं में परस्पर परिणमन

(क) एवं एएणं अभिलावेणं × × × तेऊलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प × × × जाव भुज्जो भुज्जो परिणमइ।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू० ३१। पृ० ४४५

(ख) एवं तेऊलेस्सा कण्हलेस्सं नीललेस्सं काऊलेस्सं पम्हलेस्सं सुक्कलेस्सं पप्प ××× जाव भुज्जो भुज्जो परिणमइ।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ३३ पृ० ४४६

तेजोलेश्या पद्मलेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उसके रूप वर्ण, गंध, रस और स्पर्श परिणत होती है।

तेजो लेश्या कृष्ण, नील, कापोत, पद्म और शुक्ल लेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उनके रूप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप परिणत होती है।

१६·५ पद्म लेश्या का अन्य लेश्याओं में परस्पर परिणमन

(क) एवं एएणं अभिलावेणं × × पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सं पप्प जाव भुज्जो भुज्जो परिणमइ।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ३१। पृ० ४४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) एवं पम्हलेस्सा कण्हलेस्सं नीललेस्सं काऊलेस्सं तेऊलेस्सं सुक्कलेस्सं पप्प जाव भुज्जो भुज्जो परिणमइ ? हंता गोयमा ! तं चेव।

—पण्ण० प १७ | उ ४ | सू ३३ | पृ० ४४६

पद्म लेश्या शुक्ल लेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उसके रूप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप परिणत होती है।

पद्म लेश्या कृष्ण, नील, कापोत, तेजो और शुक्ल लेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उनके रूप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप परिणत होती है।

१६.६ शुक्ललेश्या का अन्य लेश्याओं में परस्पर परिणमन

से नूणं भंते ! सुक्कलेस्सा कण्हलेस्सं नीललेस्सं तेऊलेस्सं पम्हलेस्सं पप्प जाव भुज्जो २ परिणमइ ? हंता गोयमा ! तं चेव।

—पण्ण० प १७ | उ ४ | सू ३३ | पृ० ४४६

शुक्ल लेश्या कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म लेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उनके रूप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप परिणत होती है।

·२० लेश्याओं का परस्पर में अपरिणमन

२०.१ कृष्ण लेश्या कदाचित् अन्य लेश्याओं में परिणत नहीं होती।

से नूणं भन्ते ! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ ? हंता गोयमा ! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए, णो तावन्नत्ताए, णो तारसत्ताए, णो ताफासत्ताए भुज्जो २ परिणमइ। से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! आगारभावमायाए वा से सिया, पलिभागभावमायाए वा से सिया, कण्हलेस्सा णं सा, णो खलु नीललेस्सा, तत्थ गया ओसक्कइ उस्सक्कइ वा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—'कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ।

—पण्ण० प १७ | उ ५ | सू ५५ | पृ० ४५०-५१

कृष्ण लेश्या नील लेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर उसके रूप, वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श रूप कदाचित् नहीं परिणत होती है ऐसा कहा जाता है क्योंकि उस समय वह केवल आकार भाव मात्र से या प्रतिविम्ब मात्र से नील लेश्या है। वहाँ कृष्ण लेश्या नील लेश्या नहीं है। वहां कृष्ण लेश्या स्व स्वरूप में रहती हुई भी छायामात्र से—प्रतिविम्ब मात्र से नील लेश्या यानि सामान्य विशुद्धि-अविशुद्धि में उत्सर्पण-अवसर्पण करती है। यह अवस्था नारकी और देवों की स्थित लेश्या में होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२०.२ नील लेश्या कदाचित् अन्य लेश्याओं में परिणत नहीं होती।

से नूणं भन्ते! नीललेस्सा काऊलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ? हंता गोयमा! नीललेस्सा काऊलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ। से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ—'नीललेस्सा काऊलेसं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ? गोयमा! आगारभावमायाए वा सिया, पलिभाग-भावमायाए वा सिया नीललेस्सा णं सा, णो खलु सा काऊलेस्सा तत्थगया ओसक्कइ उस्सक्कइ वा, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—नीललेस्सा काऊलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ।

—पण्ण० प १७। उ ५। सू ५५। पृ० ४५१

उसी प्रकार नील लेश्या कापोत लेश्या में परिणत नहीं होती है ऐसा कहा जाता है क्योंकि (नारकी और देवों की स्थित लेश्या में) वह केवल आकार भाव-प्रतिबिम्ब भाव मात्र से कापोतत्व को प्राप्त होती है।

२०.३ कापोतलेश्या कदाचित् अन्य लेश्याओं में परिणत नहीं होती।

एवं काऊलेसा तेऊलेसं पप्प।

—पण्ण० प १७। उ ५। सू० ५५। पृ० ४५१

जैसा कृष्ण-नीललेश्या का कहा उसी प्रकार कापोतलेश्या मात्र आकार भाव से, प्रतिविम्ब भाव से तेजोत्व को प्राप्त होती है अतः कापोतलेश्या तेजोलेश्या में परिणत नहीं होती है ऐसा कहा जाता है।

२०.४ तेजोलेश्या कदाचित् अन्य लेश्याओं में परिणत नहीं होती।

(एवं) तेऊलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प।

—पण्ण० प १७। उ ५। सू ५५। पृ० ४५१

जैसा कृष्ण-नील लेश्या का कहा उसी प्रकार तेजोलेश्या मात्र आकार भाव से, प्रतिविम्ब भाव से पद्मत्व को प्राप्त होती है अतः तेजोलेश्या पद्मलेश्या में परिणत नहीं होती है ऐसा कहा जाता है।

२०.५ पद्मलेश्या कदाचित् अन्य लेश्याओं में परिणत नहीं होती।

(एवं) पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सं पप्प।

—पण्ण० प १७। उ ५। सू ५५। पृ० ४५१

जैसा कृष्ण-नीललेश्या का कहा उसी प्रकार पद्मलेश्या मात्र आकार भाव से, प्रति-विम्ब भाव से शुक्लत्व को प्राप्त होती है अतः पद्मलेश्या शुक्ललेश्या में परिणत नहीं होती है ऐसा कहा जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२०.६ शुक्ललेश्या कदाचित् अन्य लेश्याओं में परिणत नहीं होती।

से नूणं भंते ! सुक्कलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव परिणमइ ? हंता गोयमा ! सुक्कलेस्सा तं चेव। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—'सुक्कलेस्सा जाव णो परिणमइ ? गोयमा ! आगारभावमायाए वा जाव सुक्कलेस्सा णं सा, णो खलु सा पम्हलेस्सा, तत्थगया ओसक्कइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—'जाव णो परिणमइ'।

—पण्ण० प १७। उ ५। सू ५५। पृ० ४५१

शुक्ललेश्या मात्र आकार भाव से—प्रतिविम्ब भाव से पद्मत्व को प्राप्त होती है ; शुक्ललेश्या पद्मलेश्या के द्रव्यों का संयोग पाकर (यह द्रव्य संयोग अतिसामान्य ही होगा) पद्मलेश्या के रूप, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श में सामान्यतः अवसर्पण करती है। अतः यह कहा जाता है कि शुक्ललेश्या पद्मलेश्या में परिणत नहीं होती है। टीकाकार मलयगिरि यहाँ इस प्रकार खुलासा करते हैं। प्रश्न उठता है—

यदि कृष्णलेश्या नीललेश्या में परिणत नहीं होती है तो सातवीं नरक में सम्यक्त्व की प्राप्ति किस प्रकार होती है ? क्योंकि सम्यक्त्व जिनके तेजोलेश्यादि शुभलेश्या का परिणाम होता है उनके ही होती है और सातवीं नरक में कृष्णलेश्या होती है तथा 'भाव परावत्तीए पुण सुरनेरइयाणं पि छल्लेसा' अर्थात् भाव की परावृत्ति से देव तथा नारकी के भी छह लेश्या होती है, यह वाक्य कैसे घटेगा ? क्योंकि अन्य लेश्या द्रव्य के संयोग से तदरूप परिणमन सम्भव नहीं है तो भाव की परावृत्ति भी नहीं हो सकती है।

उत्तर में कहा गया है कि मात्र आकार भाव से—प्रतिविम्ब भाव से कृष्णलेश्या नीललेश्या होती है लेकिन वास्तविक रूप में तो कृष्णलेश्या ही है, नीललेश्या नहीं हुई है ; क्योंकि कृष्णलेश्या अपने स्वरूप को छोड़ती नहीं है। जिस प्रकार आरीसा में किसी का प्रतिविम्ब पड़ने से वह उस रूप नहीं हो जाता है लेकिन आरीसा ही रहता है प्रतिविम्बित वस्तु का प्रतिविम्ब या छाया जरूर उसमें दिखाई देता है।

ऐसे स्थल में जहाँ कृष्णलेश्या अपने स्वरूप में रहकर 'अवष्वष्कते—उष्वष्कते' नीललेश्या के आकार भाव मात्र को धारण करने से या उसके प्रतिविम्ब भाव मात्र को धारण करने से उत्सर्पण करती है—नील लेश्या को प्राप्त होती है। कृष्णलेश्या से नीललेश्या विशुद्ध है उससे उसके आकार भाव मात्र या प्रतिविम्ब भाव मात्र को धारण करती कुछ एक विशुद्ध होती है अतः उत्सर्पण करती है, नील लेश्यत्व को प्राप्त होती है ऐसा कहा है।

२०.७ लेश्या आत्मा सिवाय अन्यत्र परिणत नहीं होती है।

अह भंते ! पाणाइवाए मुसावाए जाव मिच्छादंसणसल्ले, पाणाइवायवेरमणे जाव मिच्चादंसणसल्लविवेगे, उप्पत्तिया जाव पारिणामिया, उग्गहे जाव धारणा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उट्ठाणे-कम्मे-वले-वीरिए-पुरिसक्कारपरक्कमे, नेरइयत्ते असुरकुमारत्ते जाव वेमाणियत्ते, णाणावरणिज्जे जाव अन्तराइए, कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा, सम्मदिट्ठी-मिच्छादिट्ठी-सम्ममिच्छादिट्ठी, चक्खुदंसणे-अचक्खुदंसणे-ओहीदंसणे-केवलदंसणे, आभिणिबोहियणाणे जाव विभंगणाणे, आहारसन्ना-भयसन्ना-मैथूनसन्ना-परिग्गहसन्ना, ओरालियसरीरे वेउव्विएसरीरे आहारगसरीरे तेयएसरीरे कम्मएसरीरे, मणजोगे-वइजोगे-कायजोगे, सागारोवओगे अणागारोवओगे जे यावन्ने तहप्पगारा सव्वे ते णण्णत्थ आयाए परिणमंति ? हंता गोयमा ! पाणाइवाए जाव सव्वे ते णण्णत्थ आयाए परिणमंति ।

—भग० श २० । उ ३ । प्र १ । पृ० ७६२

प्राणातिपातादि १८ पाप, प्राणातिपातादि १८ पापों का विरमण, औत्पात्तिकी आदि ४ बुद्धि, अवग्रह यावत् धारणा, उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकारपराक्रम, नारकादि २४ दण्डक-अवस्था, ज्ञानावरणीय आदि कर्म, कृष्णादि छह लेश्या, तीन दृष्टि, चार दर्शन, पांच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार संज्ञा, पाँच शरीर, तीन योग, साकार उपयोग, अनाकार उपयोग इत्यादि अन्य इसी प्रकार के सर्व आत्मा के सिवाय अन्यत्र परिणत नहीं होते हैं। यह पाठ द्रव्य और भाव दोनों लेश्याओं में लागू होना चाहिये।

·२१ द्रव्यलेश्या और स्थान

(क) केवइया णं भंते ! कण्हलेस्सा ठाणा पन्नत्ता ? गोयमा ! असंखेज्जा कण्हलेस्सा ठाणा पन्नत्ता एवं जाव सुक्कलेस्सा ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ५० । पृ० ४४६

(ख) अस्संखिज्जाणोसप्पिणीण, उस्सप्पिणीण जे समया ।
संखाईया लोगा, लेसाण हवन्ति ठाणाइं ॥

—उत्त० अ ३४ । गा ३३ । पृ० १०४७

कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या के असंख्यात स्थान होते हैं। असंख्यात् अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी में जितने समय होते हैं अथवा असंख्यात् लोकाकाश के जितने प्रदेश होते हैं उतने लेश्याओं के स्थान होते हैं।

(ग) लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु २ कण्हलेस्सं परिणमइ २ त्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति × × × × ×—लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु वा विसुज्झमाणेसु नीललेस्सं परिणमइ २ त्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ।

—भग० श १३ । उ १ । प्र १६ तथा २० का उत्तर । पृ० ६७६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेश्या स्थान से संक्लिष्ट होते-होते कृष्णलेश्या में परिणमन करके जीव कृष्णलेशी नारक में उत्पन्न होता है। लेश्या स्थान से संक्लिष्ट होते-होते या विशुद्ध होते-होते नीललेश्या में में परिणमन करके नीललेशी नारक में उत्पन्न होता है।

द्रव्यलेश्या की अपेक्षा यदि विवेचन किया जाय तो द्रव्यलेश्या के असंख्यात् स्थान है तथा वे स्थान पुद्गल की मनोज्ञता-अमनोज्ञता, दुर्गन्धता-सुगन्धता, विशुद्धता-अविशुद्धता तथा शीतरूक्षता—स्निग्धउष्णता की हीनाधिकता की अपेक्षा कहे गये हैं।

भावलेश्या की अपेक्षा यदि विवेचन किया जाय तो एक-एक लेश्या की विशुद्धि अविशुद्धि की हीनाधिकता से किये गये भेद रूप स्थान—कालोपमा की अपेक्षा असंख्यात् अवसर्पिणी उत्सर्पिणी के जितने समय होते हैं अथवा क्षेत्रोपमा की अपेक्षा असंख्यात् लोकाकाश के जितने प्रदेश होते हैं उतने भावलेश्या के स्थान होते हैं।

भावलेश्या के स्थानों के कारणभूत कृष्णादि लेश्या द्रव्य हैं। द्रव्यलेश्या के स्थान के विना भावलेश्या का स्थान बन नहीं सकता है। जितने द्रव्यलेश्या के स्थान होते हैं उतने ही भावलेश्या के स्थान होने चाहिये।

प्रज्ञापना के टीकाकार श्री मलयगिरि ने प्रज्ञापना का विवेचन द्रव्यलेश्या की अपेक्षा माना है तथा उत्तराध्ययन का विवेचन भावलेश्या की अपेक्षा माना है।

·२२ द्रव्यलेश्या की स्थिति

२२·१ कृष्णलेश्या की स्थिति।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा कण्हलेसाए॥

—उत्त० अ ३४। गा ३४। पृ० १०४७

कृष्णलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहुर्त और उत्कृष्ट मुहुर्त अधिक तेतीस सागरोपम की होती है।

२२·१ नीललेश्या की स्थिति।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दसउदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा नीललेसाए॥

—उत्त० अ ३४। गा ३५। पृ० १०४७

नीललेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूत और उत्कृष्ट तीन पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दससागरोपम की होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२·३ कापोतलेश्या की स्थिति।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तिण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा काऊलेसाए॥

—उत्त० अ ३४। गा ३६। पृ० १०४७

कापोतलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की होती है।

२२·४ तेजोलेश्याकी स्थिति।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दोण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा तेऊलेसाए॥

—उत्त० अ ३४। गा ३७। पृ० १०४७

तेजोलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की होती है।

२२·५ पद्मलेश्या की स्थिति।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दसउदही होइ मुहुत्तमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई; नायव्वा पम्हलेसाए॥

—उत्त० अ ३४। गा ३८। पृ० १०४७

पाठान्तर :—**दस होंति य सागरा मुहुत्तहिया।** द्वितीय चरण।

पद्मलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम की होती है।

२२·६ शुक्ललेश्या की स्थिति।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा सुक्कलेसाए॥

—उत्त० अ ३४। गा ३९। पृ० १०४७

शुक्ललेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम की होती है।

एसा खलु लेसाणं, ओहेण ठिई (उ) वण्णिया होइ।

—उत्त० अ ३४। गा ४० पूर्वार्ध। पृ० १०४७

इस प्रकार औघिक (सामान्यतः) लेश्या की स्थिति कही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·२३ द्रव्यलेश्या और भाव

आगमों में द्रव्यलेश्या के भाव-सम्बन्धी कोई पाठ नहीं है। लेकिन पुद्गल द्रव्य होने के कारण इसका 'पारिणामिक' भाव है।

·२४ लेश्या और अन्तरकाल।

(क) कण्हलेसस्स णं भंते! अन्तरं कालओ केवचिरं होइ? जहन्नेणं अन्तोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोपमाइं अन्तोमुहुत्तमब्भहियाइं, एवं नीललेसस्सवि, काऊलेसस्सवि; तेऊलेसस्स णं भन्ते! अन्तरकालओ केवचिरं होइ? जहन्नेणं अन्तोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो, एवं पम्हलेसस्सवि, सुक्कलेसस्सवि दोण्हवि एवमंतरं, अलेसस्स णं भन्ते! अन्तरंकालओ केवचिरं होइ? गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अन्तरं।

—जीवा० प्रति ६। गा २६६। पृ० २५८

कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट मुहुर्त अधिक तेतीस सागरोपम है तथा तेजोलेश्या का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट वनस्पति काल है तथा पद्मलेश्या तथा शुक्ललेश्या का अन्तरकाल तेजोलेश्या के अन्तरकाल के समान होता है। अलेशी सादि अपर्यवसित है तथा अन्तरकाल नहीं है।

यह विवेचन जीव की अपेक्षा है, द्रव्यलेश्या, भावलेश्या दोनों पर लागू हो सकता है।

(ख) अन्तरमवरूक्कसं किण्हतियाणं मुहुत्तअन्तं तु।
उवहीणं तेत्तीसं अहियं होदित्ति णिद्दिट्ठं ।। ५५२
तेउतियाणं एवं णवरि य उक्कस्स विरहकालो दु।
पोग्गलवरिवट्टा हु असंखेज्जा होंति णियमेण ।। ५५३

—गोजी० गा०

कृष्णादि तीन प्रथम लेश्या का जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहुर्त है तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक तेतीस सागरोपम है। तेजो आदि तीन शुभलेश्याओं का अन्तरकाल भी इसी प्रकार है परन्तु कुछ विशेषता है। शुभलेश्याओं का उत्कृष्ट अन्तरकाल नियम से असंख्यात् पुद्गल परावर्तन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·२५ तपोलब्धि से प्राप्त तेजोलेश्या

२५.१ तपोलब्धि से प्राप्त तेजोलेश्या पौद्गलिक है।

(क) तिहिं ठाणेहिं सम्मणे निग्गंथे संखितविउलतेऊलेस्से भवइ, तं जहा-- आयावणयाए, खंतिखमाए, अपाणगेणं तवो कम्मेणं।

— ठाण० स्था ३। उ ३। सू १८२। पृ० २१५

तीन स्थान—प्रकार से श्रमण निग्रन्थ को संक्षिप्त-विपुल तेजोलेश्या की प्राप्ति होती है, यथा—(१) आतापन (शीत तापादि सहन) से, (२) क्षांतिक्षमा (क्रोधनिग्रह) से, (३) अपान-केन तपकर्म्म (छट्ठ छट्ठ भक्त तपस्या) से।

(ख) गौतम गणधर तथा अन्य अणगारों के विशेषणों में स्थान-स्थान पर '**संखितविउलतेऊलेस्से**' समास विशेषण शब्द का व्यवहार हुआ है।

—भग० श १। उ १। प्रश्नोत्थान १। पृ० ३८४

(हमने यहाँ एक ही संदर्भ दिया है लेकिन अनेक स्थानों में इस समास शब्द का व्यवहार हुआ है, अर्थ और भाव सब जगह एक ही है।)

(ग) कुद्धस्स अणगारस्स तेऊलेस्सा निसट्ठा समाणी दूरं गया, दूरं निवयइ; देसं गया, देसं निवयइ; जहिं जहिं च णं सा निवयइ तहिं तहिं णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासेंति जाव पभासेंति।

—भग० श ७। उ १०। प्र ११। पृ० ५३०

क्रुधित अणगार के द्वारा निक्षिप्त तेजोलेश्या दूर या पास जहाँ जहाँ जाकर गिरती है वहाँ वहाँ वे अचित् पुद्गल द्रव्य अवभास यावत् प्रभास करते हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि तपोलब्धि प्राप्त तेजोलेश्या प्रायोगिक द्रव्यलेश्या—पौद्गलिक है। यह छभेदी लेश्या की तेजोलेश्या से भिन्न है ऐसा प्रतीत होता है।

२५.२ यह तेजोलेश्या दो प्रकार की होती है, यथा—(१) **सीओसिणतेऊलेस्सा**, (२) **सीयलिय तेऊलेस्सा**।

(१) शीतोष्ण तेजोलेश्या, (२) शीतल तेजोलेश्या। इनका उदाहरण भगवान महावीर के जीवन में मिलता है।

तए णं अहं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अणुकंपणट्ठयाए वेसियायणस्स बालतवस्सिसस्स सीओसिणतेउलेस्सा (तेय) पडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अन्तरा अहं सीयलियं तेउलेस्सं निसिरामि, जाए सा ममं सीयलियाए तेउलेस्साए वेसिया-

६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यणस्स बालतवस्सिसस्स सीओसिणा (सा उसिणा) तेउलेस्सा पडिहया, तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी ममं सीयलियाए तेउलेस्साए सीओसिणं तेउलेस्सं पडिहयं जाणित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेदं वा अकीरमाणं पासित्ता सीओसिणं तेउलेस्सं पडिसाहरइ।

—भग० श १५। पै० ६। पृ० ७१४

तब, हे गौतम ! मंखलिपुत्र गोशालक पर अनुकम्पा लाकर वेश्यायन बालतपस्वी की (निक्षिप्त) तेजोलेश्या का प्रतिसंहार करने के लिये मैंने शीत तेजोलेश्या बाहर निकाली और मेरी शीत तेजोलेश्या ने वेश्यायन बालतपस्वी की उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात किया। तत्पश्चात् वेश्यायन बालतपस्वी ने मेरी शीत तेजोलेश्या से अपनी उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हुआ समझ कर तथा मंखलीपुत्र गोशालक के शरीर को थोड़ी या अधिक किसी प्रकार की पीड़ा या उसके अवयव का छविच्छेद न हुआ जानकर अपनी उष्ण तेजोलेश्या को वापस खींच लिया।

यहाँ यह बात नोट करने की है कि उष्ण तेजोलेश्या को फेंककर वापस खींचा भी जा सकता है।

२५.३ तपोकर्म्म से तेजोलेश्या प्राप्ति का उपाय।

कहन्नं भंते ! संखित्तविउल तेउलेस्से भवइ ? तए णं अहं गोयमा ! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—जे णं गोसाला ! एगाए सणहाए कुम्मासपिंडियाए एगेण य वियडासएणं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय २ जाव विहरइ। से णं अन्तो छण्हं मासाणं संखित्तविउलतेउलेस्से भवइ, तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एयमट्ठं सम्मं विणएणं पडिसुणेइ।

—भग० श १५। पै० ६। पृ० ७१५

संक्षिप्त-विपुल तेजोलेश्या किस प्रकार प्राप्त होती है ? नखसहित जली हुई उड़द की दाल के बाकले मुट्ठी भर तथा एक चल्लू भर पानी पीकर जो निरन्तर छट्ठछट्ठ भक्त तप उर्ध्व हाथ रखकर करता है, विहरता है उसको छ मास के अन्त में संक्षिप्त-विपुल तेजोलेश्या की प्राप्त होती है।

संक्षिप्तविपुल का भाव टीकाकार अभयदेवसूरि ने इस प्रकार वर्णन किया है।

संक्षिप्त—अप्रयोग काल में संक्षिप्त।

विपुल—प्रयोगकाल में विस्तीर्ण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२५.४ तपोलब्धि जन्य तेजोलेश्या में घात-भस्म करने की शक्ति।

जावइए णं अज्जो! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं ममं बहाए सरीरगंसि तेये निसट्ठे, से णं अलाहि पज्जत्ते सोलसण्हं जणवयाणं, तं जहा—अंगाणं, वंगाणं, मगहाणं, मलयाणं, मालवागाणं, अच्छाणं, वच्छाणं, कोच्छाणं, पाढ़ाणं, लाढ़ाणं, वज्जाणं, मोलीणं, कासीणं, कोसलाणं, अवाहाणं, सभुत्तराणं घायाए, वहाए, उच्छादणयाए, भासीकरणयाए।

भग० श० १५। पै० २३। पृ० ७२६

भगवान महावीर ने श्रमण निग्रन्थों को बुलाकर कहा—हे आर्यों! मंखलिपुत्र गोशालक ने मुझे वध करने के लिये अपने शरीर से जो तेजोलेश्या निकाली थी वह अंग बंगादि १६ देशों का घात करने, वध करने, उच्छेद करने तथा भस्म करने में समर्थ थी।

इसके आगे के कथानक में गोशालक ने अपने शरीर से तेजोलेश्या को निकाल कर, फेंककर सर्वानुभूति तथा सुनक्षत्र अणगारों को भस्म कर दिया था। उसके पाठ इसी उद्देश में पैरा १६ तथा १७ में है।

—भग० श १५। पै० १६, १७। पृ० ७२४

२५.५ श्रमण निग्रन्थ की तेजोलेश्या तथा देवताओं की तेजोलेश्या।

जे इमे भन्ते! अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति एए णं कस्स तेऊलेस्सं वीइवयंति? गोयमा! मासपरियाए समणे निग्गंथे वाणमंतराणं देवाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, दुमासपरियाए समणे निग्गंथे असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं देवाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, एवं एए णं अभिलावेणं तिमासपरियाए समणे निग्गंथे असुरकुमाराणं देवाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, चउमासपरियाए समणे निग्गंथे गहगणनक्खत्ततारारूवाणं जोइसियाणं देवाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, पंचमासपरियाए समणे निग्गंथे चंदिमसूरियाणं जोइसिंदाणं जोइसरायाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, छम्मासपरियाए समणे निग्गंथे सोहम्मीसाणाणं देवाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, सत्तमासपरियाए समणे निग्गंथे सणंकुमारमाहिंदाणं देवाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, अट्ठमासपरियाए समणे निग्गंथे बंभलोगलंतगाणं देवाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, नवमासपरियाए समणे निग्गंथे महासुक्कसहस्साराणं देवाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, दसमासपरियाए समणे निग्गंथे आणयपाणयआरणच्चुयाणं देवाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, एक्कारसमासपरियाए समणे निग्गंथे गेवेज्जगाणं देवाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, बारसमासपरियाए समणे निग्गंथे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं तेऊलेस्सं वीइवयइ, तेण परं सुक्के सुक्काभिजाए भवित्ता- तओ पच्छा सिज्झइ जाव अन्तं करेइ। (तेऊ—पाठांतर तेय)

—भग श १४। उ ६। प्र १२। पृ० ७०७

जो यह श्रमण निग्रन्थ आर्यत्व अर्थात् पापरहितत्व में विहरता है वह यदि एक मास की दीक्षा की पर्यायवाला हो तो वाणव्यन्तर देवों की तेजोलेश्या* को अतिक्रम करता है ; दो मास की पर्यायवाला असुरेन्द्र बाद भवनपति देवताओं की तेजोलेश्या अतिक्रम करता है ; तीन मास की पर्यायवाला हो तो असुरकुमार देवों की ; चार मास की पर्यायवाला ग्रहगण, नक्षत्र एवं तारागणरूप ज्योतिष्क देवों की ; पांच मास की पर्यायवाला ज्योतिष्कों के इन्द्र, ज्योतिष्कों के राजा (चन्द्र-सूर्य) की ; छ मास की पर्यायवाला सौधर्म और इशानवासी देवों की ; सात मास की पर्यायवाला सनत्कुमार और माहेन्द्र देवों की ; आठ मास की पर्यायवाला ब्रह्मलोक और लांतक देवों की ; नव मास की पर्यायवाला महाशुक्र और सहस्रार देवों की ; दस मास की पर्यायवाला आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवों की ; ग्यारह मास की पर्यायवाला ग्रैवयेक देवों की तथा बारह मास की दीक्षा की पर्यायवाला पापरहित रूप विहरनेवाला श्रमण निग्रन्थ अनुत्तरोपपातिक देवों की तेजोलेश्या को अतिक्रम करता है।

'२६ द्रव्यलेश्या और दुर्गति-सुगति।

(क) कण्हानीलाकाऊ, तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जई॥
तेऊ पम्हा सुक्का, तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, सुग्गइं उववज्जई॥

—उत्त० अ ३४। गा ५६—५७। पृ० १०४८

(ख) [तओलेस्साओ × × × पन्नत्ता तं जहा-कण्हलेसा, नीललेसा, काऊलेसा, तओलेस्साओ × × × पन्नत्ता तं जहा—तेऊ, पम्ह सुक्कलेस्सा] एवं (तिन्नि) दुग्गइगामिणीओ (तिन्नि) सुग्गइगामिणीओ।

—ठाण स्था ३। उ ४। सू २२। पृ० २२०

---

* तेजोलेश्या का यहाँ टीकाकार ने "सुखासिकाम" अर्थ किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ग) तओ दुग्गइगामियाओ (कण्ह, नील, काऊ) तओ सुग्गइगामियाओ (तेऊ, पम्ह, सुक्कलेस्साओ)।

- पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४७ । पृ० ४४६

कृष्ण, नील तथा कापोतलेश्याएं दुर्गति में जाने की हेतु हैं तथा तेजो, पद्म तथा शुक्ललेश्याएं सुगति में जाने की हेतु हैं।

यह पाठ द्रव्य और भाव दोनों में लागू हो सकते हैं। स्थानांग तथा प्रज्ञापना में द्रव्य तथा भाव दोनों के गुणों का मिश्रित विवेचन है। प्रज्ञापना के टीकाकार मलयगिरि का कथन है कि लेश्या अध्यवसायों की हेतु है और संक्लिष्ट-असंकलिष्ट अध्यवसायों से जीव दुर्गति-सुगति को प्राप्त होता है। यह विवेचनीय विषय है।

·२७ लेश्या के छ भेद और पंच (पुद्गल) वर्ण

एयाओ णं भन्ते ! छल्लेस्साओ कइसु वन्नेसु साहिज्जंति ? गोयमा ! पंचसु वन्नेसु साहिज्जंति, तंजहा-कण्हलेस्सा कालएणं वन्नेणं साहिज्जइ, नीललेस्सा नीलवन्नेणं साहिज्जइ, काऊलेस्सा काललोहिएणं वन्नेणं साहिज्जइ, तेऊलेस्सा लोहिएणं वन्नेणं साहिज्जइ, पम्हलेस्सा हालिद्दएणं वन्नेणं साहिज्जइ, सुक्कलेस्सा सुक्किल्लएणं वन्नेणं साहिज्जइ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ४० । पृ० ४४७

कृष्णलेश्या काले वर्ण की है, नीललेश्या नीले वर्ण की है कापोतलेश्या कालालोहित वर्ण की है, तेजोलेश्या लोहित वर्ण की है, पद्मलेश्या पीले वर्ण की है, शुक्ललेश्या श्वेत वर्ण की है।

·२८ द्रव्यलेश्या और जीव के उत्पत्ति-मरण के नियम

२८.१ द्रव्यलेश्या का ग्रहण और जीव के उत्पत्ति-मरण के नियम।

(क) से किं तं लेसाणुवायगइ ? २ जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ, तंजहा-कण्हलेसेसु वा जाव सुक्कलेसेसु वा, से तं लेसाणुवायगइ।

—पण्ण० प १६ । उ १ । सू १५ । पृ० ४३३

(ख) जीवे णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किं लेसेसु उववज्जइ ? गोयमा ! जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उववज्जइ, तं जहा-कण्हलेसेसु वा नीललेसेसु वा काऊलेसेसु वा; एवं जस्स जा लेस्सा सा तस्स भाणियव्वा। जाव-जीवे णं भंते! जे भविए जोइसिएसु उववज्जित्तए? पुच्छा, गोयमा! जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ, तं जहा-तेऊलेसेसु। जीवे णं भंते! जे भविए वेमाणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते! किं लेसेसु उववज्जइ? गोयमा! जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेस उववज्जइ; तं जहा तेऊलेसेसु वा पम्हलेसेसु वा सुक्कलेसेसु वा।

—भग० श ३। उ ४। प्र १७, १८, १९। पृ० ४५९

लेश्या अनुपातगति विहायगति का १२वाँ भेद है। देखो पण्ण० प १६। सू १४। पृ० ४३२-३) जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके जीव काल करता है उसी लेश्या में जाकर उत्पन्न होता है, इसे लेश्या के अनुपातगति कहते हैं।

जो जीव जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके काल करता है वह उसी लेश्या में जाकर उत्पन्न होता है। भविक नारक कृष्ण, नील या कापोत लेश्या; भविक ज्योतिषी देव तेजोलेश्या, भविक वैमानिक देव तेजो, पद्म या शुक्ललेश्या के द्रव्यों ग्रहण करके जिस लेश्या में काल करता है उसी लेश्या में उत्पन्न होता है। या दण्डक में जिस जीव के जो लेश्यायें कही है उसी प्रकार कहना।

२८.२ द्रव्यलेश्या का परिणमन और जीव के उत्पत्ति-मरण के नियम।

लेसाहिं सव्वाहिं, पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
न हु कस्सइ उववाओ, परे भवे अत्थि जीवस्स॥
लेसाहिं सव्वाहिं, चरिमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
न हु कस्सइ उववाओ, परे भवे अत्थि जीवस्स॥
अंतमुहुत्तम्मि गए, अंतमुहुत्तम्मि सेसए चेव।
लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छन्ति परलोयं॥

—उत्त० अ ३४। गा ५८, ५९, ६०। पृ० १०४८

सभी लेश्याओं की प्रथम समय की परिणति में किसी भी जीव की परभव में उत्पत्ति नहीं होती है तथा सभी लेश्याओं की अन्तिम समय की परिणति में भी किसी जीव की परभव में उत्पत्ति नहीं होती है। लेश्या की परिणति के वाद अन्तर्मुहूर्त बीतने पर और अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जीव परलोक में जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·२६ लेश्या-स्थानों का अल्प-बहुत्व

२६·१ जघन्य स्थानों में द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ तथा द्रव्य-प्रदेशार्थ अल्प-बहुत्व।

एएसि णं भंते! कण्हलेस्साठाणाणं जाव सुक्कलेस्साठाणाण य जहन्नगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जहन्नगा काऊलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए, जहन्नगा नीललेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नगा कण्हलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नगा तेऊलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नगा पम्हलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नगा सुक्कलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

पएसट्ठयाए-सव्वोत्थोवा जहन्नगा काऊलेस्साठाणा पएसट्ठयाए, जहन्नगा नीललेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नगा कण्हलेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नगा तेऊलेस्साए ठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नगा पम्हलेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नगा सुक्कलेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

दव्वट्ठपएसट्ठयाए-सव्वत्थोवा जहन्नगा काऊलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए, जहन्नगा नीललेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं कण्हलेस्सा, तेऊलेस्सा, पम्हलेस्सा, जहन्नगा सुक्कलेस्सा ठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नएहिंतो सुक्कलेस्साठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए जहन्नगा काऊलेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नगा नीललेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं जाव सुक्कलेस्साठाणा।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ५१। पृ० ४४६

द्रव्यार्थ रूप में—जघन्य कापोतलेश्या स्थान सबसे कम है, जघन्य नीललेश्या स्थान उससे असंख्यात् गुण हैं, जघन्य कृष्णलेश्या स्थान उससे असंख्यात् गुण हैं, जघन्य तेजोलेश्या स्थान उससे असंख्यात् गुण है, जघन्य पद्मलेश्या स्थान उससे असंख्यात् गुण हैं, जघन्य शुक्ललेश्या स्थान उससे असंख्यात् गुण है।

प्रदेशार्थ रूप भी इसी प्रकार जानना।

जघन्य द्रव्यार्थ शुक्ललेश्या स्थान से जघन्य कापोतलेश्या प्रदेशार्थ स्थान असंख्यात् गुण है, उससे जघन्य नीललेश्या प्रदेशार्थ स्थान असंख्यात् गुण है, इसी प्रकार यावत् शुक्ललेश्या तक जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२६·२ उत्कृष्ट स्थानों में द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ, द्रव्य-प्रदेशार्थ अल्पबहुत्व।

एएसि णं भंते! कण्हलेस्साठाणाणं जाव सुक्कलेस्साठाणाण य उक्कोसगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा (जाव विसेसाहिया वा)?

गोयमा! सव्वत्थोवा उक्कोसगा काउलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए, उक्कोसगा नील-लेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं जहेव जहन्नगा तहेव उक्कोसगावि, नवरं उक्कोसत्ति अभिलावो।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ५२। पृ० ४४६।५०

जिस प्रकार जघन्य लेश्या स्थानों का कहा उसी प्रकार उत्कृष्टलेश्या स्थानों का द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ, द्रव्यप्रदेशार्थ तीन प्रकार से कहना।

२६·३ जघन्य उत्कृष्ट उभय स्थानों में द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ तथा द्रव्य-प्रदेशार्थ अल्पबहुत्व।

एएसि णं भंते! कण्हलेस्सठाणाणं जाव सुक्कलेस्सठाणाण य जहन्नउक्कोसगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतों अप्पा वा (जाव विसेसाहिया वा)?

गोयमा! सव्वत्थोवा जहन्नगा काऊलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए, जहन्नगा नील-लेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं कण्हतेऊपम्हलेस्सठाणा, जहन्नगा सुक्क-लेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नएहिंतो सुक्कलेसाठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए उक्कोसा काऊलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, उक्कोसा नीललेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा एवं कण्हतेऊपम्हलेस्सठाणा, उक्कोसा सुक्कलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

पएसट्ठयाए-सव्वत्थोवा जहन्नगा काउलेस्सठाणा पएसट्ठयाए, जहन्नगा नील-लेसठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं जहेव दव्वट्ठयाए तहेव पएसट्ठयाए वि भाणियव्वं, नवरं पएसट्ठयाएत्ति अभिलावविसेसो।

दव्वट्ठपएसट्ठयाए-सव्वत्थोवा जगहन्नगा काउलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए, जहन्नगा नीललेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं कण्हतेऊपम्हलेस्साणा, जहन्नगा सुक्कलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, जहन्नएहिंतो सुक्कलेस्सठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए उक्कोसा काऊलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, उक्कोसा नीललेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं कण्हतेऊपम्हलेसट्ठाणा, उक्कोसगा सुक्कलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, उक्कोसएहिंतो सुक्लेस्सठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए जहन्नगा काऊलेस्सठाणा पएसट्ठयाए अणंतगुणा, जहन्नगा नीललेस्सठाणा पएसट्ठयाए असं-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खेज्जगुणा एवं कण्हतेऊपम्हलेस्सठाणा, जहन्नगा सुक्कलेस्सठाणा पएसट्ठाए असंखेज्जगुणा, जहन्नएहिंतो सुक्कलेस्सठाणेहिंतो पएसट्ठयाए उक्कोसा काऊलेस्सठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, उक्कोसगा नीललेस्सठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, एवं कण्हतेऊपम्हलेस्सठाणा, उक्कोसगा सुक्कलेस्सठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

—पण्ण० प १७। उ ४। सू ५३। पृ० ४५०

सबसे कम जघन्य कापोतलेश्या स्थान द्रव्यार्थिक, जघन्य नीललेश्या द्रव्यार्थिक स्थान असंख्यात् गुण और इसी प्रकार क्रमशः कृष्ण, तेजो, पद्म तथा शुक्ललेश्या जघन्य द्रव्यार्थिक स्थान असंख्यात् गुण। जघन्य शुक्ललेश्या द्रव्यार्थिक स्थान से कापोत लेश्या का द्रव्यार्थिक उत्कृष्ट स्थान असंख्यात् गुण, उत्कृष्ट नीललेश्या द्रव्यार्थिक स्थान और इसी प्रकार क्रमशः कृष्ण, तेजो, पद्म और शुक्ललेश्या उत्कृष्ट द्रव्यार्थिक स्थान असंख्यात् गुण है।

जैसा द्रव्यार्थिक स्थान कहा वैसा प्रदेशार्थिक स्थान कहना, केवल द्रव्यार्थिक जगह प्रदेशार्थिक कहना।

द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ—सबसे कम जघन्य कापोतलेश्या के द्रव्यार्थ स्थान, नीललेश्या जघन्य द्रव्यार्थ स्थान असंख्यात गुण, तथा क्रमशः इसी प्रकार कृष्ण, तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या के द्रव्यार्थ जघन्य स्थान असंख्यात् गुण। जघन्य शुक्ललेश्या द्रव्यार्थ स्थानों से उत्कृष्ट कापोतलेश्या द्रव्यार्थ स्थान असंख्यात् गुण, उत्कृष्ट नीललेश्या द्रव्यार्थ स्थान असंख्यात् गुण, और इसी प्रकार क्रमशः कृष्ण, तेजो, पद्म और शुक्ललेश्या उत्कृष्ट द्रव्यार्थ स्थान असंख्यात् गुण। शुक्ललेश्या उत्कृष्ट द्रव्यार्थ स्थान से जघन्य कापोतलेश्या प्रदेशार्थ स्थान **अनन्तगुण** है। जघन्य कापोतलेश्या प्रदेशार्थ स्थान से जघन्य नीललेश्या प्रदेशार्थ स्थान असंख्यात् गुण है, तथा इसी प्रकार कृष्ण, तेजो, पद्म और शुक्ललेश्या जघन्य प्रदेशार्थ स्थान असंख्यात् गुण हैं ; जघन्य शुक्ललेश्या प्रदेशार्थ स्थान से उत्कृष्ट कापोतलेश्या प्रदेशार्थ स्थान असंख्यात् गुण, उससे नीललेश्या उत्कृष्ट प्रदेशार्थ स्थान असंख्यात् गुण है और इसी प्रकार कृष्ण, तेजो, पद्म और शुक्ललेश्या उत्कृष्ट प्रदेशार्थ स्थान असंख्यात गुण है।

·३ द्रव्यलेश्या (विस्रसा अजीव-नोकर्म)

३·१ द्रव्यलेश्या नोकर्म के भेद।

·१ दो भेद

नो कम्म दव्वलेसा पओगसा विससा उ नायव्वा।

नोकर्म द्रव्यलेश्या के दो भेद-प्रायोगिक तथा विस्रसा।

—उत्त० अ ३४। नि० गा ५४२। पूवार्ध

७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

•२ अजीव नोकर्म द्रव्यलेश्या के दस भेद

अजीव कम्म नो दव्वलेसा, सा दसविहा उ नायव्वा।
चन्दाण य सूराण य, गहगण नक्खत्त ताराणं॥
आभरणच्छायाणा-दंसगाण, मणि कागिणीण जा लेसा।
अजीव दव्व-लेसा, नायव्वा दसविहा एसा॥

—उत्त० अ ३४। नि० गा ५३७,३८

अजीव नोकर्म द्रव्यलेश्या के दस भेद, यथा—चन्द्रमा की लेश्या, सूर्य की, ग्रह की, नक्षत्र की, तारागण की लेश्या ; आभरण की लेश्या, छाया की लेश्या, दर्पण की लेश्या, मणि की तथा कांकणी की लेश्या।

यहाँ लेश्या शब्द से उपरोक्त चन्द्रमादि से निसर्गत ज्योति विशेषादि को उपलक्ष किया है, ऐसा मालूम पड़ता है।

३•२ सरूपी सकर्मलेश्या का अवभास, उद्द्योत, तप्त एवं प्रभास करना

अत्थि णं भंते! सरूवी सकम्मलेस्सा पोग्गला ओभासेंति, उज्जोवेन्ति, तवेन्ति, पभासेंति ? हंता अत्थि ?

कयरे णं भंते! सरूवी सकम्मलेस्सा पोग्गल ओभासेंति, जाव पभासेंति ? गोयमा! जाओ इमाओ चन्दिम-सूरियाणं देवाणं विमाणेहिंतो लेस्साओ बहिया अभिनिस्सडाओ ताओ ओभासेंति (जाव) पभासेंति, एवं एएणं गोयमा! ते सरूवी सकम्मलेस्सा पोग्गला ओभासेंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पभासेंति।

—भग० अ० १४। उ ६। प्र २-३। पृ० ७०६

सरूपी सकर्मलेश्या के पुद्गल अवभास, उद्द्योत, तप्त तथा प्रभास करते हैं यथा—चन्द्र तथा सूर्यदेवों के विमानों से बाहर निकली लेश्या अवभासित, उद्योतित, तप्त, प्रभासित होती है।

टीकाकार ने कहा कि चन्द्रादि विमान से निकले हुए प्रकाश के पुद्गलों को उपचार से सकर्मलेश्या कहा गया है। क्योंकि उनके विमान के पुद्गल सचित्त पृथ्वीकायिक है और वे पृथ्वीकायिक जीव सकर्मलेशी है अतः उनसे निकले पुद्गलों को उपचार से सकर्मलेश्या पुद्गल कहा गया है। अन्यथा वे अजीव नोकर्म द्रव्यलेश्या के पुद्गल है।

३•३ सूर्य की लेश्या का शुभत्व

किमिदं भंते! सूरिए (अचिरुग्गयं बालसूरियं जासुमणा कुसुमपुंजप्पकासं लोहित्तगं); किमिदं भंते! सूरियस्स अट्ठे ? गोयमा! सुभे सूरिए, सुभे सुरियस्स

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अट्ठे। किंमिदं भन्ते! सुरिए; किमिदं भन्ते! सूरियस्स पभा? एवं चेव, एवं छाया, एवं लेस्सा।

—भग० अ १४। उ ६। प्र १०-११। पृ० ७०७

उगते हुए वाल सूर्य की लेश्या शुभ होती है। टीकाकार ने यहाँ लेश्या का अर्थ 'वर्ण' लिया है।

३·४ सूर्य की लेश्या का प्रतिघात अभिताप

(क) लेस्सापडिघाएणं उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसन्ति लेस्साभितावेणं मज्झन्तियमुहुत्तंसि मूले य दूरे य दीसन्ति लेस्सापडिघाएणं अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसन्ति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ जम्बुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमण मुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसन्ति जाव अत्थमण जाव दीसन्ति।

—भग० अ ८। उ ८। प्र० ३८। पृ० ५६०

लेश्या के प्रतिघात से उगता हुआ सूर्य दूर होते हुए भी नजदीक दिखलाई पड़ता है तथा मध्यान्ह का सूर्य नजदीक होते हुए भी लेश्या के अभिताप से दूर दिखलाई पड़ता है। तथा लेश्या के प्रतिघात से डूबता हुआ सूर्य दूर होते हुए भी नजदीक दिखलाई पड़ता है।

लेश्या-प्रतिघात=तेज का प्रतिघात होना अर्थात् कम होना।

लेश्या-अभिताप=तेज का अभिताप होना अर्थात् तेज का प्रखर होना।

(ख) ता कस्सि णं सूरियस्स लेस्सापडिहया आहिताइ वएज्जा? ××× ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेस्सं फुसन्ति ते णं पोग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति, आदिट्ठावि णं पोग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति, चरिमलेस्संतरगयावि णं पोग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति ××× आहिताइ वएज्जा।

—चन्द० प्रा ५। पृ० ६६४

—सूरि० प्रा ५। वही पाठ

सूर्य की लेश्या का तीन स्थान पर प्रतिघात होता है—

(१) जो पुद्गल सूर्य की लेश्या का स्पर्श करते हैं वे सूर्य की लेश्या का प्रतिघात-विनाश करते हैं। टीकाकार ने मेरुतट भित्ति संस्थित पुद्गलों का उदाहरण दिया है।

(२) अदृष्ट पुद्गल भी सूर्य की लेश्या का प्रतिघात करते हैं। टीकाकार ने यहाँ भी मेरुतट भित्ति संस्थित सूक्ष्म अदृश्यमान् पुद्गलों का उदाहरण दिया है।

(३) चरमलेश्या अन्तर्गत पुद्गल भी सूर्य की लेश्या का प्रतिघात करते हैं। टीकाकार कहते हैं कि मेरु पर्वत के अन्यत्र भी प्राप्त चरमलेश्या के विशेष स्पर्शी पुद्गलों से सूर्य की लेश्या का प्रतिघात होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३.५ चन्द्र-सूर्य की लेश्या का आवरण

—××× ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वेमाणे वा परियारेमाणे वा चन्दस्स वा सूरस्स वा लेस्सं आवरेमाणे चिट्ठइ [आवरेत्ता वीइवयइ], तया णं मणुस्सलोए मणुस्सा वयंति—एवं खलु राहुणा चन्दे वा सूरे वा गहिए —××× —

चन्द० प्रा० २० । पृ० ७४६

—सूरि० प्रा० २० । वही पाठ

राहू देव के इस प्रकार आते, जाते, विकुर्वना करते, परिचारना करते सूर्य-चन्द्र की लेश्या का आवरण होता है। इसी को मनुष्य लोक में चन्द्र-सूर्य ग्रहण कहते है।

.४ भावलेश्या

.४१ भावलेश्या—जीवपरिणाम

जीवपरिणामे णं भंते ! कइविहे पन्नत्ते ? गोयमा ! दसविहे पन्नत्ते । तंजहा-गइपरिणामे १, इंदियपरिणामे २, कसायपरिणामे ३, लेस्सापरिणामे ४, जोगपरिणामे ५, उवओगपरिणामे ६, णाणपरिणामे ७, दंसणपरिणामे ८, चरित्तपरिणामे ६, वेयपरिणामे १० ।

—पण्ण० प० १३ । सू० १ । पृ० ४०८

— ठाण० स्था १० । सू ७१३ । पृ० ३०४ (केवल उत्तर)

जीव परिणाम के दस भेद हैं, यथा—

१—गति परिणाम, २—इन्द्रिय परिणाम, ३—कषाय परिणाम, ४—लेश्या परिणाम, ५—योग परिणाम, ६—उपयोग परिणाम, ७—ज्ञान परिणाम, ८—दर्शन परिणाम, ६—चारित्र परिणाम तथा १०—वेद परिणाम।

४१.१ लेश्या परिणाम के भेद

लेस्सापरिणामे णं भंते ! कइविहे पन्नत्ते ? गोयमा ! छव्विहे पन्नत्ते, तं जहा—कण्हलेस्सापरिणामे, नीललेस्सापरिणामे, काऊलेस्सापरिणामे, तेऊलेस्सापरिणामे, पम्हलेस्सापरिणामे, सुक्कलेस्सापरिणामे ।

—पण्ण० प १३ । सू २ । पृ० ४०६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेश्या-परिणाम के छ भेद हैं, यथा—

१—कृष्णलेश्या परिणाम, २—नीललेश्या परिणाम, ३—कापोतलेश्या परिणाम, ४—तेजोलेश्या परिणाम, ५—पद्मलेश्या परिणाम तथा ६—शुक्ललेश्या परिणाम।

४१.२ लेश्या परिणाम की विविधता

(क) कण्हलेस्सा णं भंते! कइविहं परिणामं परिणमइ? गोयमा! तिविहं वा नवविहं वा सत्तावीसविहं वा एक्कासीइविहं वा वेतेयालीसतविहं वा बहुयं वा बहुविहं वा परिणामं परिणमइ, एवं जाव सुक्कलेस्सा।

पण्ण० प १७। उ ४। सू ४८। पृ० ४४६

(ख) तिविहो व नवविहो वा, सत्तावीसइविहेक्कसीओ वा।
दुसओ तेयालो वा, लेसाणं होइ परिणामो वा॥

—उत्त० अ ३४। गा २०। पृ० १०४६

कृष्णलेश्या—तीन प्रकार के, नौ प्रकार के, सतावीस प्रकार के, इक्यासी प्रकार के, दो सौ तेंतालिस प्रकार के, वहु, वहु प्रकार के परिणाम होते हैं। इसी प्रकार यावत् शुक्ललेश्का के परिणाम समझना।

·४२ भावलेश्या अवर्णी-अगंधी-अरसी-अस्पर्शी

(कण्हलेस्सा) भावलेस्सं पडुच्च अवण्णा, अरसा, अगंधा, अफासा, एवं जाव सुक्कलेस्सा—

—भग० श १२। उ ५। प्र १६। पृ० ६६४

छओं भावलेश्या अवर्णी, अरसी, अगन्धी, अस्पर्शी है।

·४३ भावलेश्या और अगुरुलघुत्व

प्र०—कण्हलेस्सा णं भंते! किं गरुया, जाव अगरुयलहुया?

उ०—गोयमा! नो गरुया, नो लहुया, गरुयलहुया वि, अगुरुयलहुया वि.

प्र०—से केणट्ठेणं?

उ०—गोयमा! दव्वलेस्सं पडुच्च ततियपएणं, भावलेस्सं पडुच्च चउत्थपएणं, एवं जाव—सुक्कलेस्सा.

—भग० श १। उ ६। प्र २८६-६०। पृ० ४११

कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या-भावलेश्या की अपेक्षा अगुरुलघु है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·४४ लेश्या-स्थान

(क) केवइया णं भंते ! कण्हलेस्सा ठाणा पन्नत्ता ? गोयमा ! असंखेज्जा कण्हलेस्साठाणा पन्नत्ता, एवं जाव सुक्कलेस्सा ।

—पण्ण० प १७ । उ ४ । सू ५० । पृ० ४४६

(ख) अस्संखिज्जाणोसप्पिणीण उस्सप्पिणीण जे समया वा ।
संखाईया लोगा, लेसाण हवन्ति ठाणाइं ॥

—उत्त० अ ३४ । गा ३३ । पृ० १०४७

कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या के असंख्यात् स्थान होते हैं। असंख्यात् अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी में जितने समय होते हैं तथा असंख्यात् लोकाकाश के जितने प्रदेश होते हैं उतने लेश्याओं के स्थान होते हैं।

(ग) लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु २ कण्हलेस्सं परिणमइ २ त्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति × × ×—लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु वा विसुज्झमाणेसु नील-लेस्सं परिणमइ २ त्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ।

—भग० श १३ । उ १ । प्र १९-२० का उत्तर । पृ० ६७६

लेश्या स्थान से संक्लिष्ट होते-होते कृष्णलेश्या में परिणमन करके कृष्णलेशी नारकी में उत्पन्न होता है। लेश्यास्थान से संक्लिष्ट होते-होते या विशुद्ध होते-होते नीललेश्या में परिणमन करके नीललेशी नारकी में उत्पन्न होता है।

भावलेश्या की अपेक्षा यदि विवेचन किया जाय तो एक-एक लेश्या की विशुद्धि-अविशुद्धि के हीनाधिकता से किये गये भेद रूप स्थान-कालोपमा की अपेक्षा असंख्यात् अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी के जितने समय होते हैं तथा क्षेत्रोपमा की अपेक्षा असंख्यात् लोकाकाश के जितने प्रदेश होते हैं उतने भावलेश्या के स्थान होते हैं।

द्रव्यलेश्या की अपेक्षा यदि विवेचन किया जाय तो द्रव्यलेश्या के असंख्यात् स्थान है तथा वे स्थान पुद्गल की मनोज्ञता-अमनोज्ञता, दुर्गन्धता-सुगन्धता, विशुद्धता-अविशुद्धता, शीतरुक्षता-स्निग्धउष्णता की हीनाधिकता की अपेक्षा कहे गये हैं।

भावलेश्या के स्थानों के कारणभूत कृष्णादि लेश्याद्रव्य हैं। द्रव्यलेश्या के स्थान के बिना भावलेश्या का स्थान बन नहीं सकता है। जितने द्रव्यलेश्या के स्थान होते हैं उतने ही भावलेश्या के स्थान होने चाहिए।

प्रज्ञापना के टीकाकार श्री मलयगिरि ने प्रज्ञापना का विवेचन द्रव्यलेश्या की अपेक्षा माना है तथा उत्तराध्ययन का विवेचन भावलेश्या की अपेक्षा माना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·४५ भावलेश्या की स्थिति

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसा सागरा मुहुत्तऽहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा कण्हलेसाए॥
मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस उदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा नीललेसाए॥
मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तिण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा काऊलेसाए॥
मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दोण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा तेऊलेसाए॥
मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस होंति य सागरा मुहुत्तहिया*।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा पम्हलेसाए॥
मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा सुक्कलेसाए॥
एसा खलु लेसाणं, ओहेण ठिई उ वण्णिया होइ।

* पाठान्तर—दसउदही होइ मुहुत्तमब्भहिया।

—उत्त० अ ३४। गा ३४ से ४०। पृ० १०४७

सामान्यतः भावलेश्या की स्थिति द्रव्यलेश्या के अनुसार ही होनी चाहिये अतः उपरोक्त पाठ द्रव्य और भावलेश्या दोनों में लागू हो सकता है। नारकी और देवता की भावलेश्या में परिणमन हो तो वह केवल आकारभावमात्र, प्रतिविम्वभावमात्र होना चाहिये क्योंकि वहाँ मूल की द्रव्यलेश्या का अन्य लेश्या में परिणमन केवल आकारभावमात्र, प्रतिविम्बमात्र होता है। अतः नारकी और देवता में यदि 'भाव परावत्तिए पुण सुर नेरियाणं पि छल्लेस्सा'' होती है वह प्रतिविम्त्र भावमात्र होनी चाहिये।

·४६ भावलेश्या और भाव

४६.१ जीवोदय निष्पन्न भाव

(क) से किं तं जीवोदयनिप्फन्ने ? अणेगविहे पन्नत्ते, तंजहा—नेरइए तिरिक्खजोणिए मणुस्से देवे, पुढविकाइए जाव तसकाइए, कोहकसाइ जाव लोभकसाइ, इत्थीवेयए पुरिसवेयए नपुंसगवेयए, कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से, मिच्छादिट्ठी सम्मदिट्ठी सम्ममिच्छादिट्ठी, अविरए, असण्णी, अण्णाणी, आहारए, छउमत्थे, सजोगी, संसारत्थे, असिद्धे सेतं जीवोदयनिप्फन्ने।

—अणुओ० सू. १२६। पृ० ११११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) भावे उदओ भणिओ, छण्हं लेसाण जीवेसु ।

—उत्त० अ ३४ । नि० गा ५४२ उत्तरार्ध

(ग) भावादो छल्लेस्सा ओदयिया होंति × × × ।

—गोजी० गा ५५४ । पृ० २००

कृष्णलेश्या यावत् शक्ललेश्या जीवोदय निष्पन्न भाव है ।

४६.२ भावलेश्या और पाँच भाव

आगमों में प्राप्त पाठों के अनुसार लेश्या औदयिक भाव में गिनाई गई है । उपशम-क्षय-क्षयोपशम-भावों में लेश्या होने के पाठ उपलब्ध नहीं है । उत्तराध्ययन की निर्युक्ति का एक पाठ है ।

(क) दुविहा विसुद्धलेस्सा, उपसमखइआ कसायाणं ।

—उत्त० अ ३४ । नि० गा ५४० उत्तरार्ध

तत्र द्विविधा विशुद्धलेश्या···'उपसमखइय त्ति सूत्रत्वादुपशमक्षयजा, केषां पुनरुपशमक्षयौ ? यतो जायत इयमित्याह--कषायाणाम्, अयमर्थः कषायोपशमजा कषायक्षयजा च, एकान्त-विशुद्धि चाऽऽश्रित्यैवमभिधानम्, अन्यथा हि क्षायोपशमिक्यपि शुक्ला तेजः पद्मे च विशुद्धलेश्ये सम्भवतः एवेति ।

—उपर्युक्त निर्युक्ति गाथा पर वृत्ति

विशुद्धलेश्या द्विविध—औपशमिक और क्षायिक । यह उपशम और क्षय किसका ? कषायों का । अतः कषाय औपशमिक और कषाय क्षायिक । यह एकांत विशुद्धि की अपेक्षा कहा गया है अन्यथा क्षायोपशमिक भाव में भी तीनों विशुद्धलेश्या सम्भव है ।

गोम्भरसार जीवकांड में भी एक पाठ है ।

(ख) मोहुदय खओवसमोवसमखयज जीवफंदणं भावो ।

—गोजी० गा० ५३५ उत्तरार्ध

मोहनीय कर्म के उदय, क्षयोपशम, उपशम, क्षय से जो जीव के प्रदेशों की चंचलता होती है उसको भावलेश्या कहते । अर्थात् चारों भावों के निष्पन्न में लेश्या होती है ।

पारिणामिक भाव जीव तथा अजीव सभी द्रव्यों में होता है ।

लेश्या शास्वत भाव है (देखो विविध) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·४७ भावलेश्या के लक्षण

४७.१ कृष्णलेश्या के लक्षण

पंचासवप्पवत्तो, तीहिं अगुत्तो छसुं अविरओ य।
तिव्वारंभपरिणओ, खुद्दो साहसिओ नरो॥
निद्धन्धसपरिणामो, निस्संसो अजिइंदिओ।
एयजोगसमाउत्तो, कण्हलेसं तु परिणमे॥

—उत्त० अ० ३४। गा २१, २२। १०४६

पाँचों आश्रवों में प्रवृत्त, तीन गुप्तियों से अगुप्त, छः काय की हिंसा से अविरत, तीव्र आरम्भ में परिणत, क्षुद्र, साहसिक, निर्दयी, नृशंस, अजितेन्द्रिय पुरुष कृष्णलेश्या के परिणाम वाला होता है।

४७.२ नीललेश्या के लक्षण

इस्साअमरिसअतवो, अविज्जमाया अहीरिया य।
गेही पओसे य सढे, पमत्ते रसलोलुए*॥
आरंभाओ अविरओ खुद्दो साहसिओ नरो।
एयजोगसमाउत्तो, नीललेसं तु परिणमे॥

—उत्त० अ ३४। गा २३, २४। पृ० १०४६-४७

ईर्ष्यालु, कदाग्रही, अतपस्वी, अज्ञानी, मायावी, निर्लज्ज, विषयी, द्वेषी, रसलोलुप, आरम्भी, अविरत, क्षुद्र, साहसिक पुरुष नीललेश्या के परिणामवाला होता है।

४७.३ कापोतलेश्या के लक्षण

वंके वंकसमायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए।
पलिउंचग ओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारिए॥
उप्फालगदुट्ठवाई य, तेणे यावि य मच्छरी।
एयजोगसमाउत्तो, काऊलेसं तु परिणमे॥

—उत्त० अ ३४। गा २५, २६। पृ० १०४७

वचन से वक्र, विषम आचरणवाला, कपटी, असरल, अपने दोषों को ढाँकनेवाला, परिग्रही, मिथ्या दृष्टि, अनार्य, मर्मभेदक, दुष्ट वचन बोलने वाला, चोर, मत्सर स्वभाववाला पुरुष कापोतलेश्या के परिणामवाला होता है।

---

* पाठान्तर-पमत्ते रसलोलुए सायगवेसए य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४७.४ तेजोलेश्या के लक्षण

नीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले।
विणीयविणए दन्ते, जोगवं उवहाणवं॥
पियधम्मे दढधम्मे, वज्जभीरू हिएसए।
एयजोगसमाउत्तो, तेऊलेसं तु परिणमे॥

—उत्त० अ ३४। गा २७-२८। पृ० १०४७

नम्र, चपलता रहित, निष्कपट, कुतूहल से रहित, विनीत, इन्द्रियों का दमन करनेवाला, स्वाध्याय तथा तप को करनेवाला, प्रियधर्मी, दृढ़धर्मी, पापभीरू, हितैषी जीव, तेजोलेश्या के परिणामवाला होता है।

४७.५ पद्मलेश्या के लक्षण

पयणुक्कोहमाणे य, मायालोभे य पयणुए।
पसंतचित्ते दंतप्पा, जोगवं उवहाणवं॥
तहा पयणुवाई य, उवसंते जिइंदिए।
एयजोगसमाउत्तो, पम्हलेसं तु परिणमे॥

—उत्त० अ ३४। गा २९-३०। पृ० १०४७

जिसमें क्रोध, मान, माया और लोभ स्वल्प हैं, जो प्रशान्तचित्त वाला है, जो मन को वश में रखता है, जो योग तथा उपधानवाला, अत्यल्पभाषी, उपशान्त और जितेन्द्रिय होता है—उसमें पद्मलेश्या के परिणाम होते हैं।

४७.६ शुक्ललेश्या के लक्षण

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, धम्मसुक्काणि साहए।*
पसंतचित्ते दंतप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिसु॥
सरागे वीयरागे वा, उवसंते जिइंदिए।
एयजोगसमाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे॥

—उत्त० अ ३४। गा ३१-३२। पृ० १०४७

आर्त और रौद्रध्यान को त्यागकर जो धर्म और शुक्ल ध्यान का चिन्तन करता है, जिसका चित्त्शान्त है, जिसने आत्मा (मन तथा इन्द्रिय) को वश कर रखा है तथा जो समिति तथा गुप्तिवन्त है ; जो सराग अथवा वीतराग है, उपशान्त और जितेन्द्रिय है—उसमें शुक्ललेश्या के परिणाम होते हैं।

---

* पाठान्तर-झायए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'४८ भावलेश्या के भेद

४८·१ लेश्या परिणाम के भेद

लेस्सापरिणामे णं भंते ! कइविहे पन्नत्ते ? गोयमा ! छव्विहे पन्नत्ते, तंजहा-कण्हलेस्सापरिणामे, नीललेस्सापरिणामे, काऊलेस्सापरिणामे, तेऊलेस्सापरिणामे, पम्हलेस्सापरिणामे, सुक्कलेस्सापरिणामे।

· पण्ण० प १३ । सू. २ । पृ० ४०६

लेश्यापरिणाम के छः भेद हैं, यथा—

१—कृष्णलेश्या परिणाम, २—नीललेश्या परिणाम, ३—कापोतलेश्या परिणाम, ४—तेजोलेश्या परिणाम, ५—पद्मलेश्या परिणाम तथा ६—शुक्ललेश्या परिणाम।

'४९ विभिन्न जीवों में लेश्या परिणाम

(नेरइया) लेस्सापरिणामेणं कण्हलेस्सा वि, नीललेस्सा वि, काऊलेस्सा वि।

(असुरकुमारा) कण्हलेस्सा वि जाव तेऊलेस्सा वि। ×× एवं जाव थणियकुमारा।

(पुढविकाइया) जहा नेरइयाणं, नवरं तेऊलेस्सा वि एवं आउवणस्सइकाइया वि।

तेउवाउ एवं चेव, नवरं लेस्सापरिणामेणं जहा नेरइया।

बेइंदिया जहा नेरइया।

एवं जाव चउरिंदिया।

पंचिदियातिरिक्खजोणिया, नवरं लेस्सा परिणामेणं जाव सुक्कलेस्सा वि।

(मणुस्सा) लेस्सापरिणामेणं कण्हलेस्सा वि जाव अलेस्सा वि।

(वाणमंतरा) जहा असुरकुमारा।

(एवं जोइसिया) नवरं लेस्सापरिणामेणं तेऊलेस्सा।

(वेमाणिया) नवरं लेस्सापरिणामेणं तेऊलेसा वि, पम्हलेस्सा वि, सुक्कलेस्सा वि।

—पण्ण० प १३ । सू ३ । पृ० ४०९-१०

लेश्यापरिणाम से नारकी कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी है। असुरकुमार कृष्णलेशी नीललेशी, कापोतलेशी, तेजोलेशी है। इस प्रकार स्तनितकुमार तक जानो।

जैसा नारकी के लेश्यापरिणाम के विषय में कहा—वैसे ही पृथ्वीकाय के लेश्या परिणाम के विषय में जानो परन्तु उनमें तेजोलेशी भी है। इसी प्रकार अप्काय, वनस्पतिकाय के विषय में जानो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसा नारकी के लेश्या परिणाम के विषय में कहा—वैसा ही अग्निकाय-वायुकाय के लेश्या परिणाम के विषय में समझो।

जैसा नारकी के लेश्यापरिणाम के विषय में कहा—वैसा ही बेइन्द्रिय के विषय में समझो। इस प्रकार तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय के विषय में समझो।

लेश्यापरिणाम से तिर्यंच पचेन्द्रिय कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी होते हैं।

लेश्यापरिणाम से मनुष्य कृष्णलेशी यावत् अलेशी होते हैं अर्थात् छः लेश्यावाले भी होते हैं, अलेशी भी होते हैं।

जैसा असुरकुमार के लेश्या परिणाम के विषय में कहा—वैसा ही वाणव्यंतर देवों के विषय में समझो।

लेश्यापरिणाम से ज्योतिष्क देव तेजोलेशी हैं।

लेश्यापरिणाम से वैमानिक देव—तेजोलेशी, पद्मलेशी, शुक्ललेशी हैं।

४६·१ भाव परावृत्ति से देव नारकी में लेश्या

भावपरावत्तिए पुण सुर नेरइयाणं पि छल्लेस्सा।

भाव की परावृत्ति होने से देव और नारक के भी छ लेश्या होती है।

—पण्ण० प १७। उ ५। सू ५४ की टीका में उद्धृत

·५ लेश्या और जीव

·५१ लेश्या की अपेक्षा जीव के भेद

५१·१ जीवों के दो भेद

(क) अहवा दुविहा सव्वजीव पन्नत्ता, तं जहा—सलेस्सा य अलेस्सा य, जहा असिद्धा सिद्धा, सव्व थोवा अलेस्सा सलेस्सा अणंतगुणा।

—जीवा० प्रति ६। सर्व जीव। सू २४५। पृ० २५२

(ख) अहवा दुविहा सव्वजीवा पन्नत्ता, तंजहा ××× [एवं सलेस्सा चेव अलेस्सा चेव ×××]

—जीवा० प्रति ६। सर्व जी। सू २४५। पृ० २५१

(ग) दुविहा सव्वजीव पन्नत्ता, तंजहा ××× एवं एसा गाहा फासेयव्वा जाव ससरीरी चेव असरीरी चेव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धसइंदिकाए, जोगे वेए कसाय लेसा य।
णाणुवओगाहारे, भासग चरिमे य ससरीरी॥

—ठाण० स्था २। उ ४। सू १०१। पृ० २००

सर्वजीवों के दो भेद—सलेशी जीव, अलेशी जीव।

५१·२ जीवों के सात भेद

(क) अहवा सत्तविहा सव्वजीवा पन्नत्ता, तंजहा—कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा, तेऊलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा, अलेस्सा ××× सेत्तं सत्तविहा सव्वजीवा पन्नत्ता।

—जीवा० प्रति ६। सर्व जी। सू २६६। पृ० २५८

(ख) सत्तविहा सव्वजीवा पन्नत्ता, तंजहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा अलेस्सा।

—ठाण० स्था० ७। सू ५६२। पृ० २८१

सर्व जीवों के सात भेद हैं—कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी, तेजोलेशी, पद्मलेशी, शुक्ललेशी, अलेशी जीव।

·५२ लेश्या की अपेक्षा जीव की वर्गणा

(१) एगा कण्हलेस्साणं वग्गणा, एगा नीललेस्साणं वग्गणा, एवं जाव सुक्कलेस्साणं वग्गणा।

कृष्णलेशी जीवों की एक वर्गणा है इसी प्रकार नील, कापोत, तेजो, पद्म तथा शुक्ल-लेश्या जीवों की वर्गणाएं हैं।

(२) एगा कण्हलेस्साणं नेरइयाणं वग्गणा, जाव काऊलेस्साणं नेरइयाणं वग्गणा, एवं जस्स जाइ लेस्साओ, भवणवइवाणमंतरपुढविआउवणस्सइकाइयाणं च चत्तारि लेस्साओ तेऊवाउबेंदियतेइंदियचउरिंदियाणं तिन्निलेस्साओ पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं छल्लेस्साओ, जोइसियाणं एगा तेऊलेस्सा, वेमाणियाणं तिन्निउवरिमलेस्साओ।

कृष्णलेशी नारकियों की एक वर्गणा होती है इसी प्रकार दण्डक में जिसके जितनी लेश्या होती है उतनी वर्गणा जानना।

(३) एगा कण्हलेस्साणं भवसिद्धियाणं वग्गणा, एगा कण्हलेस्साणं अभवसिद्धियाणं वग्गणा, एवं छसु वि लेस्सासु दो दो पयाणि भाणियव्वाणि, एगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कण्हलेस्साणं भवसिद्धियाणं नेरइयाणं वग्गणा, एगा कण्हलेस्साणं अभवसिद्धियाणं नेरइयाणं वग्गणा, एवं जस्स जइ लेस्साओ तस्स तइ भाणियव्वाओ, जाव वेमाणियाणं।

कृष्णलेशी भवसिद्धिक जीवों की एक वर्गणा होती है तथा कृष्णलेशी अभवसिद्धिक जीवों की एक वर्गणा होती है इसी प्रकार छओं लेश्याओं में दो-दो पद कहना। कृष्णलेशी भवसिद्धिक नारक जीवों की एक वर्गणा, कृष्णलेशी अभवसिद्धिकों की एक वर्गणा तथा इसी प्रकार दण्डक में यावत् वैमानिक जीवों तक जिसके जितनी लेश्या हो उतनी भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक वर्गणा कहना।

(४) एगा कण्हलेस्साणं समदिट्ठियाणं वग्गणा, एगा कण्हलेस्साणं मिच्छादिट्ठियाणं वग्गणा, एगा कण्हलेस्साणं सम्ममिच्छदिट्ठियाणं वग्गणा, एवं छसु वि लेस्सासु जाव वेमाणियाणं जेसिं जइ दिट्ठीओ।

कृष्णलेशी सम्यक् दृष्टि जीवों की एक वर्गणा होती है, कृष्णलेशी मिथ्या दृष्टि जीवों की एक वर्गणा तथा कृष्णलेशी सम-मिथ्या दृष्टि जीवों की एक वर्गणा। इसी प्रकार छओं लेश्याओं में तथा दण्डक के जीवों में यावत् वैमानिक जीवों तक जिसके जितनी लेश्या तथा दृष्टि हो उतनी सम्यक् दृष्टि, मिथ्या दृष्टि तथा सममिथ्या दृष्टि व लेश्या की अपेक्षा जीवों की दृष्टि वर्गणा कहना।

(५) एगा कण्हलेस्साणं कण्हपक्खियाणं वग्गणा, एगा कण्हलेस्साणं सुक्कपक्खियाणं वग्गणा, एवं जाव वेमाणियाणं, जस्स जइ लेस्साओ, एए अट्ठ चउवीसदण्डया।

कृष्णलेशी कृष्णपक्षी जीवों की एक वर्गणा है, कृष्णलेशी शुक्लपक्षी जीवों की एक वर्गणा है। इसी प्रकार छओं लेश्याओं में तथा दण्डक के यावत् वैमानिक जीवों तक में जिसके जितनी लेश्या तथा जो पक्षी हो उतनी कृष्णपक्षी शुक्लपक्षी वर्गणा कहना।

वर्गणा शब्द की भावाभिव्यक्ति अंग्रेजी के Grouping शब्द में पूर्ण रूप से व्यक्त होती है। सामान्यतः समान गुण व जातिवाले समुदाय को वर्गणा कहते।

—ठाण० स्था १। सू ५१। पृ० १८४-१८५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५३ विभिन्न जीवों में कितनी लेश्या

·१ नारकियों में

(क) नेरियाणं भंते ! कइ लेस्साओ पन्नत्ता ? गोयमा ! तिन्नि (लेस्साओ-पन्नत्ता) तंजहा-कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १३ । पृ० ४३७।८

(ख) नेरइयाणं तओ लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा।

—ठाण स्था ३ । उ १ । सू १८१ । पृ० २०५

(ग) (तेसि णं भंते ! (नेरइया) जीवाणं कइ लेस्सा पन्नत्ता ? गोयमा !) तिन्नि लेस्साओ (पन्नत्ताओ)।

—जीवा० प्रति १ । सू ३२ ।पृ० ११३

नारकी जीवों के तीन लेश्या होती हैं यथा—कृष्ण, नील तथा कापोतलेश्या।

·२ रत्नप्रभा नारकी में

(क) इमीसे णं भन्ते ! रयणप्पभाएपुढवीए नेरइयाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! एगा काऊलेस्सा पन्नत्ता।

—जीवा० प्रति ३ । उ २ । सूत्र ८८ । पृ० १४१

—भग० श १ । उ ५ । प्र० १८० । पृ० ४००।१

रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी के एक कापोत लेश्या होती है।

(ख) (रयणप्पभापुढविनेरइए णं भन्ते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिए सु उववज्जित्तए) तेसि णं भंते × × एगा काऊलेस्सा पन्नत्ता।

—भग० श २४ । उ २० । प्र ५ । पृ० ८३८

तिर्यंच पंचेन्द्रिय में उत्पन्न होने योग्य रत्नप्रभा नारकी में एक कापोत लेश्या होती है।

·३ शर्कराप्रभा नारकी में

एवं सक्करप्पभाएऽवि।

—जीवा० प्रति ३ । उ २ । सू ८८ । पृ० १४१

रत्नप्रभा नारकी की तरह शर्कराप्रभा नारकी में भी एक कापोतलेश्या होती है। (देखो ऊपर का पाठ)

·४ वालुकाप्रभा नारकी में

वालुयप्पभाए पुच्छा, गोयमा ! दो लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—नील-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेस्सा य काऊलेस्सा य। तत्थ जे काऊलेस्सा ते बहुतरा जे नीललेस्सा पन्नत्ता ते थोवा।

—जीवा० प्रति ३। उ २। सू ८८। पृ० १४१

वालुका प्रभा पृथ्वी के नारकी के दो लेश्या होती हैं, यथा-नील और कापोत। उनमें अधिकतर कापोत लेश्यावाले हैं, नीललेश्या वाले थोड़े हैं।

·५ पंकप्रभा नारकी में

पंकप्पभाए पुच्छा, एगा नीललेस्सा पन्नत्ता।

—जीवा० प्रति ३। उ २ सू ८८। पृ० १४१

पंकप्रभा पृथ्वी के नारकी के एक नीललेश्या होती है।

·६ धूम्रप्रभा नारकी में

धूमप्पभाए पुच्छा, गोयमा! दो लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा य नीललेस्सा य, ते बहुतरगा जे नीललेस्सा थोवतरगा जे कण्हलेस्सा।

—जीवा० प्रति ३। ३२। सू ८८। पृ० १४१

धूम्रप्रभा पृथ्वी के नारकी के दो लेश्या होती हैं, यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या। उनमें अधिकतर नीललेश्या वाले हैं, कृष्णलेश्या वाले थोड़े हैं।

·७ तमप्रभा नारकी में

तमाए पुच्छा, गोयमा! एगा कण्हलेस्सा।

—जीवा० प्रति ३। उ २। सू ८८। पृ० १४१

तमप्रभा पृथ्वी के नारकी के एक कृष्णलेश्या होती है।

·८ तमतमाप्रभा नारकी में

अहे सत्तमाए एगा परम कण्हलेस्सा।

— जीवा० प्रति ३। उ २। सू ८८। पृ० १४१

तमतमाप्रभा पृथ्वी के नारकी के एक परम कृष्णलेश्या होती है।

समुच्चय गाथा

एवं सत्तवि पुढवीओ नेयव्वाओ, णावत्तं लेसासु।
गाहा--काऊ य दोसु तइयाए मीसिया नीलिया चउत्थीए।
पंचमियाए मीसा कण्हा तत्तो परम कण्हा॥

—भग० श १। उ ५। प्र ४६। पृ० ४०१

पहली और दूसरी नारकी में एक कापोत लेश्या, तीसरी में कापोत और नील, चौथी में एक नील, पंचमी में नील और कृष्ण, छठी में एक कृष्ण और सातवीं में एक परम कृष्णलेश्या होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·९ तिर्यंच में

तिरिक्ख जोणियाणं भंते ! कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! छल्लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

तिर्यंच के कृष्ण यावत् शुक्ल छओं लेश्या होती है।

·१० एकेन्द्रिय में

(क) एगिंदियाणं भंते! कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा चत्तारि लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा जाव तेऊलेसा।

—पण्ण० प० १७। उ २। सू० १३। पृ० ४३८

—भग० श १७। उ १२। प्र १२। पृ० ७६१

एकेन्द्रिय के चार लेश्या होती है, यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या।

·११ पृथ्वीकाय में

(क) पुढविकाइयाणं भंते! कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! एवं चेव (जहा एगिंदियाणं)।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

(ख) (पुढविकाइया) तेसिणं भंते! जीवाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! चत्तारि लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा, नीललेस्सा काऊलेस्सा तेऊलेस्सा।

—भग० श १९। उ ३। प्र २। पृ० ७८२

(ग) असुरकुमाराणं चत्तारि लेस्सा पन्नत्ता, तंजहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काऊलेस्सा तेऊलेस्सा एवं जाव थणियकुमाराणं एवं पुढविकाइयाणं।

—ठाण० स्था ४। उ ३। सू ३१५। पृ० २४०

(घ) भवणवइवाणमंतर पुढविआउवणस्सइकाइयाणं च चत्तारि लेस्साओ।

ठाण० स्था २। उ १। सू ७२। पृ० १८४

पृथ्वीकाय के जीवों में चार लेश्या होती है, यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या।

(च) (पुढविकाइए णं भंते! जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए) चत्तारि लेस्साओ।

—भग० श २४। उ १२। प्र ४। पृ० ८२९

पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने योग्य पृथ्वीकायिक जीवों में चार लेश्या होती है।

९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(छ) (पुढविकाइए णं भन्ते ! जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए) सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ जाओ × × लेस्साओ तिन्नि ।

—भग० श २४ । उ १२ । प्र ८ । पृ० ८३०

पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने योग्य जघन्य स्थितिवाले पृथ्वीकायिक जीवों में तीन लेश्या होती है ।

(ज) असुरकुमाराणं तओ लेस्साओ संकिलिट्ठाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काऊलेस्सा × × एवं पुढविकाइयाणं ।

—ठाण० स्था ३ । उ १ । सू १८१ । पृ० २०५

पृथ्वीकाय में तीन संक्लिष्ट लेश्या होती है, यथा—कृष्ण, नील, कापोतलेश्या ।

·११·१ सूक्ष्म पृथ्वीकाय में

(सुहुम पुढविकाइया) तेसिणं भंते ! जीवाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! तिन्नि लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा, नीललेस्सा काऊलेस्सा ।

—जीवा० प्रति १ । सू १३ । पृ० १०६

सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जीवों में तीन लेश्या होती है, यथा—कृष्ण, नील, कापोत लेश्या ।

·११·२ बादर पृथ्वीकाय में

चार लेश्या होती है ।

·११·३ स्निग्ध तथा खर पृथ्वीकाय में

(सण्हबायर पुढविकाइया ; खरबायर पुढविकाइया) चत्तारि लेस्साओ ।

—जीवा० प्रति १ । सू १५ । पृ० १०६

स्निग्ध तथा खर बादर पृथ्वीकाय में कृष्णादि चार लेश्या होती है ।

·११·४ अपर्याप्त बादर पृथ्वीकाय में

चार लेश्या होती है ।

·११·५ पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय में

तीन लेश्या होती है ।

·१२ अप्काय में

(क) भवणवइवाणमंतर पुढविआउवणस्सइकाइयाणं च चत्तारि लेस्साओ ।

—ठाण० स्था २ । उ १ । सू ७२ । पृ० १८४

(ख) आउवणस्सइकाइयाणवि एवं चेव (जहा पुढविकाइयाणं) ।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १३ । पृ० ४३८

(ग) आउकाइया × × एवं जो पुढविकाइयाणं गमो सो चेव भाणियव्वो ।

—भग० श १९ । उ ३ । प्र १७ । पृ० ७८२-८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(घ) असुरकुमाराणं चत्तारि लेस्सा पन्नत्ता, तंजहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काऊलेस्सा तेऊलेस्सा × × एवं × × आउवणस्सइकाइयाणं।

—ठाण० स्था ४। उ ३। सू ३६५। पृ० २४०

अप्काय के जीवों में चार लेश्या होती हैं।

(ङ)असुरकुमाराणं तओ लेस्साओ संकिलिट्ठाओ पन्नत्ताओ,तंजहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काऊलेस्सा × × एवं पुढविकाइयाणं आउवणस्सइकाइयाणं वि।

—ठाण० स्था ३। उ १। सू १८१। पृ० २०५

अप्काय में तीन संक्लिष्ट लेश्या होती है।

·१२·१ सूक्ष्म अप्काय में

(सुहुम आउकाइया) जहेव सुहुम पुढविकाइयाणं।

—जीवा० प्रति १। सू १६। पृ० १०६

सूक्ष्म अप्काय में तीन लेश्या होती है।

·१२·२ बादर अप्काय में

(बायर आउकाइया) चत्तारि लेस्साओ।

—जीवा० प्रति १। सू १७। पृ० १०६

बादर अप्काय में चार लेश्या होती है।

·१२·३ अपर्याप्त बादर अप्काय में

चार लेश्या होती है।

·१२·४ पर्याप्त बादर अप्काय में

तीन लेश्या होती हैं।

·१३ तेउकाय में

(क) तेउवाउबेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं जहा नेरइयाणं।

—पण्ण० पद १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

(ख) तेउवाउवेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं वि तओ लेस्सा जहा नेरइयाणं।

—ठाण० स्था ३। उ १। सू १८१। पृ० २०५

(ग) तेउवाउवेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं तिन्नि लेस्साओ।

— ठाण० स्था २। उ १। सू ७२। पृ० १८४

तेउकाय में तीन लेश्या होती है।

(घ) जइ तेउकाइएहिंतो (भविए पुढविकाइएसु) उववज्जंति × × तिन्नि लेस्साओ।

—भग० श० २४। उ १२। प्र १६। पृ० ८३१

पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने योग्य तेउकायिक जीव में तीन लेश्या होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·१३·१ सूक्ष्म तेउकाय में

(सुहुम तेउकाइया) जहा सुहुम पुढविकाइयाणं।

-- जीवा० प्रति १ । सू २४ । पृ० ११०

सूक्ष्म तेउकाय में तीन लेश्या होती है।

·१३·२ बादर तेउकाय में

(बायर तेउकाइया) तिन्नि लेस्सा।

—जीवा० प्रति १ । सू २५ । पृ० १११

बादर तेउकाय में तीन लेश्या होती है।

·१४ वायुकाय में :—

देखो ऊपर तेउकाय के पाठ (·१३)

तीन लेश्या होती है।

·१४·१ सूक्ष्म वायुकाय में

(सुहुम वाउकाइया)—जहा तेउकाइया ।

—जीवा० प्रति १ । सू २६ । पृ० १११

सूक्ष्म वायुकाय में तीन लेश्या होती है।

·१४·२ बादर वायुकाय में

(बायर वाउकाइया) सेसं तं चेव (सुहुम वाउकाइया)।

—जीवा० प्रति १ । सू २६ । पृ० १११

बादर वायुकाय में तीन लेश्या होती है।

·१५ वनस्पतिकाय में

(क) आउवणस्सइकाइयाणवि एवं चेव (जहा पुढविकाइयाणं)।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १३ । पृ० ४३८

(ख) असुरकुमाराणं चत्तारि लेस्सा पन्नत्ता, तंजहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काऊलेस्सा तेऊलेस्सा ×× एवं ×× आउवणस्सइकाइयाणं।

—ठाण० स्था० ४ । उ ३ । सू ३६५ । पृ० २४०

(ग) भवणवइवाणमंतरपुढविआउवणस्सइकाइयाणं च चत्तारि लेस्साओ।

—ठाण० स्था २ । उ १ । सू ७२ । पृ० १८४

वनस्पतिकाय के जीवों में चार लेश्या होती है।

(घ) असुरकुमाराणं तओ लेस्साओ संकिलिट्ठाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काऊलेस्सा ×× एवं पुढविकाइयाणं आउवणस्सइकाइयाणं वि।

—ठाण० स्था ३ । उ १ । सू १८१ । पृ० २०५

वनस्पतिकाय में तीन संक्लिष्ट लेश्या होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·१५·१ सूक्ष्म वनस्पतिकाय में

अवसेसं जहा पुढविकाइयाणं।

—जीवा० प्रति १ । सू १८ । पृ० १०६

सूक्ष्म वनस्पतिकाय में तीन लेश्या होती है।

·१५·२ बादर वनस्पतिकाय में

(बायर वणस्सइकाइया) तहेव जहा बायर पुढविकाइयाणं।

—जीवा० प्रति १ । सू २१ । पृ० ११०

बादर वनस्पतिकाय में चार लेश्या होती है।

·१५·३ अपर्याप्त बादर वनस्पतिकाय में

चार लेश्या होती है। पाठ नहीं मिला।

·१५·४ पर्याप्त बादर वनस्पतिकाय में

तीन लेश्या होती है। पाठ नहीं मिला।

·१५·५ प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकाय में

चार लेश्या होती है। पाठ नहीं मिला।

·१५·६ अपर्याप्त प्रत्येक बादर वनस्पतिकाय में—

चार लेश्या होती है। पाठ नहीं मिला।

·१५·७ पर्याप्त प्रत्येक बादर वनस्पतिकाय में—

तीन लेश्या होती है। पाठ नहीं मिला।

·१५·८ साधारण शरीर बादर वनस्पतिकाय में

तीन लेश्या होती है। पाठ नहीं मिला।

·१५·९ उत्पल आदि दस प्रत्येक बादर वनस्पतिकाय में

(क) (उप्पलेव्वं एकपत्तए) ते णं भंते ! जीवा किं कण्हलेसा नीललेसा काऊलेसा तेऊलेसा ? गोयमा ! कण्हलेसे वा जाव तेऊलेसे वा कण्हलेस्सा वा नीललेस्सा वा काऊलेस्सा वा तेऊलेसा वा अहवा कण्हलेसे य नीललेस्से य एवं एए दुयासंजोग-तियासंजोगचउक्कसंजोगेणं असीइ भंगा भवंति।

भग० श ११ । उ १ । सू १३ । पृ० २२३

उत्पल जीव में चार लेश्या होती हैं। उत्पल का एक जीव कृष्णलेश्या वाला यावत् तेजोलेश्या वाला होता है। अथवा अनेक जीव कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले होते हैं, अथवा एक कृष्णलेश्या वाला तथा एक नीललेश्यावाला होता है। इस प्रकार द्विकसंयोग, त्रिकसंयोग, तथा चतुष्कसंयोग से सब मिलकर अस्सी भांगे कहना। एक पत्री उत्पल वनस्पति-काय में प्रथम की चार लेश्या होती है। एक जीव के चार लेश्या, अनेक जीवों के भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारलेश्या के चार भांगे=कुल ८ भांगे। द्विकसंयोग में एक तथा अनेक की चउभंगी होती है। कृष्णादि चार लेश्या के छः द्विकसंयोग होते हैं। उसको पूर्वोक्त चउभंगी के साथ गुणा करने से द्विकसंजोगी २४ विकल्प होते हैं। चार लेश्या के त्रिकसंयोगी ८ विकल्प होते हैं। उनको पूर्वोक्त चउभंगी के साथ गुणा करने से त्रिकसंयोगी के ३२ विकल्प होते हैं। तथा चतुष्कसंजोगी के १६ विकल्प होते हैं अतः सब मिलकर ८० विकल्प होते हैं।

(ख) (सालुए एगपत्तए) एवं उप्पलुद्देसग वत्तव्वया ? अपरिसेसा भाणियव्वा जाव अणंतखुत्तो।

—भग० श ११। उ २। प्र १। पृ० ६२५

एक पत्री उत्पल की तरह एक पत्री शालुक को जानना।

(ग) (पलासे एगपत्तए) लेसासु ते णं भंते ! जीवा किं कण्हलेसा नीललेसा काऊलेस्सा ? गोयमा ! कण्हलेस्से वा नीललेस्से वा काऊलेस्से वा छव्वीसं भंगा, सेसं तं चेव। सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

—भग० श ११। उ ३। प्र २। पृ० ६२५

एकपत्री पलास वृक्ष में प्रथम तीन लेश्या होती है। एक और अनेक जीव की अपेक्षा से इसके २६ विकल्प जानना।

(घ) (कुंभिए एगपत्तए) एवं जहा पलासुद्देसए तहा भाणियव्वे।

—भग० श० ११। उ ४। प्र १। पृ० ६२५

एकपत्री पलास की तरह एकपत्री कुंभिक में तीन लेश्या, २६ विकल्प होते हैं।

(ङ) (नालिए एगपत्तए) एवं कुंभिउद्देसग वत्तव्वया निरविसेसं भाणियव्वा।

—भग० श० ११। उ ५। प्र १। पृ० ६२५

एक पत्री नालिक वनस्पति में एकपत्री कुंभिक की तरह तीन लेश्या छव्वीस विकल्प होते हैं।

(च) (पउमे) एवं उप्पलुद्देसग वत्तव्वया निरवसेसा भाणियव्वा।

—भग० श० ११। उ ६। प्र १। पृ० ६२५

एकपत्री पद्म वनस्पतिकाय में उत्पल की तरह चार लेश्या तथा अस्सी भांगे होते हैं।

(छ) (कन्निए) एवं चेव निरवसेसं भाणियव्वं।

—भग० श० ११। उ ७। प्र १। पृ० ६२५

एक पत्री कर्णिका वनस्पतिकाय में उत्पल की तरह चार लेश्या, अस्सी विकल्प होते हैं।

(ज) (नलिणे) एवं चेव निरविसेसं जाव अणंतखुत्तो।

—भग० श० ११। उ ८। प्र १। पृ० ६२५

एक पत्री नलिन वनस्पतिकाय के उत्पल की तरह चार लेश्या तथा अस्सी विकल्प होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५.१० शालि, व्रीहि आदि वनस्पतिकाय में

(क) इनके मूल में

साली-वीही गोधूम-जाव जवजवाणं × × जीवा मूलत्ताए—ते णं भंते! जीवा किं कण्हलेस्सा नीललेस्सा काऊलेस्सा छव्वीसं भंगा।

—भग० श० २१। व १। उ १। प्र १। पृ० ८११

शालि, व्रीहि, गोधूम, यावत् जवजव आदि के मूल के जीवों में तीन लेश्या और छब्बीस विकल्प होते हैं।

(ख) इनके कंद में

तीन लेश्या, २६ विकल्प होते हैं।

(ग) इनके स्कन्ध में

तीन लेश्या, २६ विकल्प होते हैं।

(घ) इनकी त्वचा में

तीन लेश्या, २६ विकल्प होते हैं।

(ङ) इनकी शाखा में

तीन लेश्या, २६ विकल्प होते हैं।

(च) इनके प्रवाल में

तीन लेश्या, २६ विकल्प होते हैं।

(छ) इनके पत्र में

तीन लेश्या, २६ विकल्प होते हैं।

(ज) इनके पुष्प में

एवं पुप्फे वि उद्देसओ, नवरं देवा उववज्जंति जहा उप्पलुद्देसे चत्तारि लेस्साओ, असीइ भंगा।

चार लेश्या-तथा अस्सी विकल्प होते हैं क्योंकि इनमें देवता उत्पन्न होते हैं।

(झ) इनके फल में

जहा पुप्फे एवं फले वि उद्देसओ अपरिसेसो भाणियव्वो।

फल में भी पुप्प की तरह चार लेश्या तथा अस्सी विकल्प होते हैं।

(ञ) इनके वीज में

एवं बीए वि उद्देसओ।

वीज में भी पुष्प की तरह चार लेश्या तथा अस्सी विकल्प होते हैं।

—भग० श २१। व १। उ २ से १०। प्र १। पृ० ८११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·१५·११ कलई आदि वनस्पतिकाय में

कलाय-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-निप्फायकुलत्थ-आलिसदंग-सडिण-पलिमंथगाणं × × एवं मूलादीया दसउद्देसगा भाणियव्वा जहेव सालीणं निरवसेसं तहेव।

—भग० श २१। व ३। उ १ से १०। प्र० १। पृ० ८११

कलई, मसूर, तिल, मूंग, अरहड़, वाल, कलत्थी, आलिसंदक, सटिन, पालिमंथक, वनस्पति के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प तथा पुष्प-फल-बीज में चार लेश्या तथा अस्सी विकल्प होते हैं।

१५·१२ अलसी आदि वनस्पतिकाय में

अह भंते! अयसि कुसुंभ-कोद्दव कंगु-रालग-तुवरी-कोदूसा-सण-सरिसव-मूलगबीयाणं × × एवं एत्थ वि मूलादीया दस उद्देसगा जहेव सालीणं निरवसेसं तहेव भाणियव्वं।

—भग० श २१। व ३। उ १ से १०। प्र १। पृ० ८११

अलसी, कुसम्भ, कोद्रव, कांग, राल, कुवेर, कोदुसा, सण, सरसव, मूलकबीज वनस्पति के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते हैं तथा पुष्प-फल-बीज में चार लेश्या तथा अस्सी विकल्प होते हैं।

१५·१३ बांस आदि वनस्पतिकाय में

अह भंते! वंस-वेणु-कणग-कक्कावंस-चारूवंस-दण्डा-कुडा-विमाचण्डा-वेणुया-कल्लाणीणं × × × एवं एत्थवि मूलादीया दस उद्देसगा जहेव सालीणं, नवरं देवो सव्वत्थ वि न उववज्जइ, तिन्नि लेस्साओ, सव्वत्थ वि छव्वीसं भंगा।

—भग० श २१। व ४। पृ० ८१२

बांस, वेणु, कनक, ककविंश, चारूवंश, दण्डा, कुडा, विमा, चण्डा, वेणुका, कल्याणी, इनके मूल यावत् बीज में तीन लेश्या तथा छव्वीस विकल्प होते हैं।

१५·१४ इक्षु आदि वनस्पतिकाय में

अह भंते! उक्खु-इक्खु-वाडिया-वीरणा-इक्कड-भमास-सुंठि-सत्त-वेत्त-तिमिर-सयपोरग-नलाणं × एवं जहेव वंसवग्गो तहेव, एत्थ वि मूलादीया दस उद्देसगा, नवरं खंधुद्देसे देवा उववज्जंति, चत्तारि लेस्साओ पन्नत्ता।

—भग० श २१। व ५। पृ० ८१२

इक्षु, इक्षुवाटिका, वीरण, इक्कडभमास-सूंठ-शर-वेत्र-तिमिर-सयपोरग-नल—इनके स्कन्ध बाद मूलादि में तीन लेश्या, २६ विकल्प तथा स्कन्ध में चार लेश्या तथा अस्सी विकल्प होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·१५·१५ सेडिय आदि तृण विशेष वनस्पतिकाय में

अह भंते! सेडिय-भंतिय दब्भ-कोंतिय-दब्भकुस-पव्वग पादेइल-अज्जुण-आसाढग-रोहिय- समु-अवखीर-भुस-एरंड-कुरुकुंद-करकर-सुंठ - विभंगु - महुरयण-थुरग - सिप्पिय-सुंकलितगाणं × × एवं एत्थ वि दस उद्देसगा निरवसेसं जहेव वंसवग्गो।

—भग० श २१। व ६। पृ० ८१२

सेडिय, भंतिय (भंडिय), दर्भ, कौंतिय, दर्भकुश, पर्वक, पोदेइल (पोइदइल), अर्जुन (अंजन), आषाढक, रोहितक, समु, तवखीर, भुस, एरण्ड, कुरुकंद, करकर, सूंठ, विभंग, मधुरयण (मधुवयण), थुरग, शिल्पिक, सुकंलितृण—इनके मूल यावत् बीज में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते हैं।

·१५·१६ अभ्ररूह आदि वनस्पतिकाय में

अह भंते! अब्भरुह-वायण-हरितग-तंदुलेज्जग-तण-वत्थुल-पोरग-मज्जारयाई-विल्लि-पालक्क दगपिप्पलिय-दव्वि-सोत्थिय-सायमंडुक्कि-मूलग-सरिसव - अंबिलसाग-जियंतगाणं × × एवं एत्थ वि दस उद्देसगा जहेव वंसवग्गो।

—भग० श २१। व ७। पृ० ८१२

अभ्ररूह, वायण, हरितक, तांदलजो, तृण, वत्थुल, पोरक, मार्जारक, विल्लि, (चिल्लि), पालक्क, दगपिप्पली, दव्वि (दर्वी), स्वस्तिक, शाकमंडुकी, मूलक, सरसव, अंबिलशाक, जियंतग—इनके मूल यावत् बीज में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते हैं।

·१५·१७ तुलसी आदि वनस्पतिकाय में—

अह भंते! तुलसी-कण्ह-दराल-फणेज्जा-अज्जा-चूयणा-चोरा-जीरा-दमणा-मुरुया-इंदीवर-सयपुप्फाणं × × एत्थ वि दस उद्देसगा निरवसेसं जहा वंसाणं।

—भग० श २१। व ८। पृ० ८१२

तुलसी, कृष्ण, दराल, फणेज्जा, अज्जा, चूतणा, चोरा, जीरा, दमणा, मरुया, इंदीवर, शतपुष्प —इनके मूल यावत् बीज में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते हैं।

·१५·१८ ताल-तमाल आदि वनस्पतिकाय में

अह भंते! ताल-तमाल-तक्कलि-तेतलि-साल-सरला-सारगल्लाणं जाव केयति-कदलि-कंदलि-चम्मरुक्ख-गुंतरुक्ख-हिंगुरुक्ख - लवंगरुक्ख-पूयफल - खज्जूरि - नालएरीणं—मूले कन्दे खंधे तयाए साले य एएसु पंचसु उद्देसगेसु देवो न उववज्जइ। तिन्निलेस्साओ × × × उवरिल्लेसु (पवाले-पत्ते-पुप्फे-फले-बीए) पंचसु उद्देसगेसु-देवो उववज्जइ। चत्तारिलेस्साओ।

—भग० श २२। व १। पृ० ८१२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताड, तमाल-तक्कलि, तेतलि, साल, देवदार, सारग्गल यावत् केतकी, केला, कंदली, चर्मवृक्ष, गुंदवृक्ष, हिंगुवृक्ष, लवंगवृक्ष, सुपारीवृक्ष, खजूर, नारिकेल—इनके मूल, कंद-स्कन्ध, त्वचा (छाल) शाखा में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते हैं। अवशेष—प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, वीज में चार लेश्या तथा अस्सी विकल्प होते हैं।

'१५'१६ लीमडा, आम्र आदि वनस्पतिकाय में

अह भंते ! निंबंबजंबुकोसंबतालअंकोल्लपीलुसेलुसल्लइमोयइमालुयवउलपलासकरंजपुत्तंजीवगरिट्ठवहेडगहरियगभल्लाय उंबरियखीरणिधायइपियालपूइयणिवायगसेण्हयपासियसीसवअयसिपुण्णागनागरुक्खसीवण्णअसोगाणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति एवं मूलादीया दस उद्देसगा कायव्वा निरवसेसं जहा तालवग्गो ॥

—भग० श २२ । व २ । पृ० ८१२-१३

निम्ब, आम्र, जांबू, कोशंव, ताल, अंकोल्ल, पीलु, सेलु, सल्लकी, मोचकी, मालुक, वकुल, पलाश, करंज, पुत्रजीवक, अरिष्ट, वहेड़ा, हरड, भिलामा, उंवेभरिका, क्षीरिणी, धावडी, प्रियाल, पूतिनिम्ब, सेण्हय, पासिय, सीसम, अतसी, नागकेसर, नागवृक्ष, श्रीपर्णी, अशोक इनके मूल, कंद, स्कंध, त्वचा, शाखा में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते हैं। अवशेष—प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, वीज में चार लेश्या तथा अस्सी विकल्प होते हैं।

'१५'२० अगस्तिक आदि वनस्पतिकाय में

अह भंते ! अत्थियातिंदुयबोरकविट्ठअंबाडगमाउलिंगबिल्लआमलगफणसदाडिमआसत्थउंबरवडणग्गोहनंदिरुक्खपिप्पलिसतरपिलक्खुरुक्खकाउंबरियकुच्छुंभरियदेवदालितिलगलउयछत्तोहसिरीससत्तवण्णदहिवण्णलोद्धधवचंदण अज्जुणणीवकुडुगकलंबाणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! एवं एत्थ वि मूलादीया दस उद्देसगा तालवग्गसरिसा णेयव्वा जाव बीयं ॥

—भग० श २२ । व २ । पृ० ८१३

अगस्तिक, तिंदुक, वोर, कोठी, अम्वाडग, वीजोरुं, विल्व, आमलक, पनस, दाडिम, अश्वत्थ (पीपल), उंवर, वड, न्यग्रोध, नन्दिवृक्ष, पीपर, सतर, प्लक्षवृक्ष, काकोदुम्बरी, कस्तुम्भरि देवदालि, तिलक, लकुच, छत्रोंध, शिरिष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्रक, धव, चन्दन, अर्जुन, नीप, कुटज, कदम्ब—इनके मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते हैं। अवशेष—प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, वीज में चार लेश्या तथा अस्सी विकल्प होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'१५'२१ वेंगन आदि वनस्पतिकाय में—

अह भंते ! वाइंगणिअल्लइपोंडइ एवं जहा पण्णवणाए गाहाणुसारेणं णेयव्वं जाव गंजपाडलावासिअंकोल्लाणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति एवं एत्थ वि मूलादीया दस उद्देसगा तालवग्गसरिसा णेयव्वा जाव बीयंति निरवसेसं जहा वंसवग्गो।

भग० श० २२ । व ४ । पृ० ८१२

वेंगन, अल्लइ, (सल्लई) पोंडइ, [थुंडकी, कच्छुरी, जासुमणा, रूपी आढकी, नीली, तुलसी, मातुलिंगी, कस्तुंभरी, पिप्पलिका, अलसी, वल्ली, काकमाची, वुच्चु पटोल कंदली, विउव्वा, वत्थुल, वदर, पत्तउर, सीयउर, जवसय, निगुंडी, कस्तुवरि, अत्थई, तलउडा, शण, पाण, कासमर्द, अग्घाडग, श्यामा, सिन्दुवार करमर्द, अद्दरूसग, करीर, ऐरावण, महित्थ, जाउलग, भालग, परिली, गजभारिणी, कुव्वकारिया, भंडी, जीवन्ती, केतकी] गंज, पाटला, वासी, अंल्कोल—इनके मूल यावत् बीज में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते हैं।

'१५'२२ सिरियक आदि वनस्पतिकाय में—

अह भन्ते ! सिरियकणवनालियकोरंटगबंधुजीवगमणोज्जा जहा पण्णवणाए पढमपए गाहाणुसारेणं जाव नलणी य कुंदमहाजाईणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति एवं एत्थ वि मूलादीया दस उद्देसगा निरवसेसं जहा सालीणं ।।

—भग० श २२ । व ५ । पृ० ८१३

सिरियक, नवमालिका, कोरंटक, वन्धुजीवक, मणोज्जा, (पिइय, पाण, कणेर, कुज्जय, सिंदुवार, जाती, मोगरो, यूथिका, मल्लिका, वासन्ती, वत्थुल, कत्थुल, सेवाल, ग्रन्थी, मृगदन्तिका, चम्पक जाति,) नवणीइया, कुंद, महाजाति—इनके मूल यावत् पत्र में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते हैं। पुष्प, फल, बीज में चार लेश्या तथा अस्सी विकल्प होते हैं।

'१५'२३ पूसफलिका आदि वनस्पतिकाय में—

अह भंते ! पूसफलिकालिंगीतुंबीतउसीएलावालुंकी एवं पयाणि छिंदियव्वाणि पण्णवणा गाहाणुसारेणं जहा तालवग्गे जाव दधिफोल्लइकाकलिसोक्कलिअक्कबोंदीणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति एवं मूलादीया दस उद्देसगा कायव्वा जहा तालवग्गो, णवरं फलउद्देसे ओगाहणाए जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं धणुहपुहुत्तं, ठिई सव्वत्थ जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं वासपुहुत्तं सेसं तं चेव।

—भग० श० २२ । व ६ । पृ० ८१३

पूसफलिका, कालिंगी, तुंवडी, त्रपुषी, एलवालुंकी, (घोषातकी, पण्डोला, पंचागुलिका नीली, कण्डूइया, कटूठुइया, कंकोडी, कारेली, सुभगा, कुयधाय, वागुलीया, पाववल्ली, देवदाली,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्फोया, अतिमुक्त, नागलता, कृष्णा, सूरवल्ली, संघट्टा, सुमणसा, जासुवण, कुविंदवल्ली, मुद्दिया, द्राक्षना वेला, अम्बावल्ली, क्षीरविदारिका, जयन्ती, गोपाली, पाणी, मासावल्ली, गुंजावल्ली, वच्छाणी, शशबिन्दु, गोत्तफुसिया, गिरिकर्णिका, मालुका, अञ्जनकी) दधिपुष्पिका, काकलि, सोकलि, अर्कवोदी—इनके मूल, कंद, स्कन्ध, त्वचा (छाल), शाखा में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते है। अवशेष—प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल वीज में चार लेश्या तथा अस्सी विकल्प होते हैं।

अंक '१५.६ से '१५.२३ तक में वर्णित वनस्पतियाँ—प्रत्येक वनस्पतिकाय हैं।

'१५'२४ आलुक आदि साधारण वनस्पतिकाय में—

रायगिहे जाव एवं वयासी—अह भंते ! आलुयमूलगसिंगबेरहालिद्दरुक्खकंडरियजारुच्छीरबिरालिकिट्ठिकुंदुकण्हकडडसुमहुपयलइमहुसिंगिणिरुहासप्पसुगंधाछिण्णरुहावीयरुहाणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति एवं मूलादीया दस उद्देसगा कायव्वा वंसवग्गसरिसा।

—भग० श २३। व १। पृ० ८१३

आलुक, मूला, आद्रु, हलदी, रुरु, कण्डरिक, जीरु, क्षीरविराली, किट्ठी, कुन्दु, कृष्ण, कडसु, मधु, पयलइ, मधुसिंगी, निरुहा, सर्पसुगन्धा, छिन्नरुहा, बीजरुहा—इनके मूल यावत् वीज में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते हैं।

'१५'२५ लोही आदि वनस्पतिकाय में—

अह भन्ते ! लोहीणीहूथीहूथिभगाअस्सकण्णीसीहकण्णीसीउंढीमुसंढीणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति एवं एत्थ वि दस उद्देसगा जहेव आलुयवग्गो।

—भग० श २३। व २। पृ० ८१४

लोही, नीहू, थीहू, थिभगा, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सीउंढी, मुसुंढी—इनके मूल यावत् वीज में तीन लेश्या तथा २६ विकल्प होते हैं।

'१५'२६ आय आदि वनस्पतिकाय में—

अह भंते ! आयकायकुहुणकुंदुरुक्कउव्वेहलियसफासज्जाछत्तावंसाणियकुमाराणं एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए एवं एत्थ वि मूलादीया दस उद्देसगा निरवसेसं जहा आलुवग्गो।

—भग० श० २३। व ३। पृ० ८१४

आय, काय, कुहुणा, कुन्दुरुक्क, उव्वेहलिय, सफा, सेज्जा, छत्रा, वंशानिका, कुमारी—इनके मूल यावत् बीज में तीन लेश्या तथा छब्बीस विकल्प होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'१५'२७ पाठा आदि वनस्पतिकाय में—

अह भंते! पाढामियवालुंकिमहुररसारायवल्लिपउमामोंढरिदंतिचंडीणं एएसि णं जे जीवा मूल० एवं एत्थ वि मूलादीया दस उद्देसगा आलुयवग्गसरिसा।

—भग० श० २३। व ४। पृ० ८१४

पाठा, मृगवालुंकी, मधुररसा, राजवल्ली, पद्मा, मोढरी, दंती, चण्डी—इनके मूल यावत् वीज में तीन लेश्या तथा छब्बीस विकल्प होते हैं।

'१५'२८ माषपर्णी आदि वनस्पतिकाय में –

अह भंते! मासपण्णीमुग्गपण्णीजीवगसरिसवकरेणुयकाओलिखीरकाकोलि-भंगिणहिंकिमिरासिभद्दमुच्छणंगलइपओयकिणापउलपाढेहरेणुयालोहीणं-एएसि णं जे जीवा मूल० एवं एत्थ वि दस उद्देसगा निरवसेसं आलुयवग्गसरिसा॥

—भग० श० २३। व ५ पृ० ८१४

मासपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवक, सरसव, करेणुक, काकोली, क्षीरकाकोली, भंगी, णही, कृमिराशि, भद्रमुस्ता, लांगली, पउय, किण्णा-पउलय, पाढ, हरेणुका, लोही-- इनके मूल यावत् वीज में तीन लेश्या तथा छब्बीस विकल्प होते हैं।

एवं एत्थ पंचसु वि वग्गेसु पन्नासं उद्देसगा भाणियव्वा सव्वत्थ देवा न उववज्जंति तिन्नि लेस्साओ। सेवं भंते! २ त्ति

—भग० श० २३। पृ० ८१४

उपरोक्त ('१५'२४ से '१५'२८ तक) साधारण वनस्पतिकाय के जीवों में तीन लेश्या होती है ; क्योंकि इनमें देवता उत्पन्न नहीं होते हैं।

'१६ द्वीन्द्रिय में—

(क) तेउवाउवेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं जहा नेरइयाणं।

—पण्ण० प १७। उ २। प्र १३। पृ० ४३८

(ख) (बेइंदिया) तिन्निलेस्साओ।

—जीवा० प्रति० १। सू० २८। पृ० १११

(ग) तेउवाउवेइंदिय तेइंदियचउरिंदियाणं वि तओलेस्सा जहा नेरइयाणं।

—ठाण० स्था ३। उ १। सू० १८१। पृ० २०५

(घ) तेउवाउवेइंदियतेइंदियचउरिंदिया णं तिन्निलेसाओ।

—ठाण० स्था २। उ १। सू० ५१। पृ० १८४

द्वीन्द्रिय में तीन लेश्या होती है।

'१७ त्रीन्द्रिय में—

देखो ऊपर द्वीन्द्रिय के पाठ ('१६) तीन लेश्या होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·१८ चतुरिंद्रिय में—

देखो ऊपर द्वीन्द्रिय के पाठ (·१६) तीन लेश्या होती है।

·१९ तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में—

(क) पंचेन्दियतिरिक्ख जोणियाणं पुच्छा। गोयमा! छल्लेसा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १३ । पृ० ४३८

(ख) पंचिंदियतिरिक्ख जोणियाणं छ लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्ह-लेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

—ठाण० स्था ६ । सू ५०४ । पृ० २७२

(ग) पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं छल्लेस्साओ।

—ठाण० स्था २ । उ १ । सू० ५१ । पृ० १८४

तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के छ लेश्या होती है यथा—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या।

संक्लिष्टलेश्या तीन होती है—

(घ) पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तओलेस्साओ संकिलिट्ठाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा।

— ठाण० स्था ३ । उ १ ।सू १८१ । पृ० २०५

तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीन संक्लिष्ट लेश्या होती है—यथा—कृष्ण, नील, कापोत।

असंक्लिष्ट लेश्या तीन होती है—

(ङ) पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तओलेस्साओ असंकिलिट्ठाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—तेऊलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा।

ठाण० स्था ३ । उ १ । सू. १८१ । पृ० २०५

तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीन असंक्लिष्ट लेश्या होती है यथा—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

·१९·१ तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के विभिन्न भेदों में—

(क) (खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं) एएसि णं भंते! जीवाणं कइ-लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! छल्लेसाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

(ख) (भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं) एवं जहा खहयराणं तहेव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ग) (उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं) जहेव भुयपरिसप्पाणं तहेव।

(घ) (चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं) जहा पक्खीणं।

(ङ) (जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं) जहा भुयपरिसप्पाणं।

जीवा० प्रति ३ । उ १ । सू ९७ । पृ० १४७-४८

जलचर, चतुष्पादस्थलचर, उरपरिसर्प स्थलचर, भुजपरिसर्प स्थलचर, खेचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय में छः लेश्या होती है।

·१९·२ संमुर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय में—

संमुच्छिमपंचेदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! जहा नेरइयाणं।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १३ । पृ० ४३८

संमुर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीन लेश्या होती है—यथा—कृष्ण-नील-कापोत।

·१९·३ जलचर संमुर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय में—

संमुच्छिमपंचेन्दियतिरिक्खजोणिया × × जलयरा—लेस्साओ तिन्नि।

—जीवा० प्रति १ । सू ३५ । पृ० ११३

जलचर संमुर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीन लेश्या होती है।

·१९·४ स्थलचर संमुर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में—

चतुष्पादस्थलचर संमुर्च्छिम में—

(क) चउप्पय थलयर संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया× ×जहा जलयराणं।

—जीवा० प्रति १ । सू ३६ । पृ० ११४

चतुष्पाद स्थलचर संमुर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में तीन लेश्या होती है।

उरपरिसर्प स्थलचर संमुर्च्छिम में—

(ख) उरयपरिसप्पसंमुच्छिमा × × जहा जलयराणं।

—जीवा० प्रति १ । सू ३६ । पृ० ११४

उरपरिसर्प स्थलचर संमुर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में तीन लेश्या होती है।

भुजपरिसर्प स्थलचर संमुर्च्छिम में—

(ग) (भुयपरिसप्प संमुच्छिम थलयरा) जहा जलयराणं।

—जीवा० प्रति १ । सू ३६ । पृ० ११४

भुजपरिसर्प स्थलचर संमुर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में तीन लेश्या होती है।

·१९·५ खेचर संमुर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में—

(संमुच्छिम पंचंदियतिरिक्खजोणिया × × खहयरा) जहा जलयराणं।

—जीवा० प्रति १ । सू ३६ । पृ० ११५

खेचर संमुर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में तीन लेश्या होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·१६·६ गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में—

गब्भवक्कंतिय पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा। गोयमा! छल्लेस्सा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय में ६ लेश्या होती है।

·१६·७ गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय (स्त्री) में—

तिरिक्खजोणिणीणं पुच्छा। गोयमा! छल्लेस्सा एयाओ चेव।

—पण्ण० प० १७। उ २। सू० १३। पृ० ४३८

तिर्यञ्च योनिक स्त्री (गर्भज तिर्यञ्च) में छः लेश्या होती है।

·१६·८ जलचर गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में—

गब्भवक्कंतिय पंचेंदियतिरिक्खजोणिया × जलयरा × × छल्लेस्साओ।

—जीवा० प्रति १। सू. ३८। पृ० ११५

गर्भज जलचर तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में छः लेश्या होती है।

·१६·६ स्थलचर गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में—

चतुष्पाद स्थलचर गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में—

(क) गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया × × थलयरा × चउप्पया × जहा जलयराणं।

—जीवा० प्रति १। सू. ३८। पृ० ११६

चतुष्पाद स्थलचर गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में ६ लेश्या होती है।

उरपरिसर्प स्थलचर गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में—

(ख) गब्भवक्कन्तियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया × × थलयरा × परिसप्पा × उरपरिसप्पा—जहा जलयराणं।

—जीवा० प्रति १। सू० ३८। पृ० ११६

उरपरिसर्प स्थलचर गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय में छः लेश्या होती है।

भुजपरिसर्प स्थलचर गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में—

(ग) गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया × × थलयरा × परिसप्पा × भुयपरिसप्पा—जहा उरपरिसप्पा।

—जीवा० प्रति १। सू. ३८। पृ० ११६

भुजपरिसर्प स्थलचर गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में छः लेश्या होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·१६·१० खेचर गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में—

गब्भवक्कंतिय पंचेंदियतिरिक्खजोणिया ×× खहयरा—जहा जलयराणं।

—जीवा० प्रति० १। सू ३८। पृ० ११६

खेचर गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय में छः लेश्या होती है।

·२० मनुष्य में—

(क) मणूस्सा णं पुच्छा। गोयमा! छल्लेस्सा एयाओ चेव।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

(ख) मणुस्साणं भंते! कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! छ लेस्साओ पन्नत्ताओ? तंजहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

—पण्ण० प १७। उ ६। सू १। पृ० ४५१

(ग) पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं छ लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा, एवं मणुस्सदेवाण वि।

—ठाण० स्था० ६। सू ५०४। पृ० २७२

(घ) पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं छल्लेस्साओ।

—ठाण० स्था १। सू ५१। पृ० १८४

मनुष्य में छ लेश्या होती है।

संक्लिष्ट लेश्या तीन होती हैं।

(ङ) पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेस्साओ संकिलिट्ठाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काऊलेस्सा ×× एवं मणुस्साण वि।

—ठाण० स्था ३। उ १। सू १८१। पृ० २०५

मनुष्य में तीन संक्लिष्ट लेश्या होती है, यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या।

असंक्लिष्ट लेश्या तीन होती है।

(च) पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेस्साओ असंकिलिट्ठाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—तेऊलेस्सा पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सा × एवं मणुस्साण वि।

—ठाण० स्था० ३। उ १। सू १८१। पृ० २०५

मनुष्य में तीन असंक्लिष्ट लेश्या होती है यथा—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

·२०·१ संमुर्च्छिम मनुष्य में—

संमुच्छिममणुस्साणं पुच्छा। गोयमा! जहा नेरइयाणं।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

संमुर्च्छिम मनुष्य में प्रथम की तीन लेश्या होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·२०·२ गर्भज मनुष्य में—

(क) गब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा। गोयमा! छल्लेसाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

(ख) (गब्भवक्कंतियमणुस्सा) ते णं भंते! जीवा किं कण्हलेस्सा जाव अलेस्सा। गोयमा! सव्वेवि।

—जीवा० प्र १। सू ४१। पृ० ११६

गर्भज मनुष्य में ६ लेश्या होती है। अलेशी भी होता है।

·२०·३ गर्भज मनुष्यणी में—

(क) मणुस्सीणं पुच्छा। गोयमा। एवं चेव।

—पण्ण० प० १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

(ख) मणुस्सीणं भंते! पुच्छा। गोयमा! छल्लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हा जाव सुक्का।

—पण्ण० प १७। उ ६। सू १। पृ० ४५१

मनुष्यणी (गर्भज) में छ लेश्या होती है।

·२०·४ कर्मभूमिज मनुष्य तथा मनुष्यणी में :—

कम्मभूमयमणुस्साणं भंते! कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! छ लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हा जाव सुक्का। एवं कम्मभूमयमणुस्सीणवि।

—पण्ण० प १७। उ ६। सू १। पृ० ४५१

कर्मभूमिज मनुष्य में छः लेश्या होती है।

इसी प्रकार कर्मभूमिज मनुष्यणी (स्त्री) में भी छः लेश्या होती है।

·२०·५ कर्मभूमिज मनुष्य ओर मनुष्यणी के विभिन्न भेदों में :—

(क) भरत—ऐरभरत क्षेत्र में (कर्मभूमिज) मनुष्य में

भरहेरवयमणुस्साणं भंते! कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! छल्लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हा जाव सुक्का। एवं मणुस्सीणवि।

—पण्ण० प १७। उ ६। सू १। पृ० ४५१

भरत—ऐरभरत क्षेत्र के मनुष्य में छः लेश्या होती है। इसी प्रकार मनुष्यणी (स्त्री) में भी छः लेश्या होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) महाविदेह क्षेत्र (कर्मभूमिज) के मनुष्य में :—

पुव्वविदेहे अवरविदेहे कम्मभूमयमणुस्साणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ, गोयमा ! छल्लेस्साओ, तं जहा—कण्हा जाव सुक्का। एवं मणुस्सीणवि।

—पण्ण० प १७ । उ ६ । सू १ । पृ० ४५१

पूर्व और पश्चिम महाविदेह के कर्मभूमिज मनुष्य में छः लेश्या होती है। इसी प्रकार मनुष्यणी (स्त्री) में भी छः लेश्या होती है।

·२०·६ अकर्मभूमिज मनुष्य तथा मनुष्यणी में :—

अकम्मभूमयमणुस्साणं पुच्छा। गोयमा! चत्तारि लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हा जाव तेऊलेस्सा। एवं अकम्मभूमयमणुस्सीणवि।

—पण्ण० प १७ । उ ६ । प्र १ । पृ० ४५१

अकर्मभूमिज मनुष्य में चार लेश्या होती है। इसी प्रकार मनुष्यणी (स्त्री) में भी चार लेश्या होती है।

·२०·७ अकर्मभूमिज मनुष्य और मनुष्यणी के विभिन्न भेदों में :—

(क) हेमवय—हैरण्यवय अकर्मभूमिज मनुष्य में :—

एवं हेमवयएरन्नवयअकम्मभूमयमणुस्साणं मणुस्सीण य कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! चत्तारि, तंजहा—कण्हा जाव तेऊलेस्सा।

—पण्ण० प १७ । उ ६ । प्र १ । पृ० ४५१

हैमवय हैरण्यवय अकर्मभूमिज मनुष्य तथा मनुष्यणी में चार लेश्या होती है।

(ख) हरिवास—रम्यकवास अकर्मभूमिज मनुष्य में :—

हरिवासरम्मयअकम्मभूमयमणुस्साणं मणुस्सीण य पुच्छा। गोयमा! चत्तारि, तंजहा—कण्हा जाव तेऊलेस्सा।

—पण्ण० प १७ । उ ६ । प्र १ । पृ० ४५१

हरिवास—रम्यकवास अकर्मभूमिज मनुष्य—मनुष्यणी में चार लेश्या होती है।

(ग) देवकुरु—उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य में :—

देवकुरु उत्तरकुरु अकम्मभूमयमणुस्सा एवं चेव। एएसिं चेव मणुस्सीणं एवं चेव।

—पण्ण० प १७ । उ ६ । प्र १ । पृ० ४५१

देवकुरु—उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य में चार लेश्या होती है। इसी प्रकार मनुष्यणी में भी चार लेश्या होती है।

(घ) धातकीखण्ड और पुष्कर द्वीप के अकर्मभूमिज मनुष्य में—

धायइखंडपुरिमद्धे वि एवं चेव, पच्छिमद्धे वि। एवं पुक्खरदीवे वि भाणियव्वं।

—पण्ण० प १७ । उ ६ । प्र १ । पृ० ४५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार धातकीखण्ड के पूर्वार्द्ध तथा पश्चिमार्ध के हेमवय, हैरण्यवय, हरिवास, रम्यकवास, देवकुरु, उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य तथा मनुष्यणी में चार लेश्या होती है।

इसी प्रकार पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्द्ध तथा पश्चिमार्ध के हेमवय, हैरण्यवय, हरिवास, रम्यकवास, देवकुरु, अकर्मभूमिज मनुष्य तथा मनुष्यणी में चार लेश्या होती है।

·२०·८ अन्तर्द्वीपज मनुष्य और मनुष्यणी में :—

एवं अंतरदीवगमणुस्साणं, मणुस्सीण वि।

—पण्ण० प १७। उ ६। प्र १। पृ० ४५१

इसी प्रकार अंतर्द्वीपज मनुष्य तथा मनुष्यणी में चार लेश्या होती है।

·२१ देव में :—

(क) देवाणं पुच्छा। गोयमा! छ एयाओ चेव।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४५८

(ख) पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं छल्लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा। एवं मणुस्सदेवाणवि।

—ठाण० स्था ६। सू० ५०४। पृ० २७२

(ग) (देवा) छल्लेस्साओ।

—जीवा० प्र १। सू ४२। पृ० ११७

देव में छः लेश्या होती है।

·२१·१ देवी में—

देवीणं पुच्छा। गोयमा! चत्तारि—कण्हलेस्सा जाव तेऊलेस्सा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

देवी में चार लेश्या होती है।

·२२ भवनपति देव में—

(क) भवणवासीणं भंते! देवाणं पुच्छा। गोयमा! एवं चेव

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

(ख) असुरकुमाराणं चत्तारि लेस्सा पन्नत्ता, तंजहा—कण्हलेस्सा-नीललेस्सा-काऊलेस्सा-तेऊलेस्सा, एवं जाव थणियकुमाराणं।

—ठाण० स्था ४। उ ३। सू ३९५। पृ० २४०

(ग) भवणवइवाणमंतरपुढविआउवणस्सइकाइयाणं च चत्तारि लेस्साओ।

—ठाणा० स्था १। सू ५१। पृ० १८४

असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार—दसों भवनपति देवों में चार लेश्या होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(घ) तीन संक्लिष्ट लेश्या होती है।

असुरकुमाराणं तओलेस्साओ संकिलिट्ठाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काऊलेस्सा। एवं जाव थणियकुमाराणं।

—ठाण० स्था ३। उ १। सू १८१। पृ० २०५

असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार—दसों भवनपति देवों में तीन संक्लिष्ट लेश्या होती है।

·२२·१ भवनपति देवी में—

एवं भवणवासिणीणवि।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

भवनपति देवी में चार लेश्या होती है।

·२२·२ भवनपति देव के विभिन्न भेदों में—

(क) दीवकुमाराणं भंते! कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! चत्तारि लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा जाव तेऊलेस्सा।

—भग० श १६। उ ११। पृ० ७५३

(ख) उदहिकुमाराणं भंते! ×× एवं चेव।

—भग० श १६। उ १२। पृ० ७५३

(ग) एवं दिसाकुमारावि।

—भग० श १६। उ १३। पृ० ७५३

(घ) एवं थणियकुमारावि।

—भग० श० १६। उ १४। पृ० ७५३

(ङ) नागकुमाराणं भंते! ×× जहा सोलसमसए दीवकुमारुद्देसए तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव इड्ढीति।

—भग० श १७। उ १३। पृ० ७६१

(च) सुवण्णकुमाराणं भंते! ×× एवं चेव।

—भग० श० १७। उ १४। पृ० ७६१

(छ) विज्जुकुमाराणं भंते! ×× एवं चेव।

—भग० श १७। उ १५। पृ० ७६१

(ज) वाउकुमाराणं भंते! ×× एवं चेव।

—भग० श १७। उ १६। पृ० ७६१

(झ) अग्गिकुमाराणं भंते! ×× एवं चेव।

—भग० श १७। उ १७। पृ० ७६१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वीपकुमार में चार लेश्या होती है— यथा—कृष्ण, नील, कपोत, तेजो। इसी प्रकार नागकुमार यावत् स्तनितकुमार देव में चार लेश्या होती है।

(ञ) (चउसट्ठीए णं भंते। असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि) एवं लेसासु वि, नवरं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! चत्तारि, तंजहा—कण्हा, नीला, काऊ, तेऊलेस्सा।

—भग० श १। उ ५। प्र० १९० की टीका

असुरकुमारों सम्बन्धी अलग पाठ टीका ही में मिला है। असुरकुमार में चार लेश्या होती है।

·२३ वाणव्यंतर देव में—

(क) वाणमंतरदेवाणं पुच्छा। गोयमा! एवं चेव।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ ४३८

(ख) वाणमंतराणं सव्वेसिं जहा असुरकुमाराणं।

—ठाणा० स्था ४। उ ३। सूत्र ३९५। पृ० २४०

(ग) भवणवइवाणमंतरपुढविआउवणस्सइकाइयाणं चत्तारि लेस्साओ।

—ठाण० स्था १। सू ५१। पृ० १८४

(घ) वाणमंतराणं ×× एवं जहा सोलसमसए दीवकुमारुद्देसए।

—भग० श० १६। उ १०। पृ० ७६०

वाणव्यंतर देव में चार लेश्या होती है।

तीन संक्लिष्ट लेश्या होती है।

(ङ) वाणमंतराणं जहा असुरकुमाराणं।

—ठाण० स्था ३। उ १। सू १८१। पृ० २०१

वाणव्यंतर देव में तीन संक्लिष्ट लेश्या होती है।

·२३·१ वाणव्यंतर देवी में—

एवं वाणमंतरीण वि।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

वाणव्यंतर देवी में चार लेश्या होती है।

·२४ ज्योतिषी देव में—

(क) जोइसियाणं पुच्छा! गोयमा! एगा तेऊलेस्सा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

(ख) जोइसियाणं एगा तेऊलेस्सा।

—ठाण० स्था १। सू ५१। १८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्योतिषी देवों में एक तेजो लेश्या होती है।

'२४'१ ज्योतिषी देवी में—

एवं जोइसिणीण वि।

- पण्ण० पद १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

ज्योतिषी देवी में एक तेजो लेश्या होती है।

'२५ वैमानिक देव में—

(क) वेमाणियाणं पुच्छा। गोयमा! तिन्नि लेस्सा पन्नत्ता, तंजहा—तेऊ-लेस्सा पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

(ख) वेमाणियाणं तओ लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—तेऊपम्हसुक्कलेस्सा।

—ठाण० स्था ३। उ १। सू १८१। पृ० २०५

(ग) वेमाणियाणं तिन्नि उवरिमलेस्साओ।

—ठाण० स्था १। सू ५१। पृ० १८४

वैमानिक देव में तीन लेश्या होती है, यथा—तेजो पद्म शुक्ल लेश्या।

'२५'१ वैमानिक देवी में—

वेमाणिणीणं पुच्छा। गोयमा! एगा तेऊलेस्सा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १३। पृ० ४३८

वैमानिक देवी में एक तेजो लेश्या होती है।

'२५'२ वैमानिक देव के विभिन्न भेदों में—

(क) सौधर्म—ईशान देव में

(१) सोहम्मीसाणदेवाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! एगा तेऊ-लेस्सा पन्नत्ता।

—जीवा० प्रति ३। सू २१५। पृ० २३६

(२) दोसु कप्पेसु देवा तेऊलेस्सा पन्नत्ता, तंजहा—सोहम्मे चेव ईसाणे चेव।

—ठाण० स्था २। उ ४। सू ११५। पृ० २०२

सौधर्म तथा ईशान देवलोक के देव में एक तेजो लेश्या होती है।

(ख) सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म में—

सणंकुमारमाहिंदेसु एगा पम्हलेस्सा एवं बम्हलोगेवि पम्हा।

—जीवा० प्रति ३। सू २१५। पृ० २३६

सनत्कुमार—माहेन्द्र—ब्रह्म देव में एक पद्म लेश्या होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ग) ब्रह्मलोक के बाद के देव में (लांतक से नव ग्रैवेयक देव में)।

सेसेसु एगा सुक्कलेस्सा।

—जीवा० प्रति ३। सू २१५। पृ० २३६

लांतक से नव ग्रैवेयक देव में एक शुक्ल लेश्या होती है।

(घ) अनुत्तरोपपातिक देव में—

अणुत्तरोववाइयाणं एगा परमसुक्कलेस्सा।

—जीवा० प्रति ३। सू २१५। पृ० २३६

अनुत्तरोपपातिक देव में एक परम शुक्ल लेश्या होती है।

·२६ पंचेन्द्रिय में—

(पंचेंदिया) छल्लेस्साओ।

—भग० श २०। उ १। प्र ४। पृ० ७६०

(औधिक) पंचेन्द्रिय के छः लेश्या होती है।

समुच्चय गाथा

कण्हानीलाकाऊतेऊलेस्सा य भवणवंतरिया।
जोइससोहम्मीसाणे तेऊलेस्सा मुणेयव्वा॥
कप्पेसणकुमारे माहिंदे चेव बंभलोए य।
एएसु पम्हलेस्सा तेणं परं सुक्कलेस्साओ॥
पुढवीआउवणस्सइ बायर पत्तेय लेस्स चत्तारि।
गब्भयतिरयनरेसु छल्लेस्सा तिण्णि सेसाणं॥

—संग्रह गाथा

—भग० श १। उ २। प्र ६७ टीका से

भवनपति तथा वाणव्यंतर देव में चार लेश्या, ज्योतिष-सौधर्म-ईशान देव में तेजो लेश्या, सनत्कुमार-माहिन्द्र-ब्रह्म देव में पद्म लेश्या, लातंक से अनुत्तरोपपातिक देव में शुक्ललेश्या, पृथ्वीकाय-अप्काय, बादर प्रत्येक शरीरी वनस्पतिकाय में चार लेश्या, गर्भज तिर्यंच-मनुष्य में छः लेश्या, शेष जीवों में तीन लेश्या होती है।

·२७ गुणस्थान के अनुसार जीवों में—

(क) प्रथम गुणस्थान के जीवों में—छः लेश्या होती है।

(ख) द्वितीय गुणस्थान के जीवों में—छः लेश्या होती है।

(ग) तृतीय गुणस्थान के जीवों में—छः लेश्या होती है।

(घ) चतुर्थ गुणस्थान के जीवों में—छः लेश्या होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ङ) पंचम गुणस्थान के जीवों में—छः लेश्या होती है।

(च) षष्ठ गुणस्थान के जीवों में—छः लेश्या होती है।

(छ) सप्तम गुणस्थान के जीवों में—अन्तिम तीन लेश्या होती है।

(ज) अष्टम गुणस्थान के जीवों में—एक शुक्ल लेश्या होती है।

(झ) नवम गुणस्थान के जीवों में—एक शुक्ल लेश्या होती है।

(ञ) दशम गुणस्थान के जीवों में—

(नियंठे णं भंते ! पुच्छा । गोयमा ! सलेस्से होज्जा नो अलेस्से होज्जा, जइ सलेस्से होज्जा से णं भंते ! कइसु लेस्सासु होज्जा ? गोयमा ! एगाए सुक्कलेस्साए होज्जा ।) सुहुमसंपराए जहा नियंठे ।

—भग० श२५। उ ७। प्र ५१। पृ० ८९०

दशवें (सूक्ष्मसंपराय) गुणस्थान जीव में एक शुक्ललेश्या होती है।

ट—ग्यारहवें गुणस्थान के जीवों में :—

नियंठे णं भंते ! पुच्छा । गोयमा ! सलेस्से होज्जा, णो अलेस्से होज्जा, जइ सलेस्से होज्जा से णं भंते ! कइसु लेस्सासु होज्जा ? गोयमा ! एगाए सुक्कलेस्साए होज्जा !

—भग० श २५। उ ६। प्र ९१। पृ० ८८२

ग्यारहवें गुणस्थान के जीव में एक शुक्ललेश्या होती है।

ठ—बारहवें गुणस्थान के जीवों में :—

एक शुक्ललेश्या होती है।

ड—तेरहवें गुणस्थान के जीवों में :—

सिणाए पुच्छा, गोयमा ! सलेस्से वा होज्जा, अलेस्से वा होज्जा, जइ सलेस्से होज्जा ? से णं भंते ! कइसु लेस्सासु होज्जा ? गोयमा ! एगाए परमसुक्कलेस्साए होज्जा ।

—भग० श २५। उ ६। प्र ९२। पृ० ८८२

तेरहवें गुणस्थान में एक परम शुक्ललेश्या होती है।

ढ—चौदहवें गुणस्थान के जीवों में (देखो पाठ ऊपर) अलेशी होते हैं।

·२८ संयतियों में :—

क—पुलाक में :—

पुलाए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा ? गोयमा ! सलेस्से होज्जा, णो अलेस्से होज्जा, जइ सलेस्से होज्जा से णं भंते ! कइसु लेस्सासु होज्जा ? गोयमा ! तिसु विसुद्धलेस्सासु होज्जा, तंजहा, तेऊलेस्साए पम्हलेस्साए सुक्कलेस्साए।

—भग० श २५। उ ६। प्र ८९। पृ० ८८२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुलाक में तीन लेश्या होती है—यथा, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या ।

ख—वकुस में :—

एवं बउसस्सवि ।

—भग० श २५ । उ ६ । प्र ८६ । पृ० ८८२

बकुस में पुलाक की तरह तीन लेश्या होती है ।

ग—प्रतिसेवना कुशील में :—

एवं पडिसेवणाकुसीलेवि ।

—भग० श २५ । उ ६ । प्र ८६ । पृ० ८८२

प्रतिसेवना कुशील में भी पुलाक की तरह तीन लेश्या होती है ।

नोट :—तत्त्वार्थ के भाष्य में वकुस और प्रतिसेवना कुशील में ६ लेश्या बताई है ।

बकुश प्रतिसेवनाकुशीलयोः सर्वाः षडपि ।

—तत्त्व० अ ६ । सू ४६ । भाष्य । पृ० ४३५

घ—कषाय कुशील में :—

कसायकुसीले पुच्छा । गोयमा! सलेस्से होज्जा णो अलेस्से होज्जा, जइ सलेस्से होज्जा से णं भंते ! कइसु लेस्सासु होज्जा ? गोयमा ! छसु लेस्सासु होज्जा, तंजहा, कण्हलेस्साए जाव सुक्कलेस्साए ।

—भग० श २५ । उ ६ । प्र ९० । पृ० ८८२

कषाय कुशील में छः लेश्या होती है ।

नोट :—तत्त्वार्थ भाष्य में कषाय कुशील में तीन शुभलेश्या बताई है ।

—तत्त्व० अ ६ । सूत्र ४६ । भाष्य । पृ० ४३५

ङ—निर्ग्रन्थ में :—

नियंठे णं भंते ! पुच्छा । गोयमा ! सलेस्से होज्जा, णो अलेस्से होज्जा । जइ सलेस्से होज्जा, से णं भंते ! कइसु लेस्सासु होज्जा ? गोयमा ! एगाए सुक्कलेस्साए होज्जा ।

—भग० श २५ । उ ६ । प्र ९१ । पृ० ८८२

निर्ग्रंथ में एक लेश्या होती है ।

च—स्नातक में :—

सिणाए पुच्छा । गोयमा ! सलेस्से वा होज्जा, अलेस्से वा होज्जा, जइ सलेस्से होज्जा से णं भंते ! कइसु लेस्सासु होज्जा ? गोयमा ! एगाए परमसुक्क-लेस्साए होज्जा ।

—भग० श २५ । उ ६ । प्र ९२ । ८८२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नातक सलेशी तथा अलेशी दोनो होते हैं जो सलेशी होते हैं उनमें एक परम शुक्ल-लेश्या होती है।

छ—सामायिक चारित्र वाले संयति में :—

सामाइयसंजए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा ? गोयमा ! सलेस्से होज्जा जहा कसायकुसीले।

—भग० श २५। उ ७। प्र ४६। पृ० ८६०

सामायिक चारित्र वाले संयति में छः लेश्या होती है।

ज—छेदोपस्थानीय चारित्र वाले संयति में :—

एवं छेदोवट्ठावणिएवि।

—भग० श २५। उ ७। प्र ४६। पृ० ८६०

इसी प्रकार छेदोपस्थानीय चारित्र वाले संयति में छः लेश्या होती है।

झ—परिहारविशुद्धिक चारित्र वाले संयति में :—

परिहारविशुद्धिए जहा पुलाए।

—भग० श २५। उ ७। प्र ४६। पृ० ८६०

परिहारविशुद्धिक चारित्र वाले संयति में तीन लेश्या होती है।

ञ—सूक्ष्म संपराय वाले संयति में :—

सुहुमसंपराए जहा नियंठे।

—भग० श २५। उ ७। प्र ४६। पृ० ८६०

सूक्ष्म संपराय चारित्र वाले संयति में एक शुक्ललेश्या होती है।

ट—यथाख्यात चारित्र वाले संयति में :—

अहक्खाए जहा सिणाए नवरं जइ सलेस्से होज्जा, एगाए सुक्कलेस्साए होज्जा।

—भग० श २५। उ ७। प्र ४६। पृ० ८६०

यथाख्यात चारित्र वाले सलेशी तथा अलेशी (स्नातक की तरह) दोनों होते हैं जो सलेशी होते हैं उनके एक शुक्ललेश्या होती है।

'२६—विशिष्ट जीवों में :—

१—अश्रुत्वा केवली होनेवाले जीव के अवधि ज्ञान के प्राप्त करने की अवस्था में :—

असोच्चा णं भंते ×× (विब्भंगे अन्नाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ) से णं भंते! कइसु लेस्सासु होज्जा ? गोयमा ! तिसु विशुद्धलेस्सासु होज्जा, तंजहा, तेऊलेस्साए, पम्हलेस्साए, सुक्कलेस्साए।

—भग० श ६। उ ३१। प्र १२। पृ० ५७६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अश्रुत्वा केवली होने वाले जीव के विभंग अज्ञान की प्राप्ति के बाद मिथ्यात्व के पर्याय क्षीण होते-होते, सम्यग्दर्शन के पर्याय बढ़ते-बढ़ते विभंग अज्ञान सम्यक्त्वयुक्त होता है तथा अति शीघ्र अवधिज्ञान रूप परिवर्तित होता है। उस अवधिज्ञानी जीव के तीन विशुद्ध लेश्या होती है।

२—श्रुत्वा केवली होने वाले जीव के अवधिज्ञान के प्राप्त करने की अवस्था में :—

(सोच्चा णं भंते × × से णं ते णं ओहीनाणेणं समुप्पन्नेणं × ×) से णं भंते ! कइसु लेस्सासु होज्जा ? गोयमा ! छसु लेस्सासु होज्जा। तंजहा, कण्हलेस्साए जाव सुक्कलेस्साए।

—भग० श ९। उ ३१। प्र ३५। पृ० ५८०

श्रुत्वा केवली होने वाले जीव के अवधिज्ञान की प्राप्ति होने के बाद उस अवधिज्ञानी जीव के छः लेश्या होती है।

टीकाकार ने इसका इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

"यद्यपि भावलेश्यासु प्रशस्तास्वेव तिसृष्ववधिज्ञानं लभते तथाऽपि द्रव्यलेश्याः प्रतीत्य षट्स्वपि लेश्यासु लभते सम्यक्त्वश्रुतवत्"। यदाह—'सम्मत्तसुय सव्वासु लब्भइ' त्ति तल्लाभे चासौ षट्स्वपि भवतीत्युच्यते इति।

—भग० श ९। उ ३१ पर टीका

यद्यपि अवधिज्ञान की प्राप्ति तीन शुभलेश्या में होती है परन्तु द्रव्यलेश्या की अपेक्षा सम्यक्त्व श्रुत की तरह छओं लेश्या में अवधिज्ञान होता है। जैसा कहा है—सम्यक्त्वश्रुत छओं लेश्या में प्राप्त होता है।

·५४ विभिन्न जीव और लेश्या स्थिति

·५४.१ नारकी की लेश्या स्थिति :—

दस वाससहस्साइं, काऊए ठिई जहन्निया होइ।
तिण्णुदही पलियवमसंखभागं च उक्कोसा॥
तिण्णुदही पलियवमसंखभागो जहन्न नीलठिई।
दस उदही पलिओवममसंखभागं च उक्कोसा॥
दस उदही पलिओवममसंखभागं जहन्निया होइ।
तेत्तीससागराइं उक्कोसा होइ किण्हाए लेसाए॥
एसा नेरइयाणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ।

—उत्त० अ ३४। गा ४१-४४। पृ० १०४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कापोतलेश्या की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित तीन सागरोपम की होती है।

नीललेश्या की स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित तीन सागरोपम की, उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दस सागरोपम की होती है।

कृष्णलेश्या की स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दस सागरोपम की, उत्कृष्ट स्थिति तेंतीस सागरोपम की होती है।

(उपरोक्त) लेश्याओं की यह स्थिति नारकी की कही गई है।

'५४'२ तिर्यंच की लेश्या स्थिति :—

अंतोमुहुत्तमद्धं लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ।
तिरियाण नराणं वा वज्जित्ता केवलं लेसं॥

—उत्त० अ ३४ । गा ४५ । पृ० १०४७

तिर्यंच की सर्व लेश्याओं की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

'५४'३ मनुष्य की लेश्या की स्थिति :—

क—पाँच लेश्या की स्थिति—

अंतोमुहुत्तमद्धं लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ।
तिरियाण नराणं वा वज्जित्ता केवल लेसं॥

—उत्त० अ ३४ । गा ४५ । पृ० १०४७

मनुष्यों में शुक्ललेश्या को छोड़कर अवशिष्ट सब लेश्याओं की जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

ख—शुक्ललेश्या की स्थिति :—

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडी ओ।
नवहिं वरिसेहिं ऊणा, नायव्वा सुक्कलेसाए॥

—उत्त० अ ३४ । गा ४६ । पृ० १०४७

शुक्ललेश्या की स्थिति—जघन्य अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट नौ वर्ष न्यून एक करोड़ पूर्व की है।

'५४'४ देव की लेश्या स्थिति :—

तेण परं वोच्छामि, लेसाण ठिई उ देवाणं॥
दस वाससहस्साइं, किण्हाए ठिई जहन्निया होइ।
पलियमसंखिज्जइमो, उक्कोसा होइ किण्हाए॥
जा किण्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं नीलाए, पलियमसंखं च उक्कोसा॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जा नीलाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं काऊए, पलियमसंखं च उक्कोसा॥
तेण परं वोच्छामि, तेऊलेसा जहा सुरगणाणं।
भवणवइवाणमंतर जोइस वेमाणियाणं च॥
पलिओवमं जहन्ना, उक्कोसा सागरा उ दुण्हहिया।
पलियमसंखेज्जेणं, होइस भागेण तेऊए॥
दसवाससहस्साइं, तेऊए ठिई जहन्निया होइ।
दुन्नुदही पलिओवमअसंखभागं च उक्कोसा॥
जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं पम्हाए, दस मुहुत्ताऽहियाइं उक्कोसा॥
जा पम्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं सुक्काए, तेत्तीसमुहुत्तमब्भहिया॥

—उत्त० अ ३४। गा ४७-५५। पृ० १०४८

देवों की लेश्या की स्थिति में कृष्णलेश्या की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की होती है। नीललेश्या की जघन्य स्थिति तो कृष्ण लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति से एक समय अधिक है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है।

कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति, नीललेश्या की उत्कृष्ट स्थिति से एक समय अधिक और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की होती है।

तेजोलेश्या की स्थिति जघन्य एक पल्योपम और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की (वैमानिक की) होती है।

तेजोलेश्या की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष (भवनपति और व्यन्तर देवों की अपेक्षा) और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की होती है।

जो उत्कृष्ट स्थिति तेजोलेश्या की है उससे एक समय अधिक पद्मलेश्या की जघन्य स्थिति होती है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस सागरोपम की है।

जो उत्कृष्ट स्थिति पद्मलेश्या की है, उससे एक समय अधिक शुक्ललेश्या की जघन्य स्थिति होती है, और शुक्ललेश्या की स्थिति उत्कृष्ट तेंतीस सागरोपम की होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५५ लेश्या और गर्भ-उत्पत्ति

कण्हलेसे णं भंते ! मणुस्से कण्हलेसं गब्भं जणेज्जा ? हंता गोयमा ! जणेज्जा। कण्हलेसे मणुस्से नीललेसं गब्भं जणेज्जा ? हंता गोयमा ! जणेज्जा, जाव सुक्कलेसं गब्भं जणेज्जा। नीललेसे मणुस्से कण्हलेसं गब्भं जणेज्जा ? हंता गोयमा ! जणेज्जा, एवं नीललेसे मणुस्से जाव सुक्कलेसं गब्भं जणेज्जा, एवं काऊलेसेणं छप्पि आलावगा भाणियव्वा। तेऊलेसाण वि पम्हलेसाण वि सुक्कलेसाण वि, एवं छत्तीसं आलावगा भाणियव्वा। कण्हलेसा इत्थिया कण्हलेसं गब्भं जणेज्जा ? हंता गोयमा ! जणेज्जा, एवं एए वि छत्तीसं आलावगा भाणियव्वा। कण्हलेसे णं भंते ! मणुस्से कण्हलेसाए इत्थियाए कण्हलेसं गब्भं जणेज्जा ? हंता गोयमा ! जणेज्जा, एवं एए छत्तीसं आलावगा। कम्मभूमगकण्हलेसे णं भंते ! मणुस्से कण्हलेसाए इत्थियाए कण्हलेसं गब्भं जणेज्जा ? हंता गोयमा ! जणेज्जा, एवं एए छत्तीसं आलावगा। अकम्मभूमयकण्हलेसे मणुस्से अकम्मभूमयकण्हलेसाए इत्थियाए अकम्मभूमयकण्हलेसं गब्भं जणेज्जा ? हंता गोयमा ! जणेज्जा, नवरं चउसु लेसासु सोलस आलावगा, एवं अंतरदीवगाण वि। —भग० श १६। उ २। प्रज्ञापणा की भोलावणा पृ० ७८१

—पण्ण० प १७। उ ६। सू ६७। पृ० ४५२

१—कृष्णलेशी मनुष्य कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी गर्भ को उत्पन्न करता है।

२—नीललेशी मनुष्य कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी गर्भ को उत्पन्न करता है।

३—कापोतलेशी मनुष्य कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी गर्भ को उत्पन्न करता है।

४—तेजोलेशी मनुष्य कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी गर्भ को उत्पन्न करता है।

५ - पद्मलेशी मनुष्य कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी गर्भ को उत्पन्न करता है।

६—शुक्ललेशी मनुष्य कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी गर्भ को उत्पन्न करता है।

७ से १२ – इसी प्रकार कृष्णलेशी स्त्री यावत् शुक्ललेशी स्त्री कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी गर्भ को उत्पन्न करती है।

१३ से १८—कृष्णलेशी मनुष्य यावत् शुक्ललेशी मनुष्य कृष्णलेशी स्त्री में यावत् शुक्ललेशी स्त्री में कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी गर्भ को उत्पन्न करता है।

१६ से २४—कर्मभूमिज कृष्णलेशी मनुष्य यावत् शुक्ललेशी मनुष्य कृष्णलेशी स्त्री यावत् शुक्ललेशी स्त्री में कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी गर्भ उत्पन्न करता है।

२५ से २८—अकर्मभूमिज कृष्णलेशी मनुष्य यावत् तेजोलेशी मनुष्य अकर्मभूमिज कृष्णलेशी स्त्री यावत् तेजोलेशी स्त्री कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी गर्भ उत्पन्न करता है।

२६ से ३२—इसी प्रकार अन्तर्द्वीपज मनुष्यों का जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५६ जीव और लेश्या समपद

१—नारकी और लेश्या समपद :—

(क) नेरइया णं भंते ! सव्वे समलेस्सा ? गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं जाव नो सव्वे समलेस्सा ? गोयमा ! नेरइया दुविहा पण्णत्ता । तंजहा पुव्वोववन्नगा य, पच्छोववन्नगा य, तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं विसुद्धलेस्सतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं अविसुद्धलेस्सतरागा, से तेणट्ठेणं ।

—भग० श १ । उ २ । प्र ७५-७६ पृ० ३६१

(ख) एवं जहेव वन्नेणं भणिया तहेव लेस्सासु विशुद्धलेसतरागा अविशुद्धलेसतरागा य भाणियव्वा ।

—पण्ण० प १७ । उ १ । सू ३ । पृ० ४३५

नारकी दो तरह के होते हैं यथा—१ पूर्वोपपन्नक, २ पश्चादुपपन्नक । उनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं वे विशुद्धलेश्या वाले होते हैं, तथा जो पश्चादुपपन्नक हैं वे अविशुद्धलेश्या वाले होते हैं । अतः नारकी समलेश्या वाले नहीं होते हैं।

२—पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय तथा मनुष्य और लेश्या समपद :—

क—पुढविकाइयाणं आहारकम्मवन्न लेस्सा जहा नेरइयाणं × × जहा पुढविकाइया तहा जाव चउरिंदिया । पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया । × × मणुस्सा जहा नेरइया ।

—भग० श १ । उ २ । प्र ८४, ८६, ६०, ६३ । पृ० ३६२

ख—पुढविकाइया आहारकम्मवन्नलेस्साहिं जहा नेरइया × एवं जाव चउरिंदिया । पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया जहा नेरइया । मणुस्सा सव्वे णो समाहारा । सेसं जहा नेरइयाणं ।

—पण्ण० प १७ । उ १ । सू ८-६ । पृ० ४३६

पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य-नारकी की तरह समलेश्या वाले नहीं होते हैं।

३—देव और लेश्या समपद :—

१—असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार देव में—

क—(असुर कुमारा) एवं वन्नलेस्साए पुच्छा ! तत्थ णं जे ते पूव्वोववन्नगा तेणं अविशुद्धवन्नतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं विशुद्धवन्नतरागा, से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-असुरकुमाराणं सव्वे णो समवन्ना। एवं लेस्साएवि ××× एवं जाव थणियकुमारा।

—पण्ण० प १७ । उ १ । सू ७ । पृ० ४३५

(ख) (असुरकुमारा) जहा नेरइया तहा भाणियव्वा, नवरं-कम्म-वण्ण-लेस्साओ परिवण्णेयव्वाओ पूव्वोववण्णा महाकम्मतरा, अविसुद्धवण्णतरा, अविसुद्धलेसतरा, पच्छोववण्णा पसत्था, सेसं तहेव। एवं जाव—थणियकुमाराणं।

—भग० श १ । उ २ । प्र ८३ । पृ० ३९२

असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार दसों भवनवासी देव—समलेश्या वाले नहीं हैं क्योंकि उनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं वे अविशुद्धलेश्यावाले होते हैं, तथा जो पश्चादुपपन्नक हैं वे विशुद्धलेश्या वाले होते हैं। अतः असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार—दसों भवनवासी देव समलेश्या वाले नहीं होते हैं।

२—वाणव्यंतर, ज्योतिषी, वैमानिक देव में :—

क—वाणमंतरजोइसवेमाणिया जहा असुरकुमारा।

—भग० श १ । उ २ । प्र ९६ । पृ० ३९३

ख—वाणमंतराणं जहा असुरकुमाराणं। एवं जोइसियवेमाणियाणवि।

पण्ण० प० १७ । ३१ । सू० १० । पृ० ४३७

वाणव्यंतर—ज्योतिष-वैमानिक देव भवनवासी देवों की तरह समलेश्यावाले नहीं होते हैं।

·५७ लेश्या और जीव का उत्पत्ति-मरण

·५७·१ लेश्या-परिणति तथा जीव का उत्पत्ति-मरण :—

लेसाहिं सव्वाहिं, पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
न हु कस्सइ उववाओ, परेभवे अत्थि जीवस्स॥
लेस्साहिं सव्वाहिं चरिमे, समयम्मि परिणयाहिं तु।
न हु कस्सइ उववाओ, परेभवे होइ जीवस्स॥
अंतमुहुत्तम्मि गए, अंतमुहुत्तम्मि सेसए चेव।
लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छन्ति परलोयं॥

—उत्त० अ ३४ । गा ५८-६० । पृ० १०४८

सभी लेश्याओं की प्रथम समय की परिणति में किसी भी जीव की परभव में उत्पत्ति नहीं होती। सभी लेश्याओं की अन्तिम समय की परिणति में किसी भी जीव की परभव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में उत्पत्ति नहीं होती। लेश्या की परिणति के बाद अन्तर्मुहूर्त बीतने पर और अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जीव परलोक में जाता है।

'५७'२ मरण काल में लेश्या-ग्रहण और उत्पत्ति के समय की लेश्या

जीवे णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किं लेसेसु उववज्जइ ? गोयमा ! जल्लेसाइं दव्वाइं परिआइत्ता कालं करेइ, तल्लेसेसु उववज्जइ, तं जहा—कण्हलेसेसु वा नीललेसेसु वा काऊलेसेसु वा एवं जस्स जा लेस्सा सा तस्स भाणियव्वा।

जाव-जीवे णं भंते ! जे भविए जोइसिएसु उववज्जित्तए पुच्छा ? गोयमा ! जल्लेसाइं दव्वाइं परिआइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ, तंजहा—तेऊलेसेसु।

जीवे णं भंते ! जे भविए वेमाणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किं लेसेसु उववज्जइ ? गोयमा ! जल्लेसाइं दव्वाइं परिआइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ, तंजहा—तेऊलेसेसु वा, पम्हलेसेसु वा, सुक्कलेसेसु वा।

—भग० श ३ । उ ४ । प्र १७-१९ । पृ० ४५६ ।

जो जीव नारकियों में उत्पन्न होने योग्य है वह जीव जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके काल करता है उसी लेश्या में जाकर उत्पन्न होता है, यथा—कृष्ण लेश्या में, नील लेश्या में अथवा कापोत लेश्या में। यावत् दण्डक के ज्योतिषी जीवों के पहले तक ऐसा ही कहना। अर्थात् जिसके जो लेश्या हो उसके वह लेश्या कहनी।

जो जीव ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने योग्य है वह जीव जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके काल करता है उसी लेश्या में जाकर उत्पन्न होता है ; अर्थात् तेजोलेश्या में। जो जीव वैमाणिक देवों में उत्पन्न होने योग्य है वह जीव जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके काल करता है उसी लेश्या में जाकर उत्पन्न होता है ; यथा तेजोलेश्या में, पद्मलेश्या में अथवा शुक्ललेश्या में, अर्थात् जिसके जो लेश्या हो उसके वह लेश्या कहनी।

दण्डक के अन्तिम सूत्र को दिखाने के निमित्त पूर्वोक्त सूत्र (जाव—जीवे णं भंते इत्यादि) कहा गया है। टीकाकार का कथन है कि यदि ऐसा ही था तो फिर केवल वैमानिक का सूत्र ही कहना चाहिये था फिर ज्योतिषी तथा वैमानिक के सूत्र अलग-अलग क्यों कहे ? वैमानिक और ज्योतिषियों की लेश्या उत्तम होती है यह दिखाने के निमित्त ही दोनों के सूत्र अलग-अलग कहे गए हैं। अथवा ऐसा करने का कारण सूत्रों की विचित्र गति हो सकती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५७'३ मरण की लेश्या से अतिक्रान्त करने पर :

अणगारे णं भंते! भावियप्पा चरमं देवावासं वीइक्कंते परमं देवावासं असंपत्ते एत्थ णं अंतरा कालं करेज्जा, तस्स णं भंते! कहिं गइ कहिं उववाए पन्नत्ते? गोयमा! जे से तत्थ परियस्सओ (परिस्सऊ) तल्लेसा देवावासा, तहिं तस्स गइ, तहिं तस्स उववाए पन्नत्ते। से य तत्थ गए विराहेज्जा, कम्मलेस्सामेव पडिवडइ, से य तत्थ गए णो विराहेज्जा, तामेव लेस्सं उवज्जिता णं विहरइ। अणगारे णं भंते! भावियप्पा चरमं असुरकुमारा वासं वीइक्कंते परमं असुरकुमारा० एवं चेव, एवं जाव थणियकुमारावासं, जोइसियावासं एवं वेमाणियावासं जाव विहरइ।

—भग० श १४ । उ १ । प्र २, ३ । पृ० ६६५

भवितात्मा अणगार (साधु) जिसने चरम देवावास का उल्लंघन किया हो तथा अभी तक परम अर्थात् अगले देवावास को प्राप्त नहीं हुआ हो वह साधु यदि इस बीच में मृत्यु को प्राप्त हो तो उसकी कहाँ गति होगी तथा वह कहाँ उत्पन्न होगा ?

टीकाकार प्रश्न को समझाते हुए कहते हैं—उत्तरोत्तर प्रशस्त अध्यवसाय स्थान को प्राप्त होनेवाला अणगार जो चरम—सौधर्मादि देवलोक के इस तरफ वर्तमान देवावास की स्थिति आदि बंधने योग्य अध्यवसाय स्थान को पार कर गया हो तथा परम—ऊपर स्थित सनत्कुमारादि देवलोक की स्थिति आदि बंधने योग्य अध्यवसाय को प्राप्त नहीं हुआ हो उस अवसर में यदि मरण को प्राप्त हो तो उसकी कहाँ गति होगी तथा वह कहाँ उत्पन्न होगा ?

चरम देवावास तथा परम देवावास के पास जहाँ उस लेश्या वाले देवावास हैं वहाँ उसकी गति होगी तथा वहाँ उसका उत्पाद होगा।

टीकाकार इस उत्तर को समझाते हुए कहते हैं—सौधर्मादि देवलोक तथा सनत्कुमारादि देवलोक के पास ईशानादि देवलोक में जिस लेश्या में साधु मरण को प्राप्त होता है उस लेश्यावाले देवलोक में उसकी गति तथा उसका उत्पाद होता है।

वह साधु वहाँ जाकर यदि अपनी पूर्व की लेश्या की विराधना करता है तो वह कर्मलेश्या से पतित होता है (टीकाकार यहाँ कर्मलेश्या से भावलेश्या का अर्थ ग्रहण करते हैं) तथा वहाँ जाकर यदि वह लेश्या की विराधना नहीं करता है तो वह उसी लेश्या का आश्रय करके विहरता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५८ किसी एक योनि से स्व/पर योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में कितनी लेश्या* :—

·५८·१ रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·१·१ पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१ : पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्ता (त्त) असन्नि पंचिंदियतिरिक्ख जोणिए णं भंते ! जे भविए रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु उववज्जित्तए × × × तेसि णं भंते ! जीवाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! तिन्नि लेस्साओ पन्नताओ । तं जहा कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा)** उनमें कृष्ण, नील तथा कापोत तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ७, १२ । पृ० ८१५

---

* इस विवेचन में निम्नलिखित नौ गमकों की अपेक्षा से वर्णन किया गया है :—

१—उत्पन्न होने योग्य जीव की औघिक स्थिति तथा उत्पन्न होने योग्य जीवस्थान की औघिक स्थिति,

२—उत्पन्न होने योग्य जीव की औघिक स्थिति तथा उत्पन्न होने योग्य जीवस्थान की जघन्यकाल स्थिति,

३—उत्पन्न होने योग्य जीव की औघिक स्थिति तथा उत्पन्न होने योग्य जीवस्थान की उत्कृष्टकालस्थिति,

४—उत्पन्न होने योग्य जीव की जघन्यकालस्थिति तथा उत्पन्न होने योग्य जीवस्थान की औघिक स्थिति,

५—उत्पन्न होने योग्य जीव की जघन्यकालस्थिति तथा उत्पन्न होने योग्य जीवस्थान की जघन्यकालस्थिति,

६—उत्पन्न होने योग्य जीव की जघन्यस्थिति तथा उत्पन्न होने योग्य जीवस्थान की उत्कृष्टकालस्थिति,

७—उत्पन्न होने योग्य जीव की उत्कृष्टकालस्थिति तथा उत्पन्न होने योग्य जीवनस्थान की औघिक स्थिति,

८—उत्पन्न होने योग्य जीव की उत्कृष्टकालस्थिति तथा उत्पन्न होने योग्य जीवस्थान की जघन्यकालस्थिति,

९—उत्पन्न होने योग्य जीव की उत्कृष्टकालस्थिति तथा उत्पन्न होने योग्य जीवस्थान की उत्कृष्टकालस्थिति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गमक—२ : पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से जघन्यस्थितिवाले रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्ता असन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए जहन्नकालट्ठिईएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते ! ××× एवं सच्चेव वत्तव्वया निरवसेसा भाणियव्वा**) उनमें कृष्ण, नील तथा कापोत तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र २८, २६ । पृ० ८१६

गमक ३— : पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से उत्कृष्टस्थितिवाले रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्ताअसन्निपंचिंदियतिरिक्ख जोणिए णं भते ! जे भविए उक्कोसकालट्ठिईएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववजित्तए ××× ते णं भंते ! जीवा० अवसेसं तं चेव, जाव—अनुबंधो**) उनमें कृष्ण, नील तथा कापोत तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १ । प्र ३१, ३२ । पृ० ८१६

गमक—४ : जघन्यस्थितिवाले पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जहन्नकालट्ठिईयपज्जत्ताअसन्निपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते ! ××× सेसं तं चेव**) उनमें कृष्ण, नील तथा कापोत तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ३४, ३५ । पृ० ८१७

गमक—५ : जघन्यस्थितिवाले पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से जघन्यस्थिति-वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जहन्नकालट्ठिईयपज्जत्त असन्नि पंचिंदियतिरिक्ख जोणिए णं भंते ! जे भविए जहन्नकालट्ठिईएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते ! जीवा० सेसं तं चेव**) उनमें कृष्ण, नील तथा कापोत तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ३७, ३८ । पृ० ८१७

गमक—६ : जघन्यस्थितिवाले पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से उत्कृष्टस्थिति-वाले रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जहन्नकालट्ठिईय-पज्जत्ता० जाव—तिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए उक्कोसकालट्ठिईएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते ! जीवा० अवसेसं तं चेव**) उनमें कृष्ण, नील तथा कापोत तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ४०, ४१ । पृ० ८१७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गमक—७ : उत्कृष्टस्थितिवाले पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से रत्नप्रभा-पृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्तअसन्निपंचिंदियतिरिक्ख जोणिए णं भंते! जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते! जीवा० × × × अवसेसं जहेव ओहियगमएणं तहेव अणुगंतव्वं**) उनमें कृष्ण, नील तथा कापोत तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १। प्र ४३, ४४। पृ० ८१७-१८

गमक—८ : उत्कृष्टस्थितिवाले पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से जघन्यस्थितिवाले रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्त० तिरिक्ख जोणिए णं भंते! जे भविए जहन्नकालट्ठिईएसु रयण० जाव—उववज्जित्तए × × × ते णं भंते! जीवा० × × × सेसं तं चेव, जहा सत्तमगमए**) उनमें कृष्ण, नील तथा कापोत तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १। प्र ४६, ४७। पृ० ८१८

गमक—६ : उत्कृष्टस्थितिवाले पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से उत्कृष्टस्थितिवाले रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्त—जाव—तिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए उक्कोसकालट्ठिईएसु रयण० जाव—उववज्जित्तए × × × ते णं भंते! जीवा० × × × सेसं जहा सत्तमगमए**) उनमें कृष्ण, नील तथा कापोत तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १। प्र ४६, ५०। पृ० ८१८

·५८·१·२ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से रत्नप्रभा-पृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदियतिरिक्ख जोणिए णं भंते! जे भविए रयणप्पभपुढविनेरइएसु उववज्जित्तए × × × तेसि णं भंते! जीवाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! छल्लेस्साओ पन्नत्ताओ। तं जहा—कण्हलेस्सा, जाव—सुक्कलेस्सा**) उनमें कृष्ण यावत् शुक्ल छः लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १। प्र ५५, ५६। पृ० ८१६

गमक—२ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से जघन्य-कालस्थितिवाले रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तसंखेज्ज०**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाव—जे भविए जहन्नकाल० ××× ते णं भंते ! जीवा एवं सो चेव पढमो गमओ निरवसेसो भाणियव्वो) उनमें कृष्ण यावत् शुक्ल छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ६१, ६२ । पृ० ८१६

गमक—३ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से उत्कृष्ट-स्थितिवाले रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (सो चेव उक्कोस-कालट्ठिईएसु उववन्नो ××× अवसेसो परिमाणादीओ भवाएसपज्जवसाणो सो चेव पढमगमओ णेयव्वो) उनमें कृष्ण यावत् शुक्ल छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ६३ । पृ० ८१६

गमक—४ : जघन्यस्थितिवाले पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (जहन्नकालट्ठिईय-पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए रयणप्पभपुढवि० जाव—उववज्जित्तए ××× ते णं भंते ××× लेस्साओ तिन्नि आदिल्लाओ) उनमें प्रथम की तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ६४, ६५ । पृ० ८१६-२०

गमक—५ : जघन्यस्थितिवाले पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से जघन्यस्थितिवाले रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो ××× ते णं भंते ! एवं सो चेव चउत्थो गमओ निरवसेसो भाणियव्वो) उनमें प्रथम की तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ६६ । पृ० ८२०

गमक—६ : जघन्यस्थितिवाले पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से उत्कृष्ट स्थितिवाले रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो ××× ते णं भंते ! एवं सो चेव चउत्थो गमओ निरवसेसो भाणियव्वो) उनमें प्रथम की तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ६७ । पृ० ८२०

गमक – ७ : उत्कृष्टस्थितिवाले पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (उक्कोसकालट्ठिईय-पज्जत्तसंखेज्जवासाउय० जाव— तिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए रयणप्पभा-पुढविनेरइएसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते ! जीवा० अवसेसो परिमाणादीओ भवाएसपज्जवसाणो एएसिं चेव पढमगमओ णेयव्वो) उनमें कृष्ण यावत् शुक्ल छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ६८, ६९ । पृ० ८२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गमक—८ : उत्कृष्टस्थितिवाले पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से जघन्यस्थितिवाले रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं। (**सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो × × × ते णं भंते! जीवा० सो चेव सत्तमो गमओ निरवसेसो भाणियव्वो**) उनमें कृष्ण यावत् शुक्ल छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १। प्र ७०, ७१। पृ० ८२०

गमक—९ : उत्कृष्टस्थितिवाले पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से उत्कृष्टस्थितिवाले रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्त० जाव—तिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए उक्कोसकालट्ठिईय० जाव—उववज्जित्तए × × × ते णं भंते! जीवा० सो चेव सत्तमगमओ निरवसेसो भाणियव्वो**) उनमें कृष्ण यावत् शुक्ल छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १। प्र ७२, ७३। पृ० ८२०-२१

·५८·१·३ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्त संखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते! जे भविए रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते! एवं सेसं जहा सन्निपंचिंदयतिरिक्खजोणियाणं—जाव—'भवाएसो' त्ति। ग० १। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो—एस (सा) चेव वत्तव्वया। ग० २। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो—एस चेव वत्तव्वया। ग० ३। सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ जाओ—एस चेव वत्तव्वया। ग० ४। सो चेव जहन्नकालट्ठिइएसु उववन्नो—एस चेव वत्तव्या चउत्थगमग सरिसा णेयव्वा। ग० ५। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उवन्नो—एस चेव गमगो। ग० ६। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, सो चेव पढमगमओ णेयव्वो। ग० ७। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो, सच्चेव सत्तमगमगवत्तव्वया। ग० ८। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो, सच्चेव सत्तमगमगवत्तव्वया। ग० ९**) उनमें नव ही गमकों में छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १। प्र ९१-१००। पृ० ८२३-२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'२ शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'२'१ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्त संखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदियतिरिक्ख जोणिए णं भंते ! जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइएसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते ! जीवा × × × एवं जहेव रयणप्पभाए उववज्जंत-(गम) गस्स लद्धी सच्चेव निरवसेसा भाणियव्वा × × × एवं रयणप्पभपुढविगमग सरिसा णव वि गमगा भाणियव्वा ×××**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में आदि की तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र० ७४-७५ । पृ० ८२१

'५८'२'२ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्त संखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइएसु जाव—उववज्जित्तए × × × ते णं भंते ! सो चेव रयणप्पभपुढविगमओ णेयव्वो × × × एवं एसा ओहिएसु तिसु वि गमएसु मणूसस्स लद्धी × × × । सो चेव अप्पणाजहन्नकालट्ठिईओ जाओ तस्स वि तिसु वि गमएसु एस चेव लद्धी × × × । सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ तस्स वि तिसु वि गमएसु × × × सेसं जहा पढमगमए**) उनमें नव ही गमकों में छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र १०१-१०४ । पृ० ८२४

'५८'३ वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'३'१ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदियतिरिक्ख जोणिए णं भंते ! जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइएसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते ! जीवा० × × × एवं जहेव रयणप्पभाए उववज्जंतग (मग) स्स लद्धी सच्चेव निरवसेसा भाणियव्वा—जाव 'भवाएसो' त्ति।**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

××× **एवं रयणप्पभपुढविगमसरिसा णव वि गमगा भाणियव्वा ××× एवं जाव—'छट्ठपुढवि' त्ति०)** उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में आदि की तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं। ('५८'१'२)।

—भग० श २४ | उ १ | प्र ७४, ७५ | पृ० ८२१

'५८'३'२ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से बालुकाप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइएसु जाव०—उववज्जित्तए ××× ते णं भंते !० सो चेव रयणप्पभपुढविगमओ णेयव्वो ××× सेसं तं चेव, जाव—'भवाएसो' त्ति। ××× एवं एसा ओहिएसु तिसु गमएसु मणुसस्स लद्धी। ×××।—ग० १-३। सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि तिसुवि गमएसु एस चेव लद्धी। ××× सेसं जहा ओहियाणं। ×××।—ग० ४-६। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ। तस्स वि तिसु वि गमएसु ××× सेसं जहा पढमगमए। ××× ग० ७-६। एवं जाव—छट्ठपुढवी**) उनमें नव ही गमकों में छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ | उ १ | प्र १०१-१०४ | पृ० ८२४

'५८'४ पंकप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'४'१ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से पंकप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से पंकप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'३'१) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में आदि की तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ | उ १ | प्र ७४-७५ | पृ० ८२१

'५८'४'२ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से पंकप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से पंकप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'३'२) उनमें नौ गमकों ही में छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ | उ १ | प्र १०१-१०४ | पृ० ८२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५८·५ धूमप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·५·१ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से धूमप्रभा पृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से धूमप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ·५८·३·१) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में आदि की तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छः लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ७४, ७५ । पृ० ८२१

·५८·५·२ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से धूमप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से धूमप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ·५८·३·२) उनमें नव गमकों ही में छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र १०१-१०४ । पृ० ८२४

·५८·६ तमप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·६·१ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से तमप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से तमप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ·५८·३·१) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में आदि की तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र ७४, ७५ । पृ० ८२१

·५८·६·२ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से तमप्रभापृथ्वी नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ :—पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से तमप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ·५८·३·२) उनमें नौ गमकों ही में छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ १ । प्र १०१-१०४ । पृ० ८२४

·५८·७ तमतमाप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·७·१ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से तमतमाप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तसंखेज्जवासाउय० जाव—तिरिक्ख-**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जोणिए णं भंते ! जे भविए अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइएसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते ! जीवा० एवं जहेव रयणप्पभाए णव गमगा लद्धी वि सच्चेव × × × सेसं तं चेव, जाव—'अनुबंधो'त्ति। × × ×।—प्र ७६,७७। ग० १। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो० सच्चेव वत्तव्वया जाव—'भवाएसो' त्ति × × × प्र ७८। ग० २। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो० सच्चेव लद्धी जाव—'अणुबंधो'त्ति × × ×।—प्र० ७६। ग० ३। सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ जाओ० सच्चेव रयणप्पभपुढविजहन्नकालट्ठिईयवत्तव्वया भाणियव्वा, जाव 'भवाएसो'त्ति ×××—प्र ८०। ग० ४। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो० एवं सो चेव चउत्थो गमओ निरवसेसो भाणियव्वो, जाव—'कालाएसो'त्ति—प्र ८१। ग० ५। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो० सच्चेव लद्धी जाव—'अणुबंधो'त्ति ×××—प्र ८२। ग० ६। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जहन्नेणं × × × ते णं भंते !० अवसेसा सच्चेव सत्तमपुढविपढमगमवत्तव्वया भाणियव्वा, जाव—'भवाएसो'त्ति × × × सेसं तं चेव—प्र ८४। ग० ७। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो० सच्चेव लद्धी × × × सत्तमगमगसरिसो—प्र ८५। ग० ८। सो चेव उक्कोसकालट्ठिएसु उववन्नो० एस चेव लद्धी जाव—'अणुबंधो'त्ति—प्र ८६। ग० ९) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में आदि की तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं ('५८'१'२)।

—भग० श २४। उ १। प्र ७६-८६। पृ० ८२१-२२

'५८'७'२ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से तमतमाप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से तमतमाप्रभापृथ्वी के नारकी में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए अहेसत्तमाए पुढवि (वीए) नेरइएसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते ! जीवा० × × × अवसेसो सो चेव सक्करप्पभापुढविगमओ णेयव्वो × × × सेसं तं चेव जाव—'अणुबंधो'त्ति × × ×। ग० १। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो—एस चेव वत्तव्वया × × ×। ग० २। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो—एस चेव वत्तव्वया × × ×। ग० ३। सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि तिसु वि गमएसु एस चेव वत्तव्वया × × ×। ग० ४-६। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि तिसु वि गमएसु एस चेव वत्तव्वया × × ×। ग० ७-९**) उनमें नौ गमकों ही में छ लेश्या होती हैं ('५८'२'२)।

—भग० श २४। उ १। प्र १०५-११०। पृ० ८२४-२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'८ असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य अन्य गति के जीवों में :—

'५८'८'१ पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तअसन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते ! जीवा० ? एवं रयणप्पभागमगसरिसा णव वि गमा भाणियव्वा × × × अवसेसं तं चेव**) उनमें नव गमकों ही में आदि की तीन लेश्या होती हैं ('५८'१'१ ग० १-६)

—भग० श २४ । उ २ । प्र २, ३ । पृ० ८२५

'५८'८'२ असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में—

गमक—१-६ : असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असंखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते ! जीवा—पुच्छा । × × × चत्तारि लेस्सा आदिल्लाओ × × × । ग० १ । सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो—एस चेव वत्तव्वया × × × । ग० २ । सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो × × ×—एस चेव वत्तव्वया × × × सेसं तं चेव । ग० ३ । सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ जाओ × × × ते णं भंते ! अवसेसं तं चेव जाव—'भवाएसो'त्ति × × × । ग० ४ । सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो—एस चेव वत्तव्वया × × × । ग० ५ । सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो × × × सेसं तं चेव × × × । ग० ६ । सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, सो चेव पढम गमगो भाणियव्वो × × × । ग० ७ । सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया × × × । ग० ८ । सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया × × × । ग० ६**) उनमें नौ गमकों ही में आदि की चार लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ २ । प्र ५-१५ । पृ० ८२५।२७

'५८'८'३ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तसंखेज्जवासाउय सन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते !**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवा० ××× एवं एएसिं रयणप्पभपुढविगमगसरिसा नव गमगा णेयव्वा। नवरं जाहे अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ भवइ, ताहे तिसु वि गमएसु इमं णाणत्तं —चत्तारि लेस्साओ) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में प्रथम की चार लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं ('५८'१'२)।

—भग० २४। उ २। प्र १६,१७। पृ० ८२७

'५८'८'४ असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (असंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए ××× एवं असंखेज्जवासाउयतिरिक्खजोणियसरिसा आदिल्ला तिन्नि गमगा णेयव्वा ×××—प्र २०। ग० १-३। सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि जहन्नकालट्ठिइयतिरिक्खजोणिय सरिसा तिन्नि गमगा भाणियव्वा ××× सेसं तं चेव—प्र० २१। ग० ४-६। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि ते चेव पच्छिल्लगा तिन्नि गमगा भाणियव्वा—प्र० २२। ग० ७-९) उनमें नौ गमकों ही में आदि की चार लेश्या होती हैं ('५८'८'२)।

—भग० श २४। उ २। प्र २०-२२। पृ० ८२७

'५८'८'५ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते! जीवा० ? एवं जहेव एएसिं रयणप्पभाए उववज्जमाणाणं णव गमगा तहेव इह वि णव गमगा भाणियव्वा ××× सेसं तं चेव) उनमें नौ गमकों ही में छ लेश्या होती हैं। ('५८'१'३)।

—भग० श २४। उ २। प्र २४, २५। पृ० ८२७-२८

'५८'९ नागकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

५८'९'१ पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से नागकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से नागकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (नागकुमारा णं भंते! ××× जइ तिरिक्ख० ? एवं जहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असुरकुमाराणं वत्तव्वया तहा एएसिं वि जाव—'असन्नि'त्ति) उनमें नौ गमकों ही में प्रथम की तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ ३ । प्र १-२ । पृ० ८२८

'५८'६'२ असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से नागकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से नागकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असंखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए नागकुमारेसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते! जीवा० अवसेसो सो चेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स गमगो भाणियव्वो जाव—'भवाएसो'त्ति ×××—प्र० ५। ग० १। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया ×××—प्र० ६। ग० २। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो, तस्स वि एस चेव वत्तव्वया ××× सेसं तं चेव जाव—'भवाएसो'ति—प्र० ७। ग० ३। सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि तिसु वि गमएसु जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स जहन्नकालट्ठिइयस्स तहेव निरवसेसं—प्र० ८। ग० ४-६। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि तहेव तिन्नि गमगा जहा असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स ××× सेसं तं चेव—प्र० ६। ग० ७-६)** उनमें नव गमकों में हीं प्रथम की चार लेश्या होती हैं ('५८'८'२)

—भग० श २४ । उ ३ । प्र ४-६ । पृ० ८२८

'५८'६'३ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से नागकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से नागकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तसंखेज्जवासाउय० जाव—जे भविए नागकुमारेसु उववज्जित्तए ××× एवं जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स वत्तव्वया तहेव इह वि णवसु वि गमएसु ××× सेसं तं चेव)** उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में प्रथम की चार लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ ३ । प्र ११ । पृ० ८२८

'५८'६'४ असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से नागकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में : —

गमक—१-६ : असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से नागकुमार देवों में होने उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते! जे भविए**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नागकुमारेसु उववज्जित्तए ××× एवं जहेव असंखेज्जवासाउयाणं तिरिक्खजोणियाणं नागकुमारेसु आदिल्ला तिन्नि गमगा तहेव इमस्स वि ××× सेसं तं चेव—प्र १३। ग० १-३। सो चेव अप्पणा जन्नकालट्ठिईओ जाओ, तस्स तिसु वि गमएसु जहा तस्स चेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स तहेव निरवसेसं—प्र १४। ग० ४-६। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिओजाओ, तस्स तिसु वि गमएसु जहा तस्स चेव उक्कोसकालट्ठिइयस्स असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स—××× सेसं तं चेव—प्र १५। ग० ७-९) उनमें नौ गमकों ही में प्रथम की चार लेश्या होती हैं ('५८'६'२—ग० १-३। '५८'८'४—ग०४-६)।

—भग० श २४। उ ३। प्र १३-१५। पृ० ८२८-२६

'५८'६'५ पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से नागकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६: पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य से नागकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते! जे भविए नागकुमारेसु उववज्जित्तए ××× एवं जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स सच्चेव लद्धी निरवसेसा नवसु गमएसु ×××**) उनमें नौ गमकों में ही छ लेश्या होती हैं '५८'८'५—'५८'१'३)।

—भग० श २४। उ ३। प्र १७। पृ० ६२६

५८'६'१ सुवर्णकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य नागकुमार देवों की तरह जो पाँच प्रकार के जीव हैं (**अवसेसा सुवन्नकुमाराइं जाव—थणियकुमारा एए अट्ठ वि उद्देसगा जहेव नागकुमारा तहेव निरवसेसा भाणियव्वा**) उन पाँचों प्रकार के जीवों के सम्बन्ध में नौ गमकों के लिये जैसा नागकुमार उद्देशक में कहा वैसा कहना। इन आठों देवों के सम्बन्ध में प्रत्येक के लिए एक-एक उद्देशक कहना।

—भग० श २४। उ ४-११। पृ० ८२६

'५८'१० पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'१०'१ स्व योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पृथ्वीकायिक जीवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पुढविक्काइए णं भंते! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते! जीवा० ××× चत्तारि लेस्साओ ××× —प्र ३-४। ग० १। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो ×××—एवं चेव वत्तव्वया निरवसेसा—प्र ६। ग० २। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो, ××× सेसं तं चेव, जाव—'अनुबंधो'त्ति ×××—प्र ७। ग० ५। सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ जाओ, सो चेव पढमिल्लओ गमओ**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाणियव्वो। णवरं लेस्साओ तिन्नि × × ×—प्र ८। ग० ४। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो सच्चेव चउत्थगमग वत्तव्वया भाणियव्वा—प्र ९। ग० ५। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया –× × ×—प्र १०। ग० ६। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, एवं तइयगमगसरिसो निरवसेसो भाणियव्वो ×××—प्र ११। ग०७। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो ××× एवं जहा सत्तमगमगो जाव—'भवाएसो' × × ×—प्र १२। ग० ८। सो चेव उक्कोस-कालट्ठिईएसु उववन्नो × × × एस चेव सत्तमगमग वत्तव्वया भाणियव्वा जाव—'भवाएसो'त्ति × × ×—प्र० १३। ग० ९) उनमें प्रथम के तीन गमकों में चार लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में चार लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १२। प्र ३-१३। पृ० ८२९-३१

'५८'१०'२ अप्कायिक योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ :—अप्कायिक योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**आउक्काइए णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए × × × एवं पुढविक्काइयगमग सरिसा नव गमगा भाणियव्वा × × ×**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में चार लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में चार लेश्या होती हैं। ('५८'१०'१)

—भग० श २४। उ १२। प्र १५। पृ० ८३१

'५८'१०'३ अग्निकायिक योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ :—अग्निकायिक योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जइ तेउक्काइएहिंतो उववज्जंति० तेउक्काइयाण वि एस चेव वत्तव्वया। नवरं नवसु वि गमएसु तिन्नि लेस्साओ × × ×**) उनमें नव गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १२। प्र १६। पृ० ८३१

'५८'१०'४ वायुकायिक योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : वायुकायिक योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जइ वाउक्काइएहिंतो० ? वाउक्काइयाण वि एवं चेव णव गमगा जहेव तेउक्काइयाणं × × ×**) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं ('५८'१०'३)।

—भग० श २४। उ १२। प्र १७। पृ० ८३१

'५८'१०'५ वनस्पतिकायिक योनि से पृथ्वीकायिक जीवों से उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : वनस्पतिकायिक योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य जो जीव हैं (**जइ वणस्सइकाइएहिंतो उववज्जंति० ? वणस्सइकाइयाणं आउ-काइयगमगसरिसा णव गमगा भाणियव्वा**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में चार लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में चार लेश्या होती हैं ('५८'१०'२—'५८'१०'१)।

—भग० श २४। उ १२। प्र १८। पृ० ८३१

'५८'१०'६ द्वीन्द्रिय से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : द्वीन्द्रिय से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**बेइंदिए णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते ! जीवा० × × × तिन्नि लेस्साओ × × ×—प्र २०-२१। ग० १। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो एस चेव वत्तव्वया सव्वा—प्र० २२। ग० २। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो एस चेव बेइंदियस्स लद्धी —प्र० २३। ग० ३। सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि एस चेव वत्तव्वया तिसु वि गमएसु × × × —प्र० २४। ग० ४-६। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, एयस्स वि ओहियगमगसरिसा तिन्नि गमगा भाणियव्वा × × × —प्र० २५। ग० ७-९**) उनमें नौ गमकों ही में तीन लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १२। प्र २०—२५। पृ० ८३२

'५८'१०'७ त्रीन्द्रिय से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : त्रीन्द्रिय से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जइ तेइंदिएहिंतो उववज्जंति० एवं चेव नव गमगा भाणियव्वा × × ×**) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं (५८'१०'६)

—भग० २४। उ १२। प्र २६। पृ० ८३३

'५८'१०'८ चतुरिंद्रिय से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : चतुरिंद्रिय से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जइ चउरिंदिएहिंतो उववज्जंति० एवं चेव चउरिंदियाण वि नव गमगा भाणियव्वा × × ×**) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं ('५८'१०'६)

—भग० श २४। उ १२। प्र २७। पृ० ८३३

'५८'१०'९ असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में : —

गमक—१-९ : असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइ-**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते ! जीवा० एवं जहेव बेइंदियस्स ओहियगमए लद्धी तहेव ×××—सेसं तं चेव) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं ।

—भग० श २४ । उ १२ । प्र ३० । पृ० ८३३

·५८·१०·१० संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जइ संखेज्जवासाउय (सन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए०) ××× ते णं भंते ! जीवा० ××× एवं जहा रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स सन्निस्स तहेव इह वि ××× लद्धी से आदिल्लएसु तिसु वि गमएसु एस चेव । मज्झिल्लएसु तिसु वि गमएसु एस चेव । नवरं ××× तिन्नि लेस्साओ । ××× पच्छिल्लएसु तिसु वि गमएसु जहेव पढमगमए ×××**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छः लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं (·५८·१·२) ।

—भग० श २४ । उ १२ । प्र ३३, ३४ । पृ० ८३४

·५८·१०·११ असंज्ञी मनुष्य से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—४-६ :—असंज्ञी मनुष्य से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु० से णं भंते ! ××× एवं जहा असन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स जहन्नकालट्ठिईयस्स तिन्नि गमगा तहा एयस्स वि ओहिया तिन्नि गमगा भाणियव्वा तहेव निरवसेसं, सेसा छ न भण्णंति**) उनमें तीन ही गमक होते हैं तथा इन तीनों गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं ।

—भग० श २४ । उ १२ । प्र ३६ । पृ० ८३४

·५८·१०·१२ (पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले) संज्ञी मनुष्य से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : (पर्याप्त संख्यात् वर्ष की आयुवाले) संज्ञी मनुष्य से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**सन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते ! जीवा० एवं जहेव रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स तहेव तिसु वि गमएसु लद्धी । ××× मज्झिल्लएसु तिसु गमएसु लद्धी जहेव सन्निपंचिंदियस्स, सेसं तं चेव निरवसेसं, पच्छिल्लगा तिन्नि गमगा जहा एयस्स चेव ओहिया गमगा**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं ।

—भग० श २४ । उ १२ । प्र ३९, ४० । पृ० ८३४-३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'१०'१३ असुरकुमार देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : असुरकुमार देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असुरकुमारे णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए—प्र ४३। तेसि णं भंते ! जीवाणं × × × लेस्साओ चत्तारि × × × एवं णव वि गमा णेयव्वा —प्र ४७**) उनमें नौ गमकों में ही चार लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १२। प्र ४३,४७। पृ० ८३५

'५८'१०'१४ नागकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : नागकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**नागकुमारे णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु० एस चेव वत्तव्वया जाव—'भवाएसो'त्ति ! × × × एवं णव वि गमगा असुरकुमारगमगसरिसा × × × एवं जाव—थणियकुमाराणं**) उनमें नौ गमकों में ही चार लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १२। प्र० ४८। पृ० ८३६

'५८'१०'१५ वानव्यंतर देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : वानव्यंतर देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**वाणमंतर देवे णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु० एएसिं वि असुरकुमार-गमगसरिसा णव गमगा भाणियव्वा × × × सेसं तहेव**) उनमें नौ गमकों में ही चार लेश्या होती हैं।

—भग० श २४। उ १२। प्र ५०। पृ० ८३६

'५८'१०'१६ ज्योतिषी देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : ज्योतिषी देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जोइसियदेवे णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु लद्धी जहा असुरकुमाराणं। नवरं एगा तेऊलेस्सा पन्नत्ता। × × × एवं सेसा अट्ठ गमगा भाणियव्वा**) उनमें नौ गमकों में ही एक तेजोलेश्या होती है।

—भग० श २४। उ १२। प्र ५२। पृ० ८३६

'५८'१०'१७ सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**सोहम्मदेवे णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

××× एवं जहा जोइसियस्स गमगो। ××× एवं सेसा वि अट्ठ गमगा भाणियव्वा) उनमें नौ गमकों में ही एक तेजोलेश्या होती है।

—भग० श २४। उ १२। प्र ५५। पृ० ८३६

·५८·१०·१८ ईशान कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : ईशान कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**ईसाणदेवे णं भंते! जे भविए० ××× एवं ईसाणदेवेण वि णव गमगा भाणियव्वा ××× सेसं तं चेव**) उनमें नौ गमकों में ही एक तेजोलेश्या होती है।

—भग० श २४। उ १२। प्र ५५। पृ० ८३६

·५८·११ अप्कायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·११·१ से ·१८ स्व-पर योनि से अप्कायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : स्व-पर योनि से अप्कायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**आउक्काइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति? एवं जहेव पुढविक्काइयउद्देसए, जाव ××× पुढविक्काइए णं भंते! जे भविए आउक्काइएसु उववज्जित्तए ××× एवं पुढविक्काइयउद्देसगसरिसो भाणियव्वो ××× सेसं तं चेव**) उनके सम्बन्ध में लेश्या की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक उद्देशक (·५८·१०·१-·१८) में जैसा कहा वैसा ही कहना।

—भग० श २४। उ १३। प्र १। पृ० ८३७

·५८·१२ अग्निकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·१२·१-·१२ स्व-पर योनि से अग्निकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : स्व-पर योनि से अग्निकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**तेउक्काइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति? एवं जहेव पुढविक्काइयउद्देसगसरिसो उद्देसो भाणियव्वो। नवरं ××× देवेहिंतो ण उववज्जंति, सेसं तं चेव**) उनके सम्बन्ध में लेश्या की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक जीवों के उद्देशक (·५८·१०·१-·१२) में जैसा कहा वैसा ही कहना।

—भग० श २४। उ १४। प्र १। पृ० ८३७

·५८·१३ वायुकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·१३·१-·१२ स्व-पर योनि से वायुकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : स्व-पर योनि से वायुकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**वाउक्काइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति? एवं जहेव तेउक्काइयउद्देसओ**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहेव) उनके सम्बन्ध में लेश्या की अपेक्षा से अग्निकायिक उद्देशक ('५८'१२) में जैसा कहा वैसा ही कहना।

—भग० श २४ । उ १५ । प्र १ । पृ० ८३७

'५८'१४ वनस्पतिकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'१४'१-'१८ स्व-पर योनि से वनस्पतिकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : स्व-पर योनि से वनस्पतिकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**वणस्सइकाइया णं भंते ! × × × एवं पुढविकाइयसरिसो उद्देसो**) उनके संबंध में लेश्या की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक उद्देशक ('५८'१०'१-'१८) में जैसा कहा वैसा ही कहना।

—भग० श २४ । उ १६ । प्र १ । पृ० ८३७

'५८'१५ द्वीन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'१५'१-'१२ स्व-पर योनि से द्वीन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक— १-६ : स्व-पर योनि से द्वीन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**बेइंदियाणं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ? जाव—पुढविकाइए णं भंते ! जे भविए बेइंदिएसु उववज्जित्तए × × × सच्चेव पुढविकाइयस्स लद्धी × × × देवेसु न चेव उववज्जंति**) उनके सम्बन्ध में लेश्या की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक उद्देशक ('५८'१०'१-'१२) में जैसा कहा वैसा ही कहना।

—भग० श २४ । उ १७ । प्र १ । पृ० ८३७

'५८'१६ त्रीन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'१६'१-'१२ स्व-पर योनि से त्रीन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : स्व-पर योनि से त्रीन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**तेइंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ? एवं तेइंदियाणं जहेव बेइंदियाणं उद्देसो**) उनके सम्बन्ध में लेश्या की अपेक्षा से द्वीन्द्रिय उद्देशक ('५८'१५'१-'१२) में जैसा कहा वैसा ही कहना।

—भग० श २४ । उ १८ । प्र १ । पृ० ८३७

'५८'१७ चतुरिन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'१७'१-'१२ स्व-पर योनि से चतुरिन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : स्व-पर योनि से चतुरिन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**चउरिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ? जहा तेइंदियाणं उद्देसओ तहेव चउरिंदियाण वि**) उनके सम्बन्ध में लेश्या की अपेक्षा से त्रीन्द्रिय उद्देशक ('५८'१६'१-'१२) में जैसा कहा वैसा ही कहना।

—भग० श २४ । उ १९ । प्र १ । पृ० ८३८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'१८ पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'१८'१ रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**रयणप्पभपुढविनेरइए णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्ख जोणिएसु उववज्जित्तए × × ×तेसि णं भंते जीवाणं × × × एगा काऊलेस्सा पन्नत्ता** प्र ३, ५ । ग० १ । **सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो × × ×**—प्र ६ । ग० २ । **एवं सेसा वि सत्त गमगा भाणियव्वा जहेव नेरइयउद्देसए सन्निपंचिंदिएहिं समं**—प्र ६ । ग० ३-६) उनमें नौ गमकों में ही एक कापोत लेश्या होती है।

—भग० श २४ । उ २० । प्र ३-६ । पृ० ८३८

'५८'१८'२ शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**सक्करप्पभापुढविनेरइए णं भंते ! जे भविए० ? एवं जहा रयणप्पभाए णव गमगा तहेव सक्करप्पभाए वि × × × एवं जाव—छट्ठपुढवी। नवरं ओगाहणा लेस्सा ठिइ अणुबंधो संवेहो य जाणियव्वा**) उनमें नौ गमकों में ही एक कापोत लेश्या होती है।

—भग० श २४ । उ २० । प्र ७ । पृ० ८३६

'५८'१८'३ वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ऊपर '५८'१८'२) उनमें नौ गमकों में ही नील तथा कापोत दो लेश्या होती हैं ('५३'४)।

—भग० श २४ । उ २० । प्र ७ । पृ० ८३६

'५८'१८'४ पंकप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पंकप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ऊपर '५८'१८'२) उनमें नौ गमकों में ही एक नील लेश्या होती है ('५३'५)।

—भग० श २४ । उ २० । प्र ७ । पृ० ८३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५८·१८·५ धूमप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : धूमप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ऊपर ·५८·१८·२) उनमें नौ गमकों में ही कृष्ण तथा नील दो लेश्या होती हैं (·५३·६)।

—भग० श २४। उ २०। प्र ७। पृ० ८३९

·५८·१८·६ तमप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : तमप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ऊपर ·५८·१८·२) उनमें नौ गमकों में ही एक कृष्ण लेश्या होती है (·५३·७)।

—भग० श २४। उ २०। प्र ७। पृ० ८३९

·५८·१८·७ तमतमाप्रभापृथ्वी के नारकी से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : तमतमाप्रभा पृथ्वी के नारकी से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**अहेसत्तमपुढवीनेरइए णं भंते ! जे भविए० ? एवं चेव णव गमगा। नवरं ओगाहणा, लेस्सा, ठिइ, अणुबंधा जाणियव्वा × × × लद्धी णवसु वि गमएसु-जहा पढमगमए**) उनमें नौ गमकों में ही एक परम कृष्ण लेश्या होती है (·५३·८)।

—भग० श २४। उ २०। प्र ८। पृ० ८३९

·५८·१८·८ पृथ्वीकायिक योनि से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक १-९ : पृथ्वीकायिक योनि से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पुढविकाइए णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते ! जीवा० ? एवं परिमाणादीया अणुबंधपज्जवसाणा जच्चेव अप्पणो सट्ठाणे वत्तव्या सच्चेव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु वि उववज्जमाणस्स भाणियव्वा × × × सेसं तं चेव**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में चार लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में चार होती हैं (·५८·१०·१)।

—भग० श २४। उ २०। प्र १०-१२। पृ० ८३९-४०

·५८·१८·९ अप्कायिक योनि से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : अप्कायिक योनि से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पुढविकाइए णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

××× ते णं भंते ! जीवा० ? एवं परिमाणादीया अणुबंधपज्जवसाणा जच्चेव अप्पणो सट्ठाणे वत्तव्वया सच्चेव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु वि उववज्जमाणस्स भाणियव्वा। ××× जइ आउक्काइएहिंतो उववज्जंति० ? एवं आउक्काइयाण वि। एवं जाव—चउरिंदिया उववाएयव्वा। नवरं सव्वत्थ अप्पणो लद्धी भाणियव्वा। ××× जहेव पुढविक्काइएसु उववज्जमाणाणं लद्धी तहेव सव्वत्थ ×××) उनमें प्रथम के तीन गमकों में चार लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में चार लेश्या होती हैं (देखो '५८'१०'२)।

—भग० श २४। उ २०। प्र १०-१२। पृ० ८३६-४०

'५८'१८'१० अग्निकायिक योनि से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : अग्निकायिक योनि से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ऊपर '५८'१८'९) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं (देखो '५८'१०'३)।

—भग० श २४। उ २०। प्र १०-१२। पृ० ८३६-४०

'५८'१८'११ वायुकायिक योनि से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : वायुकायिक योनि से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ऊपर '५८'१८'९) उनमें नव गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं (देखो '५८'१०'४)।

—भग० २४। उ २०। प्र १०-१२। पृ० ८३६-४०

'५८'१८'१२ वनस्पतिकायिक योनि से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : वनस्पतिकायिक योनि से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ऊपर '५८'१८'९) उनमें प्रथम के तीन गमकों में चार लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में चार लेश्या होती हैं (देखो '५८'१०'५)।

—भग० श २४। उ २०। प्र १०-१२। पृ० ८३६-४०

'५८'१८'१३ द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ऊपर '५८'१८'९) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं (देखो '५८'१०'६)।

—भग० श २४। उ २०। प्र १०-१२। पृ० ८३६-४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५८·१८·१४ त्रीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : त्रीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ऊपर ·५८·१८·९) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं (देखो ·५८·१०·७)।

—भग० श २४ । उ २० । प्र १०-१२ । पृ० ८३९-४०

·५८·१८·१५ चतुरिन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : चतुरिन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ऊपर ·५८·१८·९) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं (देखो ·५८·१०·८)।

—भग० श २४ । उ २० । प्र १०-१२ । पृ० ८३९-४०

·५८·१८·१६ असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते !० अवसेसं जहेव पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स असन्निस्स तहेव निरवसेसं, जाव—'भवाएसो'त्ति × × × ग० १ । × × × बिइयगमए एस चेव लद्धी—प्र० १५ । ग० २ । सो चेव उक्कोसकालट्ठिइएसु उववन्नो × × × ते णं भंते ! जीवा० ? एवं जहा रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स असन्निस्स तहेव निरवसेसं जाव—'कालादेसो'त्ति × × × सेसं तं चेव—प्र० १६ । ग० ३ । सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ जाओ × × × ते णं भंते !—अवसेसं जहा एयस्स पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स मज्झिमेसु तिसु गमएसु तहा इह वि मज्झिमेसु तिसु गमएसु जाव—'अणुबंधो'त्ति—प्रश्न १७ । ग० ४ । सो चेव जहन्नकालट्ठिइएसु उववन्नो एस चेव वत्तव्वया × × ×—प्र १८ । ग० ५ । सो चेव उक्कोसकालट्ठिइएसु उववन्नो × × × एस चेव वत्तव्वया—प्र १९ । ग० ६ । सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ सच्चेव पढमगमगवत्तव्वया × × ×—प्र २० । ग० ७ । सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया जहा सत्तमगमए × × ×—प्र २१ । ग० ८ । सो चेव उक्कोसकालट्ठिइएसु उववन्नो, × × × एवं जहा रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स असन्निस्स नवमगमए तहेव निरवसेसं जाव—'कालादेसो' त्ति × × × सेसं तं चेव—प्र २२ । ग० ९**) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(देखो ग० १, २, ४, ५, ६, ७, ८ के लिए '५८'१०'६ तथा ग० ३ व ६ के लिए '५८'१'१)

—भग० श २४ | उ २० | प्र १४-२२ | पृ० ८४०-४१

'५८'१८'१७ संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**संखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए××× ते णं भंते ! अवसेसं जहा एयस्स चेव सन्निस्स रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स पढमगमए ××× सेसं तं चेव जाव—'भवाएसो'त्ति ×××—प्र २५-२६। ग० १। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएस उववन्नो एस चेव वत्तव्वया ×××—प्र २७। ग० २। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो ××× एस चेव वत्तव्वया ×××—प्र २८। ग० ३। सो चेव जहन्नकालट्ठिईओ जाओ ×××। लद्धी से जहा एयस्स चेव सन्निपंचिंदियस्स पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स मज्झिल्लएसु तिसु गमएसु सच्चेव इह वि मज्झिमेसु तिसु गमएसु कायव्वा ××× —प्र २६। ग० ४-६। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ जहा पढमगमए × × ×—प्र ३०। ग० ७। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो एस चेव वत्तव्वया ××× —प्र ३१। ग० ८। सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो ××× अवसेसं तं चेव ×××—प्र ३२। ग० ६**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं (ग० १, २, ३, ७, ८, ६ के लिए देखो '५८'१'२, ग० ४, ५, ६ के लिए देखो '५८'१०'१०)

—भग० श २४ | उ २० | प्र २५-३२ | पृ० ८४१-४२

'५८'१८'१८ असंज्ञी मनुष्य योनि से पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-३ : असंज्ञी मनुष्य योनि से पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए ×××। लद्धी से तिसु वि गमएसु जहेव पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स ×××**) उनमें प्रथम के तीन गमक ही होते हैं तथा इन तीनों गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं ('५८'१०'११)।

—भग० श २४ | उ २० | प्र ३४ | पृ० ८४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'१८'१९ संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**सन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते !० लद्धी से जहा एयस्सेव सन्निमणुस्सस्स पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स पढमगमए जाव—'भवाएसो'त्ति × × ×—प्र ३८ । ग० १ । सो चेव जहन्नकालट्ठिइएसु उववन्नो एस चेव वत्तव्वया × × × —प्र ३९ । ग० २ । सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो × × × सच्चेव वत्तव्वया × × ×—प्र ४० । ग० ३ । सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिइओ जाओ, जहा सन्निपंचिंदिय-तिरिक्ख जोणियस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणस्स मज्झिमेसु तिसु गमएसु निरवसेसा भाणियव्वा ×××—प्र ४१ । ग० ४-६। सो चेव अप्पणा उक्कोस-कालट्ठिइओ जाओ सच्चेव पढमगमग वत्तव्वया × × × –प्र ४२। ग० ७। सो चेव जहन्नकालट्ठिइएसु उववन्नो एस चेव वत्तव्वया × × ×—प्र ४३ । ग० ८ । सो चेव उक्कोसकालट्ठिइएसु उववन्नो × × × एस चेव लद्धी जहेव सत्तमगमए × × ×—प्र ४४ । ग० ९**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या (देखो '५८'१०'१२), मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या (देखो '५८'१८'१७) तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं।

—भग० श २४ । उ २० । प्र ३७-४४ । पृ० ८४२-४३

'५८'१८'२० असुरकुमार देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९: असुरकुमार देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असुरकुमारे णं भंते! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए × × ×। असुरकुमाराणं लद्धी णवसु वि गमएसु जहा पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स, एवं जाव—ईसाणदेवस्स तहेव लद्धी × × ×**) उनमें नौ गमकों में ही चार लेश्या होती हैं ('५८'१०'१३)।

—भग० श २४ । उ २० । प्र ४७ । पृ० ८४३

'५८'१८'२१ नागकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : नागकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**नागकुमारे णं भंते ! जे भविए० ? एस चेव वत्तव्वया**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

××× **एवं जाव—थणियकुमारे**) उनमें नौ गमकों में ही चार लेश्या होती हैं ('५८'१८'२० 7 '५८'१०'१३)।

—भग० श २४ । उ २० । प्र० ४८ । पृ० ८४३

'५८'१८'२२ वानव्यंतर देवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : वानव्यंतर देवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**वाणमंतरे णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्ख० ? एवं चेव** ×××) उनमें नौ गमकों में ही चार लेश्या होती हैं ('५८'१८'२१)।

—भग० श २४ । उ २० । प्र ५० । पृ० ८४३

'५८'१८'२३ ज्योतिषी देवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : ज्योतिषी देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जोइसिए णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्ख० ? एस चेव वत्तव्वया जहा पुढविक्काइउद्देसए** ×××) उनमें नौ गमकों में ही एक तेजोलेश्या होती है ('५८'१०'१६)।

—भग० श २४ । उ २० । प्र ५२ । पृ० ८४३

'५८'१८'२४ सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**सोहम्मदेवे णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए** ××× **सेसं जहेव पुढविक्काइयउद्देसए नवसु वि गमएसु** ×××) उनमें नौ गमकों में ही एक तेजोलेश्या होती है ('५८'१०'१७)।

—भग० श २४ । उ २० । प्र ५४ । पृ० ८४४

'५८'१८'२५ ईशान कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : ईशान कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (××× **एवं ईसाणदेवे वि**) उनमें नौ गमकों में ही एक तेजोलेश्या होती है ('५८'१८'२४)।

—भग० श २४ । उ २० । प्र ५४ । पृ० ८४४

'५८'१८'२६ सनत्कुमार कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : सनत्कुमार कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**ईसानदेवे वि। एएणं कमेणं अवसेसा वि जाव—सहस्सारदेवेसु उववाएयव्वा। नवरं ××× लेस्सा—सणंकुमार—माहिंद—बंभलोएसु एगा पम्हलेस्सा**) उनमें नौ नमकों में ही एक पद्मलेश्या होती है।

—भग० श २४। उ २०। प्र ५४। पृ० ८४४

'५८'१८'२७ माहेन्द्र कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : माहेन्द्र कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१८'२६) उनमें नौ गमकों में ही एक पद्मलेश्या होती है।

—भग० श २४। उ २०। प्र ५४। पृ० ८४४

'५८'१८'२८ ब्रह्मलोक कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : ब्रह्मलोक कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१८'२६) उनमें नव गमकों में ही एक पद्मलेश्या होती है।

—भग० श २४। उ २०। प्र ५४। पृ० ८४४

'५८'१८'२६ लांतक कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : लांतक कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**ईसाणदेवे वि एवं एएणं कमेणं अवसेसा वि जाव—सहस्सारदेवेसु उववाएयव्वा। नवरं ××× लेस्सा सणंकुमार—माहिंद—बंभलोएसु एगा पम्हलेस्सा, सेसाणं एगा सुक्कलेस्सा ×××**) उनमें नौ गमकों में ही एक शुक्ललेश्या होती है।

—भग० श २४। उ २०। प्र ५४। पृ० ८४४

'५८'१८'३० महाशुक्र कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जोवों में :—

गमक—१-६ : महाशुक्र कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१८'२६) उनमें नौ गमकों में ही एक शुक्ललेश्या होती है।

—भग० श २४। उ २०। प्र ५४। पृ० ८४४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'१८'३१ सहस्रार कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : सहस्रार कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१८'२६) उनमें नौ गमकों में ही एक शुक्ललेश्या होती है।

—भग० श २४। उ २०। प्र ५४। पृ० ८४४

'५८'१६ मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'१६'१ रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : रत्नप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**रयणप्पभपुढविनेरइए णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए × × × अवसेसा वत्तव्वया जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंतस्स तहेव। × × × सेसं तं चेव**) उनमें नौ गमकों में ही एक कापोतलेश्या होती है ('५८'१८'१)।

—भग० श २४। उ २१। प्र २। पृ० ८४४

'५८'१६'२ शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**रयणप्पभपुढविनेरइए णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए × × × अवसेसा वत्तव्वया जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंतस्स तहेव। × × × सेसं तं चेव ! जहा रयणप्पभाए वत्तव्वया तहा सक्करप्पभाए वि × × ×**) उनमें नौ गमकों में ही एक कापोतलेश्या होती है ('५८'१६'17 '५८ १८'१)।

—भग० श २४। उ २१। प्र २। पृ० ८४४

'५८'१६'३ बालुकाप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : बालुकाप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**रयणप्पभपुढविनेरइए णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए × × × अवसेसा वत्तव्वया जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंतस्स तहेव। × × × सेसं तं चेव। जहा रयणप्पभाए वत्तव्वया तहा सक्करप्पभाए वि। × × × ओगाहणा—लेस्सा—णाण—ट्ठिइ—अणुबंध—संवेहं णाणत्तं च जाणेज्जा जहेव तिरिक्ख जोणियउद्देसए। एवं-जाव—तमापुढविनेरइए**) उनमें नौ गमकों में ही नील तथा कापोत दो लेश्या होती हैं ('५३'४)।

—भग० श २४। उ २१। प्र २। पृ० ८४४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'१९'४ पंकप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पंकप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१९'३) उनमें नौ गमकों में ही एक नीललेश्या होती है ('५३'५)

—भग० श २४। उ २१। प्र २। पृ० ८४४

'५८'१९'५ धूमप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : धूमप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१९'३) उनमें नौ गमकों में ही कृष्ण और नील दो लेश्या होती हैं ('५३'६)।

—भग० श २४। उ २१। प्र २। पृ० ८४४

'५८'१९'६ तमप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : तमप्रभापृथ्वी के नारकी से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१९'३) उनमें नौ गमकों में ही एक कृष्णलेश्या होती है ('५३'७)।

—भग० श २४। उ २१। प्र २। पृ० ८४४

'५८'१९'७ पृथ्वीकायिक जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पृथ्वीकायिक जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पुढविक्काइए णं भंते! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते! जीवा० ? एवं जहेव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणस्स पुढविक्काइयस्स वत्तव्वया सा चेव इह वि उववज्जमाणस्स भाणियव्वा णवसु वि गमएसु ×××सेसं तं चेव निरवसेसं**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में चार लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में चार लेश्या होती हैं ('५८'१८'८7 '५८'१०'१)।

—भग० श २४। उ २१। प्र ४-५। पृ० ८४४

'५८'१९'८ अप्कायिक जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : अप्कायिक जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पुढविक्काइए णं भंते! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए ××× ते णं भंते! जीवा० ? एवं जहेव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणस्स पुढविक्काइयस्स वत्तव्वया सा चेव इह वि उववज्जमाणस्स भाणियव्वा णवसु वि गमएसु। ××× एवं आउक्कायाण वि। एवं वणस्सइकायाण वि। एवं जाव—चउरिंदियाण वि** ×××) उनमें प्रथम के तीन गमकों में चार लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में चार लेश्या होती हैं ('५८'१८'९7 '५८'१०'२)।

—भग० श २४। उ २१। प्र ४-६। पृ० ८४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'१९'९ वनस्पतिकायिक जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : वनस्पतिकायिक जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ('५८'१९'८) उनमें प्रथम के तीन गमकों में चार लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में चार लेश्या होती हैं ('५८'१८'१२ > '५८'१०'५)।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ४-६ । पृ० ८४५

'५८'१९'१० द्वीन्द्रिय जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : द्वीन्द्रिय जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१९'८) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं (५८'१८'१३ > '५८'१०'६)।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ४-६ । पृ० ८४५

'५८'१९'११ त्रीन्द्रिय जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : त्रीन्द्रिय जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१९'८) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं ('५८'१८'१४ > '५८'१०'७)।

—भग० श० २४ । उ २१ । प्र ४-६ पृ० ८४५

'५८'१८'१२ चतुरिन्द्रिय जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : चतुरिन्द्रिय जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१९'८) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं ('५८'१८'१५ 7 '५८'१०'८)।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ४-६ । पृ० ८४५

'५८'१९'१३ असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि के जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि के जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (× × × **असन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिय–सन्निपंचिंदियतिरिक्ख जोणिय—असन्निमणुस्स-सन्निमणुस्सा य एए सव्वे वि जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणिय उद्देसए तहेव भाणियव्वा** × × ×) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं ('५८'१८'१६)।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ६ । पृ० ८४५

१७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'१६'१४ संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि के जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि के जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'१३) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं ('५८'१८'१७)।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ६ । पृ० ८४५

'५८'१६'१५ असंज्ञी मनुष्य योनि के जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-३ : असंज्ञी मनुष्य योनि के जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'१३) उनमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि उद्देशक की तरह प्रथम के तीन ही गमक होते हैं तथा उन तीनों ही गमकों में तीन लेश्या होती हैं ('५८'१८'१८7 '५८'१०'११) ।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ६ । पृ० ८४५

'५८'१६'१६ संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि के जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि के जीवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'१३) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में तीन लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं ('५८'१८'१६)

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ६ । पृ० ८४५

'५८'१६'१७ असुरकुमार देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : असुरकुमार देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असुरकुमारे णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए × × × । एवं जच्चेव पंचिंदियतिरिक्खजोणियउद्देसए वत्तव्वया सच्चेव एत्थ वि भाणियव्वा । × × × सेसं तं चेव । एवं जाव—'ईसाणदेवो'त्ति**) उनमें नौ गमकों में ही चार लेश्या होती हैं ('५८'१८'२०) ।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ६ । पृ० ८४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'१६'१८ नागकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : नागकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'१७) उनमें नौ गमकों में ही चार लेश्या होती है ('५८'१८'२१)।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ६ । पृ० ८४५

'५८'१६'१६ वानव्यंतर देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : वानव्यंतर देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'१७) उनमें नौ गमकों में ही चार लेश्या होती हैं ('५८'१८ '२१)।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ६ । पृ० ८४५

'५८'१६'२० ज्योतिषी देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : ज्योतिषी देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'१७) उनमें नौ गमकों में ही एक तेजोलेश्या होती है ('५८'१८'२३)।

· भग० श २४ । उ २१ । प्र ६ । पृ० ८४५

'५८'१६'२१ सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'१७) उनमें नौ गमकों में ही एक तेजोलेश्या होती है (५८'१८'२४7 '५८'१०'१७)।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ६ । पृ० ८४५

'५८'१६'२२ ईशानकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : ईशानकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'१७) उनमें नौ गमकों में ही एक तेजोलेश्या होती है ('५८'२८'२५ > '५८'१८'२४)।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र ६ । पृ० ८४५

'५८'१६'२३ सनत्कुमार कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : सनत्कुमार कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (× × × **सणंकुमारादीया जाव—'सहस्सारो'त्ति जहेव**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Ṇaria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचिंदियतिरिक्खजोणिय उद्देसए। ×× × **सेसं तं चेव** × × ×) उनमें नौ गमकों में ही एक पद्मलेश्या होती है ('५८'१८'२६)।

—भग० २४। उ २१। प्र ६। पृ० ८४५

'५८'१६'२४ माहेन्द्रकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : माहेन्द्रकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'२३) उनमें नौ गमकों में ही एक पद्मलेश्या होती है ('५८'१८'२७)।

—भग० श २४। उ २१। प्र ६। पृ० ८४५

'५८'१६'२५ ब्रह्मलोक कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : ब्रह्मलोक कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'२३) उनमें नौ गमकों में ही एक पद्मलेश्या होती है ('५८'१८'२८)

—भग० श २४। उ २१। प्र ६। पृ० ८४५

'५८'१६'२६ लान्तक कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : लान्तक कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'२३) उनमें नौ गमकों में ही एक शुक्ललेश्या होती है ('५८'१८'२६)।

—भग० श २४। उ१। प्र ६। पृ० ८४५

'५८'१६'२७ महाशुक्र कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : महाशुक्र कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१६'२३) उनमें नौ गमकों में ही एक शुक्ल लेश्या होती है ('५८'१८'३०)।

—भग० श २४। उ २१। प्र ६। पृ० ८४५

'५८'१६'२८ सहस्रार कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गमक—१-९ : सहस्रार कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'१९'२३) उनमें नौ गमकों में ही एक शुक्ललेश्या होती है ('५८'१८'३१)।

—भग० श २४। उ २१। प्र ९। पृ० ८४५

'५८'१९'२९ आनत यावत् अच्युत (आनत, प्राणत, आरण तथा अच्युत) देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : आनत यावत् अच्युत देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**आणय देवे णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते ! एवं जहेव सहस्सारदेवाणं वत्तव्वया × × × सेसं तं चेव × × × एवं णव वि गमगा० × × × एवं जाव —अच्चुयदेवो × × ×**) उनमें नौ गमकों में ही एक शुक्ललेश्या होती है ('५८'१९'२८ '५८'१८'३१)।

—भग० श २४। उ २१। प्र १०-११। पृ० ८४५

'५८'१९'३० ग्रैवेयक कल्पातीत (नौ ग्रैवेयक) देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : ग्रैवेयक कल्पातीत देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**गेवेज्ज(ग)देवे णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए × × × अवसेसं जहा आणयदेवस्स वत्तव्वया × × × सेसं तं चेव। × × × एवं सेसेसु वि अट्ठगमएसु × × ×**) उनमें नौ गमकों में ही एक शुक्ललेश्या होती है ('५८'१९'२९)।

—भग० श २४। उ २१। प्र १४। पृ० ८४६

'५८'१९'३१ विजय, वैजयन्त, जयन्त तथा अपराजित अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : विजय, वैजयन्त, जयन्त तथा अपराजित अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**विजय, वेजयंत, जयंत, अपराजियदेवे णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए × × × एवं जहेव गेवेज्ज(ग)देवाणं। × × × एवं सेसा वि अट्ठगमगा भाणियव्वा × × × सेसं तं चेव**) उनमें नौ गमकों में ही एक शुक्ललेश्या होती है ('५८'१९'३०)।

—भग० श २४। उ २१। प्र० १६। पृ० ८४६

'५८'१९'३२ सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गमक—१-३ : सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत देवों से मनुष्य योनि में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**सव्वट्ठसिद्धगदेवे णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए० ? सा चेव विजयादि देव वत्तव्वया भाणियव्वा × × × सेसं तं चेव × × × —प्र० १७ । ग० १ । सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो एस चेव वत्तव्वया × × × —प्र० १८ । ग० २ । सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो एस चेव वत्तव्वया × × × -प्र० १६ । ग० ३ । एए चेव तिन्नि गमगा, सेसा न भण्णंति × × ×**) उनमें तीन गमक होते हैं तथा उन तीनों गमकों में ही एक शुक्ललेश्या होती है ('५८'१६'३१)।

—भग० श २४ । उ २१ । प्र १७-१६ । पृ० ८४६-४७

'५८'२० वानव्यंतर देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'२०'१ पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि के जीवों से वानव्यन्तर देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त असंज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि के जीवों से वानव्यंतर देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**वाणमंतरा णं भंते ! × × × एवं जहेव णागकुमारउद्देसए असन्नी तहेव निरवसेसं × × ×**) उनमें नौ गमकों में ही तीन लेश्या होती हैं ('५८'६'१)।

—भग० श २४ । उ २२ । प्र १ । पृ० ८४७

'५८'२०'२ असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि के जीवों से वानव्यंतर देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि के जीवों से वानव्यंतर देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असंखेज्जवासाउय**) **सन्निपंचिंदिय० जे भविए वाणमंतरेसु उववज्जित्तए × × × सेसं तं चेव जहा नागकुमारउद्देसए × × ×—प्र २ । ग० १ । सो चेव जहन्नकालट्ठिइएसु उववन्नो जहेव णागकुमाराणं बिइयगमे वत्तव्वया—प्र २ । ग० २ । सो चेव उक्कोसकालट्ठिइएसु उववन्नो × × × एस चेव वत्तव्वया × × × प्र ४ । ग० ३ । मज्झिमगमगा तिन्नि वि जहेव नागकुमारेसु पच्छिमेसु तिसु गमएसु तं चेव जहा नागकुमारुद्देसए × × ×-- प्र ४ । ग० ४-६**) उनमें नौ गमकों में ही चार लेश्या होती हैं ('५८'६'२)

—भग० श २४ । उ २ । प्र २-४ । पृ० ८४७

'५८'२०'३ (पर्याप्त) संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि के जीवों से वानव्यंतर देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : (पर्याप्त) संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय योनि के जीवों से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वानव्यन्तर देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**संखेज्जवासाउय० तहेव,** देखो पाठ '५८'२०'२) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में चार लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं ('५८'९'३)।

—भग० श २४। उ २२। प्र २-४। पृ० ८४७

'५८'२०'४ असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से वानव्यंतर देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से वानव्यंतर देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जइ मणुस्स० असंखेज्जवासाउयाणं जहेव नागकुमाराणं उद्देसे तहेव वत्तव्वया। ××× सेसं तहेव ×××**) उनमें नौ गमकों में ही चार लेश्या होती हैं ('५८'९'४)।

—भग० श २४। उ २२। प्र ५। पृ० ८४७

'५८'२०'५ (पर्याप्त) संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से वानव्यंतर देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : (पर्याप्त) संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से वानव्यंतर देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (××× **संखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से जहेव नागकुमारुद्देसए** ×××) उनमें नौ गमकों में ही छ लेश्या होती हैं ('५८'९'५)।

—भग० श २४। उ २२। प्र ५। पृ० ८४७

'५८'२१ ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'२१'१ असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१ से ४ व ७ से ९ : असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असंखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए जोइसिएसु उववज्जित्तए ××× अवसेसं जहा असुरकुमारुद्देसए ××× एवं अणुबंधो वि सेसं तहेव ×××—प्र ३। ग० १। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो ××× एस चेव वत्तव्वया ×××—प्र ४। ग० २। सो चेव उक्कोसकालट्ठिइएसु उववन्नो एस चेव वत्तव्वया ×××—प्र० ५। ग० ३। सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिइओ जाओ ××× तेणं भंते जीवा० ? एस चेव वत्तव्वया ××× एवं अणुबंधोऽवि सेसं तहेव। ××× जहन्नकालट्ठिइयस्स एस चेव एक्को गमो—प्र ६-७। ग० ४। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिइओ जाओ सा चेव ओहिया वत्तव्वया ××× एवं अणुबंधोवि सेसं तं चेव। एवं पच्छिमा तिन्नि**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गमगा णेयव्वा। ××× एए सत्त गमगा – प्र ८। ग० ७-९) उनमें सात गमक होते तथा इन सातों गमकों में प्रथम की चार लेश्या होती हैं ('५८'८'२)। गमक ५ व ६ नहीं होते।

—भग० श २४। उ २३। प्र ३-८। पृ० ८४७-४८

'५८'२१'२ संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जइ संखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदिय० ? संखेज्जवासाउयाणं जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणाणं तहेव नव वि गमा भाणियव्वा। ××× सेसं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छ लेश्या, मध्यम के तीन गमकों में चार लेश्या तथा शेष के तीन गमकों में छ लेश्या होती हैं ('५८'८'३)।

—भग० श २४। उ २३। प्र ६। पृ० ८४८

'५८'२२'३ असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-४, ७-९ : असंख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए जोइसिएसु उववज्जित्तए ××× एवं जहा असंखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदियस्स जोइसिएसु चेव उववज्जमाणस्स सत्त गमगा तहेव मणुस्साणवि ××× सेसं तहेव निरवसेसं जाव—'संवेहो'त्ति**) उनमें सात गमक होते हैं। इन सातों गमकों में प्रथम की चार लेश्या होती हैं ('५८'८'४)। गमक ५ व ६ नहीं होते।

—भग० श २४। उ २३। प्र ११। पृ० ८४८

'५८'२१'४ संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : संख्यात् वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जइ संखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से० ? संखेज्जवासाउयाणं जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणाणं तहेव नव गमगा भाणियव्वा। ××× सेसं तं चेव निरवसेसं ×××**) उनमें नौ गमकों में ही छ लेश्या होती हैं ('५८'८'५)।

—भग० श २४। उ २३। प्र १२। पृ० ८४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५८·२२ सौधर्म देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·२२·१ असंख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से सौधर्म देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-४, ७-६ : असंख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि के जीवों से सौधर्म देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असंखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए सोहम्मगदेवेसु उववज्जित्तए × × × ते णं भंते ! अवसेसं जहा जोइसिएसु उववज्जमाणस्स। × × × एवं अणुबंधो वि, सेसं तहेव × × × -प्र० ३-४। ग० १। सो चेव जहन्नकालट्ठिईएसु उववन्नो एस चेव वत्तव्वया × × × —प्र० ४। ग० २। सो चेव उक्कोसकालट्ठिइएसु उववन्नो × × × एस चेव वत्तव्वया × × × सेसं तहेव × × ×—प्र० ५। ग० ३। सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठिइओ जाओ × × × एस चेव वत्तव्वया × × × सेसं तहेव × × ×—प्र० ६। ग० ४। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिइओ जाओ, आदिल्लगमगसरिसा तिन्नि गमगा णेयव्वा × × ×—प्र० ७। ग० ७-६**) उनमें सात गमक होते हैं तथा इन सातों गमकों में प्रथम की चार लेश्याएं होती हैं (·५८·२१·१)।

—भग० श २४। उ २४। प्र ३-७। पृ० ८४६

·५८·२२·२ संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से सौधर्म देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि के जीवों से सौधर्म देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जइ संखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदिय० ? संखेज्जवासाउयस्स जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स तहेव णव वि गमगा × × × सेसं तं चेव**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छः लेश्याएँ, मध्यम के तीन गमकों में चार लेश्याएं तथा शेष के तीन गमकों में छः लेश्याएं होती हैं (·५८·८·३)।

—भग० श २४। उ २४। प्र ८। पृ० ८४६

·५८·२२·३ असंख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से सौधर्मकल्प देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-४, ७-६ : असंख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से सौधर्मकल्प देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते! जे भविए सोहम्मकप्पे देवत्ताए उववज्जित्तए० ? एवं जहेव असंखेज्जवासाउयस्स सन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स सोहम्मे कप्पे उववज्जमाणस्स तहेव सत्त गमगा × × ×। सेसं तहेव निरवसेसं**) उनमें सात गमक होते हैं तथा इन सातों गमकों में प्रथम की चार लेश्याएं होती हैं (·५८·२२·१)।

—भग० श २४। उ २४। प्र १०। पृ० ८४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'२२'४ संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से सौधर्म देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से सौधर्म देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जइ संखेज्जवासाउयसन्निमणुस्सेहिंतो० ? एवं संखेज्जवासाउयसन्निमणुस्साणं जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणाणं तहेव णव गमगा भाणियव्वा । ××× सेसं तं चेव**) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं ('५८'८'५)।

—भग० श २४ । उ २४ । प्र ११ । पृ० ८४६

'५८'२३ ईशान देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'२३'१ असंख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से ईशान देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-४, ७-६ : असंख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से ईशान देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**ईसाणदेवाणं एस चेव सोहम्मगदेवसरिसा वत्तव्वया । ××× सेसं तहेव**) उनमें सात गमक होते हैं तथा इन सातों गमकों में प्रथम की चार लेश्याएं होती हैं ('५८'२२'१)।

—भग० श २४ । उ २४ । प्र १२ । पृ० ८४६-५०

'५८'२३'२ संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से ईशान देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से ईशान देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**संखेज्जवासाउयाणं तिरिक्खजोणियाणं मणुस्साण य जहेव सोहम्मेसु उववज्जमाणाणं तहेव निरवसेसं णव वि गमगा**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छः लेश्याएं, मध्यम के तीन गमकों में चार लेश्याएं तथा शेष के तीन गमकों में छः लेश्याएं होती हैं ('५८'२२'२)।

— भग० श २४ । उ २४ । प्र १४ । पृ० ८५०

'५८'२३'३ असंख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ईशान देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-४, ७-६ : असंख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ईशान देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**असंखेज्जवासाउयसन्निमणुसस्स वि तहेव ××× जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स असंखेज्जवासाउयस्स ××× सेसं तहेव**) उनमें सात गमक होते हैं तथा इन सातों गमकों में प्रथम की चार लेश्याएं होती हैं ('५८'२३'३)।

—भग० श २४ । उ २४ । प्र १३ । पृ० ८५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५८·२३·४ संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ईशान देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ईशान देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ·५८·२३·२) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं (५८·२२·४7 ·५८·८·५)।

—भग० श २४। उ २४। प्र १४। पृ० ८५०

·५८·२४ सनत्कुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·२४·१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से सनत्कुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से सनत्कुमार देवों में होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए सनंकुमारदेवेसु उववज्जित्तए० ? अवसेसा परिमाणादीया भवाएसपज्जवसाणा सच्चेव वत्तव्वया भाणियव्वा जहा सोहम्मे उववज्जमाणस्स। × × × जाहे य अप्पणा जहन्नकालट्ठिईओ भवइ ताहे तिसु वि गमएसु पंच लेस्साओ आदिल्लाओ कायव्वाओ, सेसं तं चेव**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छः लेश्याएं, मध्यम के तीन गमकों में पाँच लेश्याएं तथा शेष के तीन गमकों में छः लेश्याएं होती हैं (·५८·२२·२)।

—भग० श २४। उ २४। प्र १६। पृ० ८५०

·५८·२४·२ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से सनत्कुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से सनत्कुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति० ? मणुस्साणं जहेव सक्करप्पभाए उववज्जमाणाणं तहेव णव वि गमा भाणियव्वा**) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं (·५८·२·२)।

—भग० श २४। उ २४। प्र १७। पृ० ८५०

·५८·२५ माहेन्द्र देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·२५·१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से माहेन्द्र देवों में उत्पन्न योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से माहेन्द्र देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**माहिंदगदेवा णं भंते! × × × जहा सणंकुमारगदेवाणं वत्तव्वया तहा माहिंदगदेवाणं भाणियव्वा**) उनमें प्रथम के × × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गमकों में छः लेश्याएं, मध्यम के तीन गमकों में पाँच लेश्याएं तथा शेष के तीन गमकों में छः लेश्याएं होती हैं ('५८'२४'१)।

—भग० श २४ । उ २४ । प्र १८ । पृ० ८५०

'५८'२५'२ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से माहेन्द्र देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से माहेन्द्र देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'२५'१) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं ('५८'२४'२) ।

—भग० श २४ । उ २४ । प्र १८ । पृ० ८५०

'५८'२६ ब्रह्मलोक देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'२६'१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से ब्रह्मलोक देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से ब्रह्मलोक देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**एवं बंभलोगदेवाण वि वत्तव्वया**) उनमें प्रथम के तीन गमकों में छः लेश्याएं, मध्यम के तीन गमकों में पाँच लेश्याएं तथा शेष के तीन गमकों में छः लेश्याएं होती हैं ('५८'२४'१)।

—भग० श २४ । उ २४ । प्र १८ । पृ० ८५०

'५८'२६'२ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ब्रह्मलोक देवों में उत्पन्न योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ब्रह्मलोक देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'२६'१) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं ('५८'२४'२)।

'५८'२७ लांतक देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'२७'१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि से लांतक देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से लांतक देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (× × × **जहा सणंकुमारगदेवाणं वत्तव्वया तहा माहिंदगदेवाणं भाणियव्वा। × × × एवं जाव - सहस्सारो। × × × लंतगादीणं जहन्नकालट्ठिइयस्स तिरिक्खजोणियस्स तिसु वि गमएसु छप्पि (छव्वि ?) लेस्साओ कायव्वाओ**) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं।

—भग० श० २४ । उ २४ । प्र १८ । पृ० ८५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५८·२७·२ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से लांतक देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से लांतक देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ·५८·२७·१) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं (·५८·२४·२)।

—भग० श २४ । उ २४ । प्र १८ । पृ० ८५०

·५८·२८ महाशुक्रदेवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·२८·१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से महाशुक्र देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से महाशुक्रदेवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ·५८·२७·१) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं (·५८·२४·१)।

—भग० श २४ । उ २४ । प्र १८ । पृ० ८५०

·५८·२८·२ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से महाशुक्र देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक— १-६ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से महाशुक्र देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ·५८·२७·१) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं (·५८·२४·२)।

—भग० श २४ । उ २४ । प्र १८ । पृ० ८५०

·५८·२९ सहस्रारदेवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·२९·१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से सहस्रार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनि से सहस्रार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ·५८·२७·१) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं (·५८·२४·१)।

—भग० श २४ । उ २४ । प्र १८ । पृ० ८५०

·५८·२९·२ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से सहस्रार देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-६ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से सहस्रार देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ ·५८·२७·१) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं (·५८·२४·२)।

—भग० श २४ । उ २४ । प्र १८ । पृ० ८५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'५८'३० आनत देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'३०'१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से आनत देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से आनत देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते! जे भविए आणयदेवेसु उववज्जित्तए० ? मणुस्साण य वत्तव्वया जहेव सहस्सारेसु उववज्जमाणाणं। ××× सेसं तहेव जाव—अणुबंधो। ××× एवं सेसा वि अट्ठ गमगा भाणियव्वा ××× एवं जाव- अच्चुयदेवा ×××**) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएँ होती हैं ('५८'२९'२)।

—भग० श २४। उ २४। प्र २०। पृ० ८५०

'५८'३१ प्राणत देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'३१'१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से प्राणत देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से प्राणत देवों में उत्पन्न होने योग्य योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'३०'१) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं।

—भग० २४। उ २४। प्र २०। पृ० ८५०

'५८'३२ आरण देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'३२'१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से आरण देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से आरण देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'३०'१) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं।

—भग० श २४। उ २४। प्र २०। पृ० ८५०

'५८'३३ अच्युत देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

'५८'३३'१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से अच्युत देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से अच्युत देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (देखो पाठ '५८'३०'१) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं।

—भग० श २४। उ २४। प्र २०। पृ० ८५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५८·३४ ग्रैवेयक देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·३४·१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ग्रैवेयक देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१-९ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से ग्रैवेयक देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**गेवेज्जगदेवा णं भंते ! ××× एस चेव वत्तव्वया ×××**) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं।

—भग० श २४। उ २४। प्र २१। पृ० ८५१

·५८·३५ विजय, वैजयंत, जयंत तथा अपराजित देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·३५·१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से विजय, वैजयंत, जयंत तथा अपराजित देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१, ९ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से विजय, वैजयन्त, जयन्त तथा अपराजित देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवा णं भंते ! ××× एस चेव वत्तव्वया निरवसेसा, जाव—'अणुबंधो'त्ति। ××× एवं सेसा वि अट्ठ गमगा भाणियव्वा ××× मणूसे लद्धी णवसु वि गमएसु जहा गेवेज्जेसु उववज्जमाणस्स ×××**) उनमें नौ गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं (·५८·३४·१)।

—भग० श २४। उ २४। प्र २२। पृ० ८५१

·५८·३६ सर्वार्थसिद्ध देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

·५८·३६·१ पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से सर्वार्थसिद्ध देवों में उत्पन्न होने योग्य जीवों में :—

गमक—१, ४, ७ : पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी मनुष्य योनि से सर्वार्थसिद्ध देवों में उत्पन्न होने योग्य जो जीव हैं (**सव्वट्ठसिद्धगदेवा**) (**से णं भंते ! ××× अवसेसा जहा विजयाईसु उववज्जंताणं ×××—प्र २३-२४। ग० १। सो चेव अप्पणा जहन्न-कालट्ठिइओ जाओ एस वत्तव्वया ××× सेसं तहेव ×××—प्र २५। ग० ४। सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिइओ जाओ, एस चेव वत्तव्वया ××× सेसं तहेव, जाव—'भवाएसो'त्ति। ×××—प्र २६। ग० ७। एए तिन्नि गमगा सव्वट्ठसिद्धग-देवाणं ×××**) उनमें तीनों गमकों में ही छः लेश्याएं होती हैं (·५८·३५·१)। इसमें पहला, चौथा तथा सातवाँ तीन ही गमक होते हैं।

—भग० श २४। उ २४। प्र २३-२६। पृ० ८५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·५८ के सभी पाठ भगवती शतक २४ से लिए गए हैं। इस शतक में स्व/पर योनि से स्व/पर योनि में उत्पन्न होने योग्य जीवों का नौ गमकों तथा उपपात के अतिरिक्त निम्न लिखित बीस विषयों की अपेक्षा से विवेचन हुआ है :—

(१) स्थिति, (२) संख्या, (३) संहनन, (४) शरीरावगाहना, (५) संस्थान, (६) लेश्या, (७) दृष्टि, (८) ज्ञान, (९) योग, (१०) उपयोग, (११) संज्ञा, (१२) कषाय, (१३) इंद्रिय, (१४) समुद्घात, (१५) वेदन, (१६) वेद, (१७) कालस्थिति, (१८) अध्यवसाय, (१९) कालादेश तथा (२०) भवादेश। हमने लेश्या की अपेक्षा से पाठ ग्रहण किया है। गमकों का विवरण पृ० १०० पर देखें।

·५९ जीव समूहों में कितनी लेश्या :—

सिय भंते! जाव—चत्तारि पंच पुढविकाइया एगयओ साहारणसरीरं बंधंति ××× ? नो इणट्ठे समट्ठे। ××× पत्तेयं सरीरं बंधंति। ××× तेसिणं भंते! जीवाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा! चत्तारि लेस्साओ पन्नत्ताओ, तं जहा— कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा, तेऊलेस्सा।

सिय भंते! जाव—चत्तारि पंच आउक्काइया एगयओ साहारणसरीरं बंधंति ××× एवं जो पुढविकाइयाणं गमो सो चेव भाणियव्वो।

सिय भंते! जाव—चत्तारि पंच तेउक्काइया० एवं चेव। नवरं उववाओ ठिई उव्वट्टणा य जहा पन्नवणाए, सेसं तं चेव। वाउकाइयाणं एवं चेव।

टीका—लेश्यायामपि यतस्तेजसोऽप्रशस्तलेश्या एव पृथिवीकायिकास्त्वाद्यचतुर्लेश्याः, यच्चेदमिह न सूचितं तद्विचित्रत्वात्सूत्रगतेरिति।

सिय भंते! जाव—चत्तारि पंच वणस्सइकाइया० पुच्छा। गोयमा! जो इणट्ठे समट्ठे। अणंता वणस्सइकाइया एगयओ साहारणसरीरं बंधंति। सेसं जहा तेउकाइयाणं जाव—उव्वट्टंति ××× सेसं तं चेव।

—भग० श १९। उ ३। प्र० १, २, १७, १८, १९। पृ० ७८१-८२

सिय भंते! जाव—चत्तारि पंच बेंदिया एगयओ साहारणसरीरं बंधंति ××× णो इणट्ठे समट्ठे। ××× पत्तेयसरीरं बंधंति। ××× तेसिणं भंते! जीवाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा! तओ लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा। ××× एवं तेइंदिया(ण) वि, एवं चउरिंदिया(ण) वि। ××× सिय भंते! जाव चत्तारि पंच पंचिंदिया एगयओ साहारण० ? एवं जहा बेंदियाणं, नवरं छल्लेसाओ।

—भग० श २०। उ १। प्र १ से ४। पृ० ७९०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो, तीन, चार, पाँच अथवा बहु पृथ्वीकायिक जीव साधारण शरीर नहीं बाँधते हैं, प्रत्येक शरीर बांधते हैं। इन पृथ्वीकायिक जीव समूह के प्रथम की चार लेश्याएँ होती हैं।

इसी प्रकार अप्कायिक जीव समूह साधारण शरीर नहीं, प्रत्येक शरीर बांधते हैं और इनके चार लेश्याएँ होती हैं।

अग्निकायिक तथा वायुकायिक जीव समूह भी साधारण शरीर नहीं, प्रत्येक शरीर बाँधते हैं और इनके प्रथम की तीन लेश्याएँ होती हैं।

दो यावत् पाँच यावत् संख्यात यावत् असंख्यात वनस्पतिकायिक जीव समूह साधारण शरीर नहीं बांधते हैं, प्रत्येक शरीर बांधते हैं। इन वनस्पतिकायिक जीव समूहों के प्रथम की चार लेश्याएँ होती हैं। लेकिन अनन्त वनस्पतिकायिक जीव समूह साधारण शरीर बांधते हैं। इन वनस्पतिकायिक जीव समूहों के प्रथम की तीन लेश्याएँ होती हैं।

द्वीन्द्रिय यावत् चतुरिन्द्रिय जीव समूह साधारण शरीर नहीं बांधते हैं, प्रत्येक शरीर बांधते हैं। इन जीव समूहों के प्रथम की तीन लेश्याएँ होती हैं।

पंचेंद्रिय जीव समूह भी साधारण शरीर नहीं बांधते हैं, प्रत्येक शरीर बांधते हैं। इन पंचेंद्रिय जीव समूह के छः लेश्याएँ होती हैं।

·६ से ·८ सलेशी जीव

·६१ सलेशी जीव और समपद :—

·६१·१ सलेशी जीव-दण्डक और समपद :—

सलेस्सा णं भंते! नेरइया सव्वे समाहारा, समसरीरा, समुस्सासनिस्सासा सव्वे वि पुच्छा? गोयमा! एवं जहा ओहिओ गमओ तहा सलेस्सागमओ वि निरवसेसो भाणियव्वो जाव वेमाणिया।

—पण्ण० प १७। उ १। सू ११। पृ० ४३७

सर्व सलेशी नारकी समाहारी, समशरीरी, समोच्छ्‌वासनिश्वासी, समकर्मी, समवर्णी, समलेशी, समवेदनावाले, समक्रियावाले समायुष्गवाले तथा समोपपन्नक नहीं हैं।

देखो औघिक गमक -- पण्ण० प १७। उ १। सू १ से ६। पृ० ४३४-३५

सर्व सलेशी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार समाहारी यावत् समोपपन्नक नहीं हैं।

देखो—पण्ण० प १७। उ १। सू ७। पृ० ४३५-३६

सर्व सलेशी पृथ्वीकाय समाहारी, समकर्मी, समवर्णी तथा समलेशी नहीं हैं लेकिन समवेदनावाले तथा समक्रियावाले हैं। इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय तक जानना।

देखो—पण्ण० प १७। उ १। सू ८। पृ० ४३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्व सलेशी तिर्यंच पंचेन्द्रिय सलेशी नारकी की तरह समाहारी यावत समोपपन्नक नहीं हैं।

देखो—पण्ण० प १७। उ १। सू ८। पृ० ४३६

सर्व सलेशी मनुष्य समाहारी यावत् समोपपन्नक नहीं हैं।

देखो—पण्ण० प १७। उ १। सू ६। पृ० ४३६-३७

सर्व सलेशी वानव्यंतर देव असुरकुमार की तरह समाहारी यावत् समोपपन्नक नहीं हैं।

देखो—पण्ण० प १७। उ १। सू १०। पृ० ४३७

सर्व ज्योतिष-वैमानिक देव भी असुरकुमार की तरह समाहारी यावत् समोपपन्नक नहीं हैं।

देखो—पण्ण० प १७। उ १। सू १०। पृ० ४३७

·६१·२ कृष्णलेशी जीव-दण्डक और समपद :—

कण्हलेस्सा णं भंते! नेरइया सव्वे समाहारा पुच्छा? गोयमा! जहा ओहिया, नवरं नेरइया वेयणाए माइमिच्छदिट्ठीउववन्नगा य अमाइसम्मदिट्ठीउववन्नगा य भाणियव्वा, सेसं तहेव जहा ओहियाणं। असुरकुमारा जाव वाणमंतरा एते जहा ओहिया, नवरं मणुस्साणं किरियाहिं विसेसो – जाव तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी ते तिविहा पन्नत्ता, तंजहा—संजया-असंजया-संजयासंजया य, जहा ओहियाणं, जोइसियवेमाणिया आइल्लियासु तिसु लेस्सासु ण पुच्छिज्जंति।

—पण्ण० प १७। उ १। सू ११। पृ० ४३७

कृष्णलेशी सर्व नारकी औघिक नारकी की तरह समाहारी यावत् समोपपन्नक नहीं हैं लेकिन वेदना में मायी मिथ्यादृष्टिउपपन्नक और अमायी सम्यग्दृष्टिउपपन्नक कहना। बाकी सर्व जैसा औघिक नारकी का कहा वैसा जानना। असुरकुमार से लेकर वानव्यंतर देव तक औघिक असुरकुमार की तरह कहना परन्तु मनुष्य की क्रिया में विशेषता है यावत् उनमें जो सम्यग् दृष्टि हैं वे तीन प्रकार के हैं—यथा संयत, असंयत, संयतासंयत इत्यादि जैसा औघिक मनुष्य के विषय में कहा—वैसा ही जानना।

ज्योतिषी तथा वैमानिक देवों के सम्बन्ध में आदि की तीन लेश्या को लेकर पृच्छा नहीं करनी।

·६१·३ नीललेशी जीव-दण्डक और समपद :—

एवं जहा कण्हलेस्सा विचारिया तहा नीललेस्सा वि विचारेयव्वा।

—पण्ण० प १७। उ १। सू ११। पृ० ४३७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसा कृष्णलेशी जीव-दण्डक का विवेचन किया—वैसा नीललेशी जीव-दण्डक का भी विवेचन करना।

'६१'४ कापोतलेशी जीव-दण्डक और समपदः—

काऊलेस्सा नेरइएहिंतो आरब्भ जाव वाणमंतरा, नवरं काऊलेस्सा नेरइया वेयणाए जहा ओहिया।

—पण्ण० प १७। उ १। सू ११। पृ० ४३७

कापोत लेश्या का नारकी से लेकर वानव्यंतर देव तक (कृष्णलेशी नारकी की तरह) विचार करना लेकिन कापोतलेशी नारकी की वेदना--औधिक नारकी की तरह जानना।

'६१'५ तेजोलेशी जीव-दण्डक और समपदः—

तेऊलेस्साणं भंते! असुरकुमाराणं ताओ चेव पुच्छाओ? गोयमा! जहेव ओहिया तहेव, नवरं वेयणाए जहा जोइसिया।

पुढविआउवणस्सइपंचेंदियतिरिक्खमणुस्सा जहा ओहिया तहेव भाणियव्वा, नवरं मणुस्सा किरियाहिं जे संजया ते पमत्ता य अपमत्ता य भाणियव्वा, सरागा वीयरागा नत्थि। वाणमंतरा तेऊलेस्साए जहा असुरकुमारा, एवं जोइसियवेमाणिया वि, सेसं तं चेव।

—पण्ण० प १७। उ १। सू ११। पृ० ४३७

तेजोलेशी सर्व असुरकुमार औधिक असुरकुमार की तरह समाहारी यावत् समोपपन्नक नहीं हैं परन्तु वेदना—ज्योतिषी की तरह समझना।

तेजोलेशी सर्व पृथ्वीकाय-अप्काय-वनस्पतिकाय-तिर्यंचपंचेन्द्रिय-मनुष्य औधिक की तरह समझना परन्तु मनुष्य की क्रिया में विशेषता है—उनमें जो संयत हैं वे प्रमत्त तथा अप्रमत्त के भेद से दो प्रकार के हैं परन्तु सराग तथा वीतराग—ऐसे भेद नहीं करना।

तेजोलेशी वानव्यंतर देव असुरकुमार की तरह समाहारी यावत् समोपपन्नक नहीं है।

इसी प्रकार ज्योतिषी तथा वैमानिक देवों के सम्बन्ध में समझना।

६१'६ पद्मलेशी जीव-दंडक और समपद :—

एवं पम्हलेस्सा वि भाणियव्वा, नवरं जेसिं अत्थि। ××× नवरं पम्हलेस्स-सुक्कलेस्साओ पंचेंदियतिरिक्खजोणियमणुस्सवेमाणियाणं चेव।

—पण्ण० प १७। उ १। सू ११। पृ० ४३७

जैसा तेजोलेशी जीव दंडक के विषयमें कहा, उसी प्रकार पद्मलेशी जीव दंडक के विषय में समझना। परन्तु जिसके पद्मलेश्या होती है उसी के कहना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·६१·७ शुक्ललेशी जीव-दंडक और समपद :—

सुक्कलेस्सा वि तहेव जेसिं अत्थि, सव्वं तहेव जहा ओहियाणं गमओ, नवरं पम्हलेस्ससुक्कलेस्साओ पंचेंदियतिरिक्खजोणियमणुस्सवेमाणियाणं चेव न सेसाणं ति।

—पण्ण० प १७। उ १। सू ११ प० ४३७

जैसा औघिक दंडक के विषय में कहा—वैसा ही शुक्ललेशी दंडक के विषय में समझना परन्तु जिसके शुक्ल लेश्या होती है उसी के कहना।

सम्मुच्चयगाथा

सलेस्सा णं भंते! नेरइया सव्वे समाहारगा? ओहियाणं, सलेस्साणं, सुक्कलेस्साणं, एएसि णं तिण्हं एक्को गमो, कण्हलेस्साणं नीललेस्साणं वि एक्को गमो नवरं वेयणाए मायिमिच्छादिट्ठीउववन्नगा य, अमायिसम्मदिट्ठीउववन्नगा य भाणियव्वा। मणुस्सा किरियासु सरागवीयरागपमत्तापमत्ता ण भाणियव्वा। काऊलेसाए वि एसेव गमो। नवरं नेरइए जहा ओहिए दंडए तहा भाणियव्वा, तेऊलेस्सा, पम्हलेसा जस्स अत्थि जहा ओहिओ दंडओ तहा भाणियव्वा। नवरं मणुस्सा सरागा य वीयरागा य न भाणियव्वा।

गाहा—दुक्खाउए उदिन्ने आहारे कम्मवन्न लेस्सा य।
समवेयण-समकिरिया समाउए चेव बोधव्वा॥

—भग० श १। उ २। प्र ६७। पृ० ३६३

·६२ लेश्या तथा प्रथम-अप्रथम :—

सलेस्से णं भंते! (पढमे–अपढमे) पुच्छा? गोयमा! जहा आहारए, एवं पुहुत्तेण वि, कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा एवं चेव, नवरं जस्स जा लेस्सा अत्थि। अलेस्से णं जीवमणुस्ससिद्धे जहा नोसन्नी-नोअसन्नी।

—भग० श १८। उ १। प्र० १०। पृ० ७६२

सलेशी जीव (एकवचन बहुवचन) प्रथम नहीं, अप्रथम है। इसी तरह कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी तक जानना। जिस जीव के जितनी लेश्याएँ हो उसी प्रकार कहना। अलेशी जीव (जीव-मनुष्य-सिद्ध) प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

·६३ सलेशी जीव चरम-अचरम :—

सलेस्सो जाव सुक्कलेस्सो जहा आहारओ, नवरं जस्स जा अत्थि [सव्वत्थ एगत्तेणं सिय चरिमे, सिय अचरिमे, पुहुत्तेणं चरिमा वि अचरिमा वि] अलेस्सो जहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नोसन्नी-नोअसन्नी [नोसन्नी-नोअसन्नी जीवपए सिद्धपए य अचरिमे मणुस्सपए चरिमे एगत्तपुहुत्तेणं]।

—भग० श १८। उ १। प्र २६। पृ० ७६३

सलेशी, कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी जीव सर्वत्र एकवचन की अपेक्षा कदाचित् चरम भी कदाचित् अचरम भी होता है। बहुवचन की अपेक्षा सलेशी यावत् शुक्ललेशी चरम भी होते हैं, अचरम भी। अलेशी जीवपद से तथा सिद्धपद से अचरम है तथा मनुष्यपद से चरम है एकवचन से भी, बहुवचन से भी।

·६४ सलेशी जीव की सलेशीत्व की अपेक्षा स्थिति :—

·६४·१ सलेशी जीव की स्थिति :—

सलेसे णं भंते ! सलेसेत्ति पुच्छा। गोयमा ! सलेसे दुविहे पन्नत्ते, तंजहा— अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

—पण्ण० प १८। द्वा ८। सू ६। पृ० ४५६

सलेशी जीव सलेशीत्व की अपेक्षा दो प्रकार के होते हैं। (१) अनादि अपर्यवसित तथा (२) अनादि सपर्यवसित।

·६४·२ कृष्णलेशी जीव की स्थिति :—

कण्हलेस्से णं भंते ! कण्हलेसेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं।

—पण्ण० प १८। द्वा ८। सू ६। पृ० ४५६

— जीवा० प्रति ६। सू २६६। पृ० २५८

कृष्णलेशी जीव की कृष्णलेशीत्व की अपेक्षा जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त की तथा उत्कृष्ट स्थिति साधिक अंतर्मुहूर्त तेंतीस सागरोपम की होती है।

·६४·३ नीललेशी जीव की स्थिति :—

(क) नीललेस्से णं भंते ! नीललेसेत्ति पुच्छा ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं पलिओवमासंखिज्जइभागमब्भहियाइं।

—पण्ण० प १८। द्वा ८। सू ६। पृ० ४५६

(ख) नीललेस्से णं भंते ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं।

—जीवा० प्रति ६। सू २६६। पृ० २५८

नीललेशी जीव की नीललेशीत्व की अपेक्षा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की तथा उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम की होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·६४·४ कापोतलेशी जीव की स्थिति :—

(क) काऊलेसे णं पुच्छा ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि सागरोवमाइं पलिओवमासंखिज्जइभागमब्भहियाइं ।

—पण्ण० प १८ । द्वा ८ । सू ६ । पृ० ४५६

(ख) काऊलेस्से णं भंते ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं ।

—जीवा० प्रति ६ । सू २६६ । पृ० २५८

कापोतलेशी जीव की कापोतलेशीत्व की अपेक्षा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की तथा उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की होती है ।

·६४·५ तेजोलेशी जीव की स्थिति :—

(क) तेऊलेसे णं पुच्छा ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं पलिओवमासंखिज्जइभागमब्भहियाइं ।

—पण्ण० प १८ । द्वा ८ । सू ६ । पृ० ४५६

ख) तेऊलेस्से णं भंते ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दोण्णिं सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं ।

—जीवा० प्रति ६ । सू २६६ । पृ० २५८

तेजोलेशी जीव की तेजोलेशीत्व की अपेक्षा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की तथा उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की होती है ।

·६४·६ पद्मलेशी जीव की स्थिति :—

(क) पम्हलेसे णं पुच्छा ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं ।

—पण्ण० प १८ । द्वा ८ । सू ६ । पृ० ४५६

(ख) पम्हलेस्से णं भंते ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं ।

—जीवा० प्रति ६ । सू २६६ । पृ० २५८

पद्मलेशी जीव की पद्मलेशीत्व की अपेक्षा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की तथा उत्कृष्ट स्थिति साधिक अन्तर्मुहूर्त दस सागरोपम की होती है ।

·६४·७ शुक्ललेशी जीव की स्थिति :—

(क) सुक्कलेसे णं पुच्छा ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं ।

—पण्ण० प १८ । द्वा ८ । सू ६ । पृ० ४५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) सुक्कलेस्से णं भंते ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अन्तोमुहुत्तमब्भहियाइं ।

—जीवा० प्रति ६ । सू २६६ । पृ० २५६

शुक्ललेशी जीव की शुक्ललेशीत्व की अपेक्षा जघन्य स्थिति अन्तर्मूहूर्त की तथा उत्कृष्ट स्थिति साधिक अन्तर्मुहूर्त तैंतीस सागरोपम की होती है ।

'६४'८ अलेशी जीव की स्थिति :—

(क) अलेस्से णं पुच्छा ? गोयमा ! साइए अपज्जवसिए ।

—पण्ण० प १८ । द्वा ८ । सू ६ । पृ० ४५६

(ख) अलेस्से णं भंते ? साइए अपज्जवसिए ।

—जीवा० प्रति ६ । सू २६६ । पृ० २५८

अलेशी जीव सादि अपर्यवसित होते हैं ।

'६५ सलेशी जीव का लेश्या की अपेक्षा अंतरकाल :—

'६५'१ कृष्णलेशी जीव का :—

कण्हलेसस्स णं भंते । अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं ।

—जीवा० प्रति ६ । सू २६६ । पृ० २५८

कृष्णलेशी जीव का कृष्णलेशीत्व की अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अन्तर्मुहूर्त तैंतीस सागरोपम का होता है ।

'६५'२ नीललेशी जीव का :—

एवं नीललेसस्स वि ।

—जीवा० प्रति ६ । सू २६६ । पृ० २५८

नीललेशी जीव का नीललेशीत्व की अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अन्तर्मुहूर्त तैंतीस सागरोपम का होता है ।

'६५'३ कापोतलेशी जीव का :—

(एवं) काऊलेसस्स वि ।

—जीवा० प्रति ६ । सू २६६ । पृ० २५८

कापोतलेशी जीव का कापोतलेशीत्व की अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अन्तर्मुहूर्त तैंतीस सागरोपम का होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·६५·४ तेजोलेशी जीव का :—

तेऊलेसस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतो-मुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

—जीवा० प्रति ६ । सू २६६ । पृ० २५८

तेजोलेशी जीव का तेजोलेशीत्व की अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल वनस्पति काल का अर्थात् अनंतकाल का होता है ।

·६५·५ पद्मलेशी जीव का :—

एवं पम्हलेसस्स वि सुक्कलेसस्स वि दोण्ह वि एवमंतरं ।

—जीवा० प्रति ६ । सू २६६ । पृ० २५८

पद्मलेशी जीव का पद्मलेशीत्व की अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल वनस्पति काल का होता है ।

·६५·६ शुक्ललेशी जीव का :—

देखो पाठ—·६५·५

शुक्ललेशी जीव का शुक्ललेशीत्व की अपेक्षा जघन्य अंतरकाल अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट अंतरकाल वनस्पतिकाल का होता है ।

·६५·७ अलेशी जीव का :—

अलेसस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ।

—जीवा० प्रति ६ । सू २६६ । पृ० २५८

अलेशी जीव का अन्तरकाल नहीं होता है ।

·६६ सलेशी जीव काल की अपेक्षा सप्रदेशी-अप्रदेशी :—

(कालादेसे णं किं सपएसा, अपएसा ?) सलेस्सा जहा ओहिया, कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा जहा आहारओ, नवरं जस्स अत्थि एयाओ, तेऊलेस्साए जीवाइओ तियभंगो, नवरं पुढविकाइएसु, आउवनस्सईसु छब्भंगा, पम्हलेस्स-सुक्कलेस्साए जीवाइओ तियभंगो। असेले(सीं)हिं जीव-सिद्धेहिं तियभंगो, मणुस्सेसु छब्भंगा ।

—भग० श ६ । उ ४ । प्र ५ । पृ० ४९६-९७

यहाँ काल की अपेक्षा से जीव सप्रदेशी है या अप्रदेशी—ऐसी पृच्छा है । काल की अपेक्षा से सप्रदेशी व अप्रदेशी का अर्थ टीकाकार ने एक समय की स्थिति वाले को अप्रदेशी तथा द्वयादि समय की स्थिति वाले को सप्रदेशी कहा है । इस सम्बंध में उन्होंने एक गाथा भी उद्धृत की है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो जस्स पढमसमए वट्टइ भावस्ससो उ अपएसो।
अण्णम्मि वट्टमाणो कालाएसेण सपएसो॥

सलेशी जीव (एकवचन) काल की अपेक्षा से नियमतः सप्रदेशी होता है। सलेशी नारकी काल की अपेक्षा से कदाचित् सप्रदेशी होता है, कदाचित् अप्रदेशी होता है। इसी प्रकार यावत् सलेशी वैमानिक देव तक समझना।

सलेशी जीव (एकवचन) काल की अपेक्षा से सप्रदेशी होता है क्योंकि सलेशी जीव अनादि काल से सलेशी जीव है। सलेशी नारकी उत्पन्न होने के प्रथम समय की अपेक्षा से अप्रदेशी कहलाता है तथा तत्पश्चात्-काल की अपेक्षा से सप्रदेशी कहलाता है।

सलेशी जीव (बहुवचन) काल की अपेक्षा से नियमतः सप्रदेशी होते हैं क्योंकि सर्व सलेशी जीव अनादि काल से सलेशी जीव हैं। दंडक के जीवों का बहुवचन से विवेचन करने से काल की अपेक्षा से सप्रदेशी-अप्रदेशी के निम्नलिखित छः भंग होते हैं :—

(१) सर्व सप्रदेशी, अथवा (२) सर्व अप्रदेशी, अथवा (३) एक सप्रदेशी, एक अप्रदेशी, अथवा (४) एक सप्रदेशी, अनेक अप्रदेशी, अथवा (५) अनेक सप्रदेशी, एक अप्रदेशी, अथवा (६) अनेक सप्रदेशी, अनेक अप्रदेशी।

सलेशी नारकियों यावत् स्तनितकुमारों में तीन भंग होते हैं, यथा—प्रथम, अथवा पंचम, अथवा षष्ठ। सलेशी पृथ्वीकायिकों यावत् वनस्पतिकायिकों में छठा विकल्प होता है। सलेशी द्वीन्द्रियों यावत् वैमानिक देवों में प्रथम, अथवा पंचम, अथवा षष्ठ विकल्प होता है।

कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी जीव (एकवचन) कदाचित् सप्रदेशी होता है, कदाचित् अप्रदेशी होता है। कृष्णलेशी-नीललेशी-कापोतलेशी नारकी यावत् वानव्यंतर देव कदाचित् सप्रदेशी, कदाचित् अप्रदेशी होता है। कृष्णलेशी-नीललेशी-कापोतलेशी जीव (बहुवचन) अनेक सप्रदेशी, अनेक अप्रदेशी होते हैं। कृष्णलेशी-नीललेशी-कापोतलेशी नारकियों यावत् वानव्यंतर देवों (एकेन्द्रिय बाद) में प्रथम, अथवा पाँचवाँ, अथवा छठा विकल्प होता है। कृष्णलेशी–नीललेशी-कापोतलेशी एकेन्द्रिय (बहुवचन) अनेक सप्रदेशी, अनेक अप्रदेशी होते हैं।

तेजोलेशी जीव (एकवचन) कदाचित् सप्रदेशी, कदाचित् अप्रदेशी होता है। तेजोलेशी असुरकुमार यावत् वैमानिक देव (अग्निकायिक, वायुकायिक, तीन विकलेन्द्रिय बाद) कदाचित् सप्रदेशी, कदाचित् अप्रदेशी होता है। तेजोलेशी जीवों (बहुवचन) में पहला, अथवा पाँचवाँ अथवा छठा विकल्प होता है। तेजोलेशी असुरकुमारों यावत् वैमानिक देवों, (पृथ्वीकायिकों, अप्कायिकों, वनस्पतिकायिकों को छोड़कर) में पहला अथवा पाँचवाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा छठा विकल्प होता है। तेजोलेशी पृथ्वीकायिकों, अप्कायिकों, वनस्पतिकायिकों में छओं विकल्प होते हैं।

पद्मलेशी-शुक्ललेशी जीव (एकवचन) कदाचित् सप्रदेशी, कदाचित् अप्रदेशी होता है। पद्मलेशी-शुक्ललेशी तिर्यंचपंचेन्द्रिय, मनुष्य, वैमानिक देव कदाचित् सप्रदेशी होते हैं, कदाचित् अप्रदेशी होते हैं। पद्मलेशी-शुक्ललेशी जीवों (बहुवचन) में पहला अथवा पाँचवाँ अथवा छठा विकल्प होता है। पद्मलेशी-शुक्ललेशी तिर्यंचपंचेन्द्रिय, मनुष्य, वैमानिक देवों में पहला अथवा पाँचवाँ अथवा छठा विकल्प होता है।

अलेशी जीव (एकवचन) कदाचित् सप्रदेशी, कदाचित् अप्रदेशी होता है। अलेशी सिद्ध, मनुष्य कदाचित् सप्रदेशी, कदाचित् अप्रदेशी होता है। अलेशी जीव (बहुवचन) में पहला अथवा पाँचवाँ अथवा छठा विकल्प होता है। अलेशी सिद्धों में पहला अथवा पाँचवाँ अथवा छठा विकल्प होता है। अलेशी मनुष्यों में छओं विकल्प होते हैं।

·६७ सलेशी जीव के लेश्या की अपेक्षा उत्पत्ति-मरण के नियम :—

·६७·१ लेश्या की अपेक्षा जीव-दंडक में उत्पत्ति-मरण के नियम :—

से नूणं भंते ! कण्हलेसे नेरइए कण्हलेसेसु नेरइएसु उववज्जइ, कण्हलेसे उववट्टइ, जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उववट्टइ ? हंता गोयमा ! कण्हलेसे नेरइए कण्हलेसेसु नेरइएसु उववज्जइ, कण्हलेसे उववट्टइ, जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उववट्टइ, एवं नीललेसे वि, एवं काऊलेसे वि। एवं असुरकुमाराण वि जाव थणियकुमारा, नवरं लेसा अब्भहिया। से नूणं भंते ! कण्हलेसे पुढविकाइए कण्हलेसेसु पुढविकाइएसु उववज्जइ, कण्हलेसे उव्वट्टइ, जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उववट्टइ ? हंता गोयमा ! कण्हलेसे पुढविकाइए कण्हलेसेसु पुढविकाइएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेसे उववट्टइ, सिय नीललेसे उववट्टइ, सिय काऊलेसे उववट्टइ, सिय जल्लेसे उववज्जइ सिय तल्लेसे उववट्टइ। एवं नील-काऊलेसासु वि। से नूणं भंते ! तेऊलेसेसु पुढविकाइएसु उववज्जइ पुच्छा ? हंता गोयमा ! तेऊलेसे पुढविकाइए तेऊलेसेसु पुढविकाइएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेसे उववट्टइ, सिय नीललेसे उववट्टइ, सिय काऊलेसे उववट्टइ. तेऊलेसे उववज्जइ, नो चेव णं तेऊलेसे उववट्टइ। एवं आउकाइया वणस्सइकाइया वि। तेउवाउ एवं चेव, नवरं एएसिं तेऊलेसा नत्थि। बितियचउरिंदिया एवं चेव तिसु लेसासु। पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य जहा पुढविकाइया आइल्लिया तिसु लेसासु भणिया तहा छसु वि लेसासु भाणियव्वा, नवरं छप्पि लेसाओ चारेयव्वाओ। वाणमंतरा जहा असुर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुमारा। से नूणं भंते ! तेऊलेस्से जोइसिए तेऊलेस्सेसु जोइसिएसु उववज्जइ ? जहेव असुरकुमारा। एवं वेमाणिया वि, नवरं दोण्हं पि चयंतीति अभिलावो।

—पण्ण० प १७। उ ३। सू २७। पृ० ४४३

यह निश्चित है कि कृष्णलेशी नारकी कृष्णलेशी नारकी में उत्पन्न होता है, कृष्णलेशी रूप में ही मरण को प्राप्त होता है। जिस लेश्या में वह उत्पन्न होता है, उसी लेश्या में मरण को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार नीललेशी नारकी भी नीललेशी नारकी में उत्पन्न होता है तथा नीललेशी रूप में ही मरण को प्राप्त होता है। जिस लेश्या में वह उत्पन्न होता है, उसी लेश्या में मरण को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार कापोतलेशी नारकी भी कापोतलेशी नारकी में उत्पन्न होता है तथा कापोतलेशी रूप में ही मरण को प्राप्त होता है। जिस लेश्या में वह उत्पन्न होता है, उसी लेश्या में मरण को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों के संबंध में कहना; लेकिन लेश्या— कृष्ण, नील, कापोत, तेजो कहनी।

यह निश्चित है कि कृष्णलेशी पृथ्वीकायिक जीव कृष्णलेशी पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होता है तथा कदाचित् कृष्णलेशी होकर, कदाचित् नीललेशी होकर, कदाचित् कापोतलेशी होकर मरण को प्राप्त होता है। कदाचित् जिस लेश्या में उत्पन्न होता है, कदाचित् उसी लेश्या में मरण को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार नीललेशी तथा कापोतलेशी पृथ्वीकायिक जीव के सम्बन्ध में वर्णन करना।

तेजोलेशी पृथ्वीकायिक जीव तेजोलेशी पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होता है तथा कदाचित् कृष्णलेशी होकर, कदाचित् नीललेशी होकर, कदाचित् कापोतलेशी होकर मरण को प्राप्त होता है। तेजोलेश्या में वह उत्पन्न होता है लेकिन मरण को प्राप्त नहीं होता है।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीव की तरह अप्कायिक जीव तथा वनस्पतिकायिक जीव के सम्बन्ध में चारों लेश्याओं का वर्णन करना।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीव की तरह अग्निकायिक जीव एवं वायुकायिक जीव के सम्बन्ध में तीन लेश्याओं का ही वर्णन करना ; क्योंकि इनमें तेजोलेश्या नहीं होती है।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीव की तरह द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव के सम्बन्ध में तीन लेश्याओं का ही वर्णन करना।

तिर्यंचपंचेन्द्रिय तथा मनुष्य के सम्बन्ध में वैसा ही कहना जैसा पृथ्वीकायिक जीव के सम्बन्ध में आदि की तीन लेश्या को लेकर कहा ; परन्तु छः लेश्याओं का वर्णन करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वानव्यंतर देव के सम्बन्ध में असुरकुमार की तरह कहना।

यह निश्चित है कि तेजोलेशी ज्योतिषी देव तेजोलेशी ज्योतिषी देव में उत्पन्न होता है तथा तेजोलेशी रूप में च्यवन (मरण) को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार तेजोलेशी वैमानिक देव तेजोलेशी वैमानिक देव में उत्पन्न होता है तथा तेजोलेशी रूप में च्यवन को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार पद्मलेशी वैमानिक देव पद्मलेशी वैमानिक देव में उत्पन्न होता है तथा पद्मलेशी रूप में च्यवन को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार शुक्ललेशी वैमानिक देव शुक्ललेशी वैमानिक देव में उत्पन्न होता है तथा शुक्ललेशी रूप में च्यवन को प्राप्त होता है। वैमानिक देव जिस लेश्या में उत्पन्न होता है उसी लेश्या में च्यवन को प्राप्त होता है।

से नूणं भंते! कण्हलेसे नीललेसे काऊलेसे नेरइए कण्हलेसेसु नीललेसेसु काऊलेसेसु नेरइएसु उववज्जइ, कण्हलेसे नीललेसे काऊलेसे उववट्टइ, जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उववट्टइ? हंता गोयमा! कण्हनीलकाऊलेसे उववज्जइ, जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उववट्टइ। से नूणं भंते! कण्हलेसे जाव तेऊलेसे असुरकुमारे कण्हलेसेसु जाव तेऊलेसेसु असुरकुमारेसु उववज्जइ? एवं जहेव नेरइए तहा असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा वि। से नूणं भंते! कण्हलेसे जाव तेऊलेसे पुढविक्काइए कण्हलेसेसु जाव तेऊलेसेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ? एवं पुच्छा जहा असुरकुमाराणं। हंता गोयमा! कण्हलेसे जाव तेऊलेसे पुढविक्काइए कण्हलेसेसु जाव तेऊलेसेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेसे उववट्टइ, सिय नीललेसे, सिय काऊलेसे उववट्टइ, सिय जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उववट्टइ, तेऊलेसे उववज्जइ, नो चेव णं तेऊलेसे उववट्टइ। एवं आउकाइया वणस्सइकाइया वि भाणियव्वा। से नूणं भंते! कण्हलेसे नीललेसे काऊलेसे तेउकाइए कण्हलेसेसु नीललेसेसु काऊलेसेसु तेऊकाइएसु उववज्जइ, कण्हलेसे नीललेसे काऊलेसे उववट्टइ, जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उववट्टइ? हंता गोयमा! कण्हलेसे नीललेसे काऊलेसे तेऊकाइए कण्हलेसेसु नीललेसेसु काऊलेसेसु तेऊकाइएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेसे उववट्टइ, सिय नीललेसे उववट्टइ, सिय काऊलेसे उववट्टइ, सिय जल्लेसे उववज्जइ तल्लेसे उववट्टइ। एवं वाउकाइयबेइंदियतेइंदियचउरिंदिया वि भाणियव्वा। से नूणं भंते! कण्हलेसे जाव सुक्कलेसे पंचेंदियतिरिक्खजोणिए कण्हलेसेसु जाव सुक्कलेसेसु पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ पुच्छा। हंता गोयमा! कण्हलेसे जाव सुक्कलेसे पंचेंदियतिरिक्खजोणिए कण्हलेसेसु जाव सुक्कलेसेसु पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेसे उववट्टइ जाव सिय सुक्कलेसे उववट्टइ, सिय जल्लेसे उववज्जइ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तल्लेसे उववट्टइ। एवं मणूसे वि। वाणमंतरा जहा असुरकुमारा। जोइसिय-वेमाणिया वि एवं चेव, नवरं जस्स जल्लेसा। दोण्ह वि 'चयणं' ति भाणियव्वं।

—पण्ण० प १७। उ ३। सू २८। पृ० ४४३-४४

कृष्णलेशी, नीललेशी तथा कापोतलेशी नारकी क्रमशः कृष्णलेशी, नीललेशी तथा कापोतलेशी नारकी में उत्पन्न होता है तथा कृष्णलेश्या, नीललेश्या तथा कापोतलेश्या में मरण को प्राप्त होता है। जिस लेश्या में वह उत्पन्न होता है उसी लेश्या में मरण को प्राप्त होता है।

कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी तथा तेजोलेशी असुरकुमार क्रमशः कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी तथा तेजोलेशी असुरकुमार में उत्पन्न होता है, तथा जिस लेश्या में उत्पन्न होता है उसी लेश्या में मरण को प्राप्त होता है। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक कहना।

कृष्णलेशी यावत् तेजोलेशी पृथ्वीकायिक क्रमशः कृष्णलेशी यावत् तेजोलेशी पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होता है; तथा कदाचित् कृष्णलेश्या में, कदाचित् नीललेश्या में तथा कदाचित् कापोतलेश्या में मरण को प्राप्त होता है। कदाचित् जिस लेश्या में वह उत्पन्न होता है उसी लेश्या में मरण को प्राप्त होता है। वह तेजोलेश्या में उत्पन्न होता है परन्तु तेजोलेश्या में मरण को प्राप्त नहीं होता है।

इसी प्रकार अप्कायिक तथा वनस्पतिकायिक जीवों के संबन्ध में कहना।

कृष्णलेशी, नीललेशी तथा कापोतलेशी अग्निकायिक क्रमशः कृष्णलेशी, नीललेशी तथा कापोतलेशी अग्निकायिक में उत्पन्न होता है। वह कदाचित् कृष्णलेश्या में, कदाचित् नीललेश्या में तथा कदाचित् कापोतलेश्या में मरण को प्राप्त होता है। कदाचित् जिस लेश्या में वह उत्पन्न होता है, उसी लेश्या में मरण को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, तथा चतुरिन्द्रिय के सम्बन्ध में कहना।

कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी तिर्यंचपंचेन्द्रिय कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में उत्पन्न होता है। वह कदाचित् कृष्णलेश्या में कदाचित् शुक्ललेश्या में मरण को प्राप्त होता है; कदाचित् जिस लेश्या में उत्पन्न होता है उसी लेश्या में मरण को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार मनुष्य के सम्बन्ध में कहना।

वानव्यंतर देव के विषय में भी वैसा ही कहना, जैसा असुरकुमार के सम्बन्ध में कहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार ज्योतिषी तथा वैमानिक देवों के सम्बन्ध में कहना। लेकिन जिसके जो लेश्या हो, वही कहनी। ज्योतिषी तथा वैमानिक देवों के मरण के स्थान पर च्यवन शब्द का प्रयोग करना।

तदेवमेकैकलेश्याविषयाणि चतुर्विंशतिदंडकक्रमेण नैरयिकादीनां सूत्राण्युक्तानि। तत्र कश्चिदाशंकेत – प्रविरलैकैकनारकादिविषयमेतत् सूत्रकदम्बकं, यदा तु बहवो भिन्नलेश्याकास्तस्यां गतावुत्पद्यन्ते तदाऽन्याऽपि वस्तुगतिर्भवेत्, एकैकगतधर्मापेक्षया समुदायधर्मस्य क्वचिदन्यथाऽपि दर्शनात्। ततस्तदाशंकाऽपनोदाय येषां यावत्यो लेश्याः सम्भवन्ति तेषां युगपत्तावलेश्याविषयमेकैकं सूत्रमनन्तरोदितार्थमेव प्रतिपादयति —'से नूणं भंते ! कण्हलेसे नीललेसे काऊलेसे नेरइए कण्हलेसेसु नीललेसेसु काऊलेसेसु नेरइएसु उववज्जइ' इत्यादि, समस्तं सुगमं।

—पण्ण० प २७। उ ३। सू २८ टीका

इस प्रकार एक-एक लेश्या के सम्बन्ध में चौबीस दंडक के क्रम से नारकी आदि के सम्बन्ध में सूत्र कहने। उसमें यदि कोई यह आशंका करे कि विरल एक-एक नारकी के सम्बन्ध में यह सूत्र-समूह है तथा यदि भिन्न-भिन्न लेश्यावाले बहुत नारकी आदि उस गति में एक साथ उत्पन्न हों तो वस्तुस्थिति अन्यथा भी हो सकती है; क्योंकि एक-एक व्यक्ति के धर्म की अपेक्षा समुदाय का धर्म क्वचित् अन्यथा भी जाना जाता है। अतः इस आशंका को दूर करने के लिए जिसमें जितनी लेश्याएं सम्भव हों उतनी लेश्याओं को एक साथ लेकर एक-एक सूत्र उपर्युक्त पाठ में कहा है।

'६७'२ एक लेश्या से परिणमन करके दूसरी लेश्या में उत्पत्ति :—

'६७'२'१—नारकी में उत्पत्ति :—

से नूणं भंते! कण्हलेस्से नीललेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ? हंता गोयमा ! कण्हलेस्से जाव उववज्जंति से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—कण्हलेस्से जाव उववज्जंति ? गोयमा ! लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु संकिलिस्समाणेसु कण्हलेस्सं परिणमइ कण्हलेस्सं परिणमइत्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति, से तेणट्ठेणं जाव – उववज्जंति।

से नूणं भंते ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ? हंता गोयमा ! जाव उववज्जंति, से केणट्ठेणं जाव उववज्जंति ? गोयमा ! लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्समाणेसु वा विसुज्झमाणेसु वा नीललेस्सं परिणमइ नीललेस्सं परिणमइत्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव –उववज्जंति।

से नूणं भंते ! कण्हलेस्से नीललेस्से जाव –भवित्ता काऊलेस्सेसु नेरइएसु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उववज्जंति ? एवं जहा नीललेस्साए तहा काऊलेस्साए वि भाणियव्वा जाव—से तेणट्ठेणं जाव उववज्जंति।

—भग० श १३। उ १। प्र १६-२१। पृ ६७६

कृष्णलेशी, नीललेशी यावत् शुक्ललेशी जीव लेश्यास्थान से संक्लिष्ट होते-होते कृष्णलेश्या में परिणमन करता हुआ कृष्णलेश्या में परिणमन करके कृष्णलेशी नारकी में उत्पन्न होता है।

कृष्णलेशी, नीललेशी यावत् शुक्ललेशी जीव लेश्या स्थान से संक्लिष्ट अथवा विशुद्ध होते-होते नीललेश्या में परिणमन करता हुआ नीललेश्या में परिणमन करके नीललेशी नारकी में उत्पन्न होता है।

कृष्णलेशी, नीललेशी यावत् शुक्ललेशी जीव लेश्यास्थान से संक्लिष्ट अथवा विशुद्ध होते-होते कापोतलेश्या में परिणमन करता हुआ कापोतलेश्या में परिणमन कर के कापोतलेशी नारकी में उत्पन्न होता है।

'६७'२'२ देवों में उत्पत्ति :—

से नूणं भंते! कण्हलेस्से नील जाव सुक्कलेस्से भवित्ता कण्हलेस्सेसु देवेसु उववज्जंति? हंता गोयमा! एवं जहेव नेरइएसु पढमे उद्देसए तहेव भाणियव्वं, नीललेस्साए वि जहेव नेरइयाणं जहा नीललेस्साए एवं जाव पम्हलेस्सेसु, सुक्कलेस्सेसु एवं चेव, नवरं लेस्सट्ठाणेसु विसुज्झमाणेसु विसुज्झमाणेसु सुक्कलेस्सं परिणमइ सुक्कलेस्सं परणमइत्ता सुक्कलेस्सेसु देवेसु उववज्जंति, से तेणट्ठेणं जाव—उववज्जंति।

—भग० श १३। उ २।। प्र १५। पृ० ६८१

कृष्णलेशी, नीललेशी, यावत् शुक्ललेशी जीव लेश्यास्थान से संक्लिष्ट होते-होते कृष्णलेश्या में परिणमन करता हुआ कृष्णलेश्या में परिणमन करके कृष्णलेशी देवों में उत्पन्न होता है।

कृष्णलेशी, नीललेशी यावत् शुक्ललेशी जीव लेश्यास्थान से संक्लिष्ट अथवा विशुद्ध होते-होते नीललेश्या में परिणमन करता हुआ नीललेश्या में परिणमन करके नीललेशी देव में उत्पन्न होता है।

कृष्णलेशी, नीललेशी यावत् शुक्ललेशी जीव लेश्यास्थान से संक्लिष्ट अथवा विशुद्ध होते-होते कापोतलेश्या में परिणमन करता हुआ कापोतलेश्या में परिणमन करके कापोतलेशी देवों में उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार तेजोलेश्या, पद्मलेश्या तथा शुक्ललेश्या के संबंध से जानना। लेकिन इतनी विशेषता है कि लेश्यास्थान से विशुद्ध होते-होते शुक्ललेश्या में परिणमन करता हुआ शुक्ललेश्या में परिणमन करके शुक्ललेशी देवों में उत्पन्न होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·६८ समय व संख्या की अपेक्षा सलेशी जीव की उत्पत्ति, मरण और अवस्थिति :—

·६८·१ नरक पृथिवियों में :—

गमक १—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावास-सयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएणं ××× केवइया काऊलेस्सा उववज्जंति ×× जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा काऊलेस्सा उववज्जंति।

गमक २—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएणं ××× केवइया काऊलेस्सा उववट्टंति ××× जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा नेरइया उववट्टंति, एवं जाव सन्नी, असन्नी न उववट्टंति।

गमक ३—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्ज वित्थडेसु नरएसु ××× केवइया काऊलेस्सा पन्नत्ता? ××× गोयमा! ××× संखेज्जा काऊलेस्सा पन्नत्ता।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु असंखेज्ज-वित्थडेसु नरएसु ××× एवं जहेव संखेज्जवित्थडेसु तिन्नि गमगा तहा असंखेज्ज-वित्थडेसु तिन्नि गमगा। नवरं असंखेज्जा भाणियव्वा ××× नाणत्तं लेस्सासु लेस्साओ जहा पढमसए।

सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए केवइया निरयावास० पुच्छा? गोयमा! पणवीसं निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता, ते णं भंते! किं संखेज्जवित्थडा असंखेज्जवित्थडा? एवं जहा रयणप्पभाए तहा सक्करप्पभाएवि, नवरं असन्नी तिसु वि गमएसु न भन्नइ, सेसं तं चेव।

वालुयप्पभाए णं पुच्छा? गोयमा! पन्नरस निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता, सेसं जहा सक्करप्पभाए नाणत्तं लेस्सासु लेस्साओ जहा पढमसए।

पंकप्पभाए णं पुच्छा? गोयमा! दस निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता, एवं जहा सक्करप्पभाए नवरं ओहिनाणी ओहिदंसणी य न उव्वट्टंति, सेसं तं चेव।

धूमप्पभाए णं पुच्छा? गोयमा! तिन्नि निरयावाससयसहस्सा एवं जहा पंकप्पभाए।

तमाए णं भंते! पुढवीए केवइया निरयावास० पुच्छा? गोयमा! एगे पंचूणे निरयावाससयसहस्से पन्नत्ते, सेसं जहा पंकप्पभाए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालया जाव महानिरएसु संखेज्जवित्थडे नरए एगसमएणं केवइया उववज्जंति ? एवं जहा पंकप्पभाए नवरं तिसु नाणेसु न उववज्जंति न उव्वट्टंति, पन्नत्तएसु तहेव अत्थि, एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि नवरं असंखेज्जा भाणियव्वा ।

—भग० श १३ । उ १ । प्र ४ से १४ । पृ० ६७६ से ६७८

रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में जो संख्यात विस्तार वाले हैं उनमें एक समय में जघन्य से एक, दो, अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात कापोतलेशी नारकी उत्पन्न (गमक १) होते हैं ; जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात कापोतलेशी नारकी मरण (ग० २) को प्राप्त होते हैं ; तथा संख्यात कापोतलेशी नारकी एक समय में अवस्थित (ग० ३) रहते हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में जो असंख्यात विस्तार वाले हैं उनमें एक समय में जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से असंख्यात कापोतलेशी नारकी उत्पन्न (ग० १) होते हैं ; जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से असंख्यात कापोतलेशी नारकी मरण (ग० २) को प्राप्त होते हैं ; तथा असंख्यात कापोतलेशी नारकी एक समय में अवस्थित (ग० ३) रहते हैं।

शर्कराप्रभा पृथ्वी के पचीस लाख नरकावासों के सम्बन्ध में रत्नप्रभा पृथ्वी की तरह तीन संख्यात व तीन असंख्यात के गमक कहने ।

बालुकाप्रभा पृथ्वी के पन्द्रह लाख नरकावासों के सम्बन्ध में, जैसा शर्कराप्रभा पृथ्वी के आवासों के सम्बन्ध में कहा, वैसा ही कहना। लेकिन लेश्या—कापोत और नील कहनी ।

पंकप्रभा पृथ्वी के दस लाख नरकावासों के सम्बन्ध में, जैसा शर्कराप्रभा पृथ्वी के आवासों के सम्बन्ध में कहा, वैसा ही कहना । लेकिन लेश्या—नील कहनी ।

धूमप्रभा पृथ्वी के तीन लाख नरकावासों के सम्बन्ध में, जैसा पंकप्रभा पृथ्वी के आवासों के सम्बन्ध में कहा, वैसा ही कहना । लेकिन लेश्या—नील और कृष्ण कहनी ।

तमप्रभा पृथ्वी के पंच न्यून एक लाख नरकावासों के सम्बन्ध में, जैसा पंकप्रभा पृथ्वी के आवासों के सम्बन्ध में कहा, वैसा ही कहना । लेकिन लेश्या—कृष्ण कहनी ।

तमतमाप्रभा पृथ्वी के पाँच नरकावासों में जो अप्रतिष्ठान नाम का संख्यात विस्तार वाला नरकावास है उसमें एक समय में जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात परम कृष्णलेशी उत्पन्न (ग० १) होते हैं ; जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात परम कृष्णलेशी मरण (ग० २) को प्राप्त होते हैं ; तथा संख्यात परम कृष्णलेशी नारकी एक समय में अवस्थित (ग० ३) रहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तमतमाप्रभा पृथ्वी के जो चार असंख्यात विस्तार वाले नरकावास हैं उनमें एक समय में जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से असंख्यात परम कृष्णलेशी नारकी उत्पन्न (ग० १) होते हैं ; जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से असंख्यात परम कृष्णलेशी नारकी मरण (ग० २) को प्राप्त होते हैं ; तथा एक समय में असंख्यात परम कृष्णलेशी नारकी अवस्थित (ग० ३) रहते हैं।

सातवीं नरक का अप्रतिष्ठान नरकावास एक लाख योजन विस्तार वाला है तथा बाकी चार नरकावास असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। देखो—जीवा० प्रति ३। उ २। सू ८२। पृ० १३८, तथा ठाण० स्था ४। उ ३। सू ३२६। पृ० २४६।

'६८'२ देवावासों में :—

चोसट्ठीए णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु असुर-कुमारावासेसु एगसमएणं × × × केवइया तेऊलेस्सा उववज्जंति × × × एवं जहा रयणप्पभाए तहेव पुच्छा, तहेव वागरणं। × × × उव्वट्टंतगा वि तहेव × × × तिसु वि गमएसु संखेज्जेसु चत्तारि लेस्साओ भाणियव्वाओ, एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि नवरं तिसु वि गमएसु असंखेज्जा भाणियव्वा। प्र ४।

केवइया णं भंते ! नागकुमारावास० एवं जाव थणियकुमारावास० नवरं जत्थ जत्तिया भवणा। प्र ५।

संखेज्जेसु णं भंते ! वाणमंतरावाससयसहस्सेसु एगसमएणं केवइया वाण-मंतरा उववज्जंति ? एवं जहा असुरकुमाराणं संखेज्जवित्थडेसु तिन्नि गमगा तहेव भाणियव्वा, वाणमंतराण वि तिन्नि गमगा। प्र ७।

केवइया णं भंते ! जोइसियविमाणावासयसहस्सा पन्नत्ता ? गोयमा ! असंखेज्जा जोइसियविमाणावाससयसहस्सा पन्नत्ता, ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा०? एवं जहा वाणमंतराणं तहा जोइसियाण वि तिन्नि गमगा भाणियव्वा नवरं एगा तेऊलेस्सा। प्र ८।

सोहम्मे णं भंते ! कप्पे बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु विमाणेसु एगसमएणं केवइया × × × तेऊलेस्सा उववज्जंति ? × × × एवं जहा जोइसियाणं तिन्नि गमगा तहेव तिन्नि गमगा भाणियव्वा नवरं तिसु वि संखेज्जा भाणियव्वा। × × × असंखेज्जवित्थडेसु एवं चेव तिन्नि गमगा, नवरं तिसु वि गम-एसु असंखेज्जा भाणियव्वा। × × × एवं जहा सोहम्मे वत्तव्वया भणिया तहा ईसाणे वि छ गमगा भाणियव्वा। सणंकुमारे (वि) एवं चेव × × × एवं जाव सहस्सारे, नाणत्तं विमाणेसु लेस्सासु य, सेसं तं चेव। प्र १०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(आणय-पाणएसु) एवं संखेज्जवित्थडेसु तिन्नि गमगा जहा सहस्सारे; असंखेज्जवित्थडेसु उववज्जंतेसु य चयंतेसु य एवं चेव संखेज्जा भाणियव्वा। पन्नत्तेसु असंखेज्जा, ××× आरणच्चुएसु एवं चेव जहा आणयपाणएसु नाणत्तं विमाणेसु एवं गेवेज्जगा वि। प्र ११।

पंचसु णं भंते! अणुत्तरविमाणेसु संखेज्जवित्थडे विमाणे एगसमएणं ××× केवइया सुक्कलेस्सा उववज्जंति पुच्छा तहेव, गोयमा! पंचसु णं अणुत्तरविमाणेसु संखेज्जवित्थडे अणुत्तरविमाणे एगसमएणं जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा अणुत्तरोववाइया देवा उववज्जंति, एवं जहा गेवेज्जविमाणेसु संखेज्जवित्थडेसु। ××× असंखेज्जवित्थडेसु वि एए न भन्नंति नवरं अचरिमा अत्थि, सेसं जहा गेवेज्जएसु असंखेज्जवित्थडेसु। प्र १३।

—भग० श १३। उ २। प्र ४-१३। पृ० ६८०-८१

असुरकुमार के चौंसठ लाख आवासों में जो संख्यात विस्तार वाले हैं, उनमें एक समय में जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात तेजोलेशी असुरकुमार उत्पन्न (ग० १) होते हैं; जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात तेजोलेशी असुरकुमार मरण (ग० २) को प्राप्त होते हैं; तथा संख्यात तेजोलेशी असुरकुमार एक समय में अवस्थित (ग० ३) रहते हैं।

ऐसे ही तीन-तीन गमक कृष्ण, नील तथा कापोत लेश्या के सम्बन्ध में कहने।

असुरकुमार के चौंसठ लाख आवासों में जो असंख्यात विस्तार वाले हैं, उनमें एक समय में जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से असंख्यात तेजोलेशी असुरकुमार उत्पन्न (ग० १) होते हैं; जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से असंख्यात तेजोलेशी असुरकुमार मरण (ग० २) को प्राप्त होते हैं; तथा असंख्यात तेजोलेशी एक समय में अवस्थित (ग० ३) रहते हैं।

ऐसे ही तीन-तीन गमक कृष्ण, नील तथा कापोत लेश्या के सम्बन्ध में कहने।

नागकुमार से स्तनितकुमार तक के देवावासों के सम्बन्ध में असुरकुमार के देवावासों की तरह तीन संख्यात के तथा तीन असंख्यात के गमक, इस प्रकार चारों लेश्याओं पर छः छः गमक कहने। परन्तु जिसके जितने भवन होते हैं उतने समझने चाहिए।

वानव्यंतर के जो संख्यात लाख विमान हैं वे सभी संख्यात विस्तार वाले हैं। उनमें एक समय में जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात तेजोलेशी वानव्यंतर उत्पन्न (ग० १) होते हैं; जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात तेजोलेशी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वानव्यंतर मरण (ग० २) को प्राप्त होते हैं ; तथा संख्यात तेजोलेशी वानव्यंतर एक समय में अवस्थित (ग० ३) रहते हैं।

ऐसे ही तीन-तीन गमक कृष्ण, नील तथा कापोतलेश्या के सम्बन्ध में कहने।

ज्योतिषी देवों के जो असंख्यात विमान हैं वे सभी संख्यात विस्तार वाले हैं। उनके सम्बन्ध में तेजोलेश्या को लेकर उत्पत्ति, च्यवन (मरण) तथा अवस्थिति के तीन गमक वानव्यंतर देवों की तरह कहने।

सौधर्मकल्प देवलोक के बत्तीस लाख विमानों में जो संख्यात विस्तार वाले हैं उनमें उत्पत्ति, च्यवन तथा अवस्थिति के तीन गमक एक तेजोलेश्या को लेकर ज्योतिषी विमानों की तरह कहने।

सौधर्मकल्प देवलोक के बत्तीस लाख विमानों में जो असंख्यात विस्तार वाले हैं, उनमें उत्पत्ति, च्यवन तथा अवस्थिति के तीन गमक एक तेजोलेश्या को लेकर कहने। इन तीनों गमकों में उत्कृष्ट में असंख्यात कहना।

ईशानकल्प देवलोक के विमानों के सम्बन्ध में सौधर्मकल्प की तरह तीन संख्यात तथा तीन असंख्यात के, इस प्रकार छः गमक कहने।

इसी प्रकार सनत्कुमार से सहस्रार देवलोक तक के विमानों के सम्बन्ध में तीन संख्यात तथा तीन असंख्यात के, इस प्रकार छः गमक कहने। लेकिन लेश्या में नानात्व कहना अर्थात् सनत्कुमार से ब्रह्मलोक तक पद्म तथा लांतक से सहस्रार तक शुक्ललेश्या कहनी।

आनत तथा प्राणत के जो संख्यात विस्तार वाले विमान हैं उनमें सहस्रार देवलोक की तरह शुक्ललेश्या को लेकर उत्पत्ति, च्यवन तथा अवस्थिति के तीन गमक कहने। जो असंख्यात विस्तारवाले विमान हैं, उनमें एक समय में जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात उत्पन्न (ग० १) होते हैं ; एक समय में जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात च्यवन (ग० २) को प्राप्त होते हैं ; तथा एक समय में असंख्यात अवस्थित (ग० ३) रहते हैं।

आरण तथा अच्युत विमानावासों में, जैसे आनत तथा प्राणत के विषय में कहा, वैसे ही छः छः गमक कहने।

इसी प्रकार ग्रैवेयक विमानावासों के सम्बन्ध में शुक्ललेश्या पर छः गमक आनत-प्राणत की तरह कहने।

पंच अनुत्तर विमानों में जो चार (विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित) असंख्यात विस्तार वाले हैं उनमें एक समय में जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात शुक्ललेशी अनुत्तर विमानावासी देव उत्पन्न (ग० १) होते हैं ; जघन्य से एक,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात शुक्ललेशी अनुत्तर विमानावासी देव च्यवन (ग० २) को प्राप्त होते हैं ; तथा असंख्यात शुक्ललेशी अनुत्तर विमानावासी देव अवस्थित (ग० ३) रहते हैं।

सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमान जो संख्यात विस्तार वाला है उसमें एक समय में जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात शुक्ललेशी अनुत्तर विमानावासी देव उत्पन्न (ग० १) होते हैं ; जघन्य से एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट से संख्यात शुक्ललेशी अनुत्तर विमानावासी देव च्यवन (ग० २) को प्राप्त होते हैं ; तथा संख्यात शुक्ललेशी अनुत्तर विमानावासी देव अवस्थित (ग० ३) रहते हैं।

अनुत्तर विमान का सर्वार्थसिद्ध विमान एक लाख योजन विस्तार वाला है तथा बाकी चार अनुत्तर विमान असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। देखो—जीवा० प्रति ३। उ २। सू २१३। पृ० २३७ तथा ठाण० स्था ४। उ ३। सू ३२६। पृ० २४६।

·६६ सलेशी जीव और ज्ञान :—

·६६·१ सलेशी जीव में कितने ज्ञान-अज्ञान :—

(क) सलेस्सा णं भंते ! जीवा किं नाणी० ? जहा सकाइया (सकाइया णं भंते ! जीवा किं नाणी अन्नाणी ? गोयमा ! पंच नाणाणि तिन्नि अन्नाणाइं भयणाए—प्र० ३८)। कण्हलेस्सा णं भंते ! जहा सइंदिया एवं जाव पम्हलेस्सा (सइंदिया णं भंते ! जीवा किं नाणी अन्नाणी ? गोयमा ! चत्तारि नाणाइं तिन्नि अन्नाणाइं भयणाए – प्र० ३५)। सुक्कलेस्सा जहा सलेस्सा। अलेस्सा जहा सिद्धा (सिद्धा णं भंते ! पुच्छा, गोयमा ! नाणी नो अन्नाणी, नियमा एगनाणी केवलनाणी –प्र०३०)।

—भग० श ८। उ २। प्र ६६-६७। पृ० ५४५

सलेशी जीव में पाँच ज्ञान तथा तीन अज्ञान की भजना होती है। कृष्णलेशी यावत् पद्मलेशी जीव में चार ज्ञान तथा तीन अज्ञान की भजना होती है। शुक्ललेशी जीव में पाँच ज्ञान तथा तीन अज्ञान की भजना होती है। अलेशी जीव में नियम से एक केवलज्ञान होता है।

(ख) कण्हलेसे णं भंते ! जीवे कइसु नाणेसु होज्जा ? गोयमा ! दोसु वा तिसु वा चउसु वा नाणेसु होज्जा, दोसु होमाणे आभिणिबोहियसुयनाणे होज्जा, तिसु होमाणे आभिणिबोहियसुयनाणओहिनाणेसु होज्जा, अहवा तिसु होमाणे आभिणिबोहियसुयनाणमणपज्जवनाणेसु होज्जा, चउसु होमाणे आभिणिबोहियसुयओहिमणपज्जवनाणेसु होज्जा, एवं जाव पम्हलेसे। सुक्कलेसे णं भंते ! जीवे कइसु नाणेसु होज्जा ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोयमा ! दोसु वा तिसु वा चउसु वा होज्जा, दोसु होमाणे आभिणिबोहियनाण एवं जहेव कण्हलेसाणं तहेव भाणियव्वं जाव चउहिं। एगंभि नाणे होमाणे एगंमि केवलनाणे होज्जा।

—पण्ण० प १७। उ ३। सू ३०। पृ० ४४५

कृष्णलेशी जीव के दो, तीन अथवा चार ज्ञान होते हैं। दो ज्ञान होने से मति-ज्ञान और श्रुतज्ञान होता है। तीन ज्ञान होने से मति, श्रुत तथा अवधिज्ञान होता है अथवा मति, श्रुत तथा मनःपर्यव ज्ञान होता है। चार होने से मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यव ज्ञान होता है। इसी प्रकार यावत् पद्मलेशी जीव तक कहना। शुक्ललेशी जीव के एक, दो, तीन अथवा चार ज्ञान होते हैं। यदि दो, तीन अथवा चार ज्ञान हों तो कृष्णलेशी जीव की तरह होता है। एक ज्ञान हो तो केवलज्ञान होता है।

ननु मनःपर्यवज्ञानमतिविशुद्धस्योपजायते, कृष्णलेश्या च संक्लिष्टाध्यवसायरूपा ततः कथं कृष्णलेश्याकस्य मनःपर्यवज्ञानसम्भवः? उच्यते, इह लेश्यानां प्रत्येका-संख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि, तत्र कानिचित् मंदानुभावान्य-ध्यवसायस्थानानि प्रमत्तसंयतस्यापि लभ्यन्ते, अतएव कृष्णनीलकापोतलेश्या अन्यत्र प्रमत्तसंयतान्ता गीयन्ते, मनःपर्यवज्ञानं च प्रथमतोऽप्रमत्तसंयतस्योत्पद्यते ततः प्रमत्त-संयतस्यापि लभ्यते इति सम्भवति कृष्णलेश्याकस्यापि मनःपर्यवज्ञानं।

—पण्ण० प १७। उ ३। सू ३०। टीका

मनःपर्यवज्ञान अति विशुद्ध को होता है तथा कृष्णलेश्या संक्लिष्ट अध्यवसाय रूप है, तब कृष्णलेश्या में मनःपर्यवज्ञान कैसे सम्भव हो सकता है? प्रत्येक लेश्या के असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण अध्यवसाय स्थान होते हैं, उनमें कितने ही मंद रसवाले अध्यवसाय स्थान प्रमत्त संयत को भी होते हैं। अतः कृष्ण, नील, कापोत लेश्याएं प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होती हैं—ऐसा अन्य ग्रन्थकारों ने कहा है। मनःपर्यवज्ञान प्रथम अप्रमत्तसंयत को होता है तथा तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत को भी होता है। अतः कृष्णलेश्यावाले को भी मनः-पर्यवज्ञान सम्भव है।

·६६·२ लेश्या-विशुद्धि से विविध ज्ञान-समुत्पत्ति :—

·६६·२·१ लेश्या-विशुद्धि से जाति-स्मरण (मतिज्ञान) :—

(क) तए णं तव मेहा! लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं अज्झवसाणेणं सोहणेणं सुभेणं परिणामेणं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापोहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पज्जित्था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेहिं परिणामेहिं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापोहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पन्ने।

—णाया० श्रु १। अ १। सू ३२, ३३। पृ० ६७०-७२

(ग) तए णं तस्स सुदंसणस्स सेट्ठिस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापोहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पन्ने।

—भग० श ११। उ ११। प्र ३५। पृ० ६४५

लेश्या का उत्तरोत्तर विशुद्ध होना जाति-स्मरण-ज्ञान की प्राप्ति में एक आवश्यक अंग है।

·६६·२·२ लेश्या-विशुद्धि से अवधिज्ञान :—

(क) आणंदस्स समणोवासगस्स अन्नया कयाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ओहिनाणे समुप्पन्ने।

—उवा० अ १। सू १२। पृ० ११३४

लेश्या का उत्तरोत्तर विशुद्ध होना अवधिज्ञान की प्राप्ति में भी एक आवश्यक अंग है।

(ख) (सोच्चा केवलिस्स) तस्स णं अट्ठमंअट्ठमेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स पगइभद्दयाए, तहेव जाव (××× लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं विसुज्झमाणीहिं ×××) गवेसणं करेमाणस्स ओहिनाणे समुप्पज्जइ।

—भग० श ६। उ ३१। प्र ३४। पृ० ५८०

श्रुत्वाकेवली के अवधिज्ञान की प्राप्ति के समय लेश्या की भी उत्तरोत्तर विशुद्धि होती है।

·६६·२·३ लेश्या-विशुद्धि से विभंग अज्ञान :—

तस्स णं (असोच्चा केवलीस्स णं) भंते! छट्ठंछट्ठेणं ××× अन्नया कयाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं, सुभेणं परिणामेणं, लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापोहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स विभंगे नामं अन्नाणे समुप्पज्जइ।

—भग० श ६। उ ३१। प्र ११। पृ० ५७८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेश्या का उत्तरोत्तर विशुद्ध होना विभंग अज्ञान की प्राप्ति में शुभ अध्यवसाय और शुभ परिणाम के साथ एक आवश्यक अंग है।

·६६·३ सलेशी का सलेशी को जानना व देखना :—

·६६·३·१ विशुद्ध-अविशुद्धलेशी देव का विशुद्ध-अविशुद्धलेशी देव देवी को जानना व देखना :—

अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे असम्मोहएणं अप्पाणएणं अविसुद्धलेसं देवं, देविं, अन्नयरं जाणइ, पासइ ? णो तिणट्ठे समट्ठे (१)।

एवं अविसुद्धलेसे देवे असम्मोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं (२)।

अविसुद्धलेसे सम्मोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं (३)।

अविसुद्धलेसे देवे सम्मोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं (४)।

अविसुद्धलेसे सम्मोहयाऽसम्मोहएणं अविसुद्धलेसं देवं (५)।

अविसुद्धलेसे सम्मोहयाऽसम्मोहएणं विसुद्धलेसं देवं (६)।

विसुद्धलेसे असम्मोहएणं अविसुद्धलेसं देवं (७)।

विसुद्धलेसे असम्मोहएणं विसुद्धलेसं देवं (८)।

विसुद्धलेसे णं भंते देवे सम्मोहएणं अविसुद्धलेसं देवं जाणइ ? हंता, जाणइ (९)।

एवं विसुद्धलेसे सम्मोहएणं विसुद्धलेसं देवं जाणइ ? हंता, जाणइ (१०)।

विसुद्धलेसे सम्मोहयाऽसम्मोहएणं अविसुद्धलेसं देवं ? (११)।

विसुद्धलेसे सम्मोहयाऽसम्मोहएणं विसुद्धलेसं देवं ? (१२)।

एवं हेट्ठिल्लएहिं अट्ठहिं न जाणइ, न पासइ ; उवरिल्लएहिं चउहिं जाणइ, पासइ।

—भग० श ६। उ ६। प्र ७-१०। पृ० ५०६-७

अविशुद्धलेशी देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्धलेशी देव व देवी को या दोनों में से किसी एक को नहीं जानता है, नहीं देखता है (१)। इसी प्रकार अविशुद्धलेश्यावाला देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्धलेशी देव, देवी व अन्यतर को नहीं जानता है, नहीं देखता है (२)। अविशुद्धलेश्यावाला देव उपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्धलेशी देव, देवी व अन्यतर को (३), अविशुद्धलेश्यावाला देव उपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्धलेशी देव, देवी वा अन्यतर को (४), अविशुद्धलेश्यावाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्धलेशी देव, देवी वा अन्यतर को (५), अविशुद्धलेश्यावाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्धलेशी देव, देवी वा अन्यतर को (६), विशुद्धलेशी देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्धलेशी देव, देवी वा अन्यतर को (७) तथा विशुद्धलेशी देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्धलेशी देव, देवी वा अन्यतर को नही जानता है, नहीं देखता है (८)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशुद्धलेशी देव उपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्धलेशी देव, देवी वा अन्यतर को जानता है, देखता है (६)।

विशुद्धलेशी देव उपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्धलेशी देव, देवी वा अन्यतर को जानता है, देखता है (१०)।

विशुद्धलेशी देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्धलेशी देव, देवी व अन्यतर को जानता है, देखता है (११)।

विशुद्धलेशी देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्धलेशी देव, देवी व अन्यतर को जानता है, देखता है (१२)।

प्रथम के आठ विकल्पों में न जानता है, न देखता है ; शेष के चार विकल्पों में जानता है, देखता है।

नोट :—अविशुद्धलेशी का टीकाकार ने 'अविशुद्धलेशी विभंगज्ञानी देव' अर्थ किया है। अन्यतर का अर्थ 'दोनों में से एक' होता है। 'असम्मोहएणं अप्पाएणं' का अर्थ टीकाकार ने अनुपयुक्त आत्मा किया है।

टीका—एभिः पुनश्चतुर्भिर्विकल्पैः सम्यग्दृष्टित्वादुपयुक्तत्वानुपयुक्तत्वाच्च जानाति, उपयोगानुपयोगपक्षे उपयोगांशस्य सम्यग्ज्ञानहेतुत्वादिति।

शेष के चार विकल्पों में विशुद्धलेशी देव सम्यगदृष्टि होने के कारण उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा होने पर भी जानता व देखता है ; क्योंकि सम्यगज्ञान होने के कारण उपयोगानुपयोग में उपयोग का अंश अधिक होता है।

'६६'३'२ विशुद्ध-अविशुद्धलेशी अणगार का विशुद्ध-अविशुद्ध लेश्यावाले देव-देवी को जानना व देखना :—

अविसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ? गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे। (१)

अविसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे असमोहएणं अप्पाणएणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ? गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे। (२)

अविसुद्धलेस्से (णं भंते !) अणगारे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ? गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे। (३)

अविसुद्धलेस्से (णं भंते !) अणगारे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ? (गोयमा !) नो इणट्ठे समट्ठे। (४)

अविसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ? (गोयमा !) नो इणट्ठे समट्ठे। (५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविसुद्धलेस्से (णं भंते !) अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ? (गोयमा !) नो इणट्ठे समट्ठे । (६)

विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ? हंता जाणइ पासइ जहा अविसुद्धलेस्सेणं (छ) आलावगा एवं विसुद्धलेस्सेण वि छ आलावगा भाणियव्वा जाव विसुद्धलेस्से णं भंते ! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ? हंता जाणइ पासइ । (१२)

—जीवा० प्रति ३ । उ २ । सू १०३ । पृ० १५१

अविशुद्धलेशी अणगार असमवहत आत्मा से अविशुद्धलेशी देव, देवी तथा अणगार को जानता व देखता नहीं है (१) । अविशुद्धलेशी अणगार असमवहत आत्मा से विशुद्धलेशी देव, देवी तथा अणगार को जानता व देखता नहीं है (२) । अविशुद्धलेशी अणगार समवहत आत्मा से अविशुद्धलेशी देव, देवी तथा अणगार को जानता व देखता नहीं है (३) । अविशुद्धलेशी अणगार समवहत आत्मा से विशुद्धलेशी देव, देवी तथा अणगार को जानता व देखता नहीं है (४) । अविशुद्धलेशी अणगार समवहतासमवहत आत्मा से अविशुद्ध-लेशी देव, देवी तथा अणगार को जानता व देखता नहीं है (५) । अविशुद्धलेशी अणगार समवहतासमवहत आत्मा से विशुद्धलेशी देव, देवी तथा अणगार को जानता व देखता नहीं है (६) ।

इसी प्रकार विशुद्धलेशी अणगार के छः आलापक कहने लेकिन जानता है तथा देखता है—ऐसा कहना ।

नोट :—टीकाकार श्री मलयगिरि ने असमवहत का अर्थ 'वेदनादिसमुद्घातरहित' तथा समवहत का अर्थ 'वेदनादिसमुद्घाते गतः' किया है । समवहतासमवहत का अर्थ किया है—'वेदनादिसमुद्घातक्रियाविष्टो न तु परिपूर्णं समवहतो नाप्यसमवहतः सर्वथा ।' मलयगिरि ने किसी मूल टीकाकार की उक्ति दी है —"शोभनमशोभनं वा वस्तु यथावद्विशुद्धलेश्यो जानाति, समुद्घातोऽपि तस्याप्रतिबन्धक एव ।" लेकिन भगवती के टीकाकार श्री अभयदेव सूरि ने 'असमोहएणं अप्पाणेणं' का अर्थ 'अनुपयुक्तेनात्मना' किया है ।

·६६·३·३ भावितात्मा अणगार का सकर्मलेश्या का जानना व देखना :—

अणगारे णं भंते ! भावियप्पा अप्पणो कम्मलेस्सं न जाणइ, न पासइ तं पुण-जीवं सरूवीं सकम्मलेस्सं जाणइ, पासइ ? हंता गोयमा ! अणगारे णं भावियप्पा अप्पणो जाव पासइ ।

—भग० श १४ । उ ६ । प्र १ । पृ० ७०६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावितात्मा अणगार अपनी कर्मलेश्या को न जानता है, न देखता है। परन्तु सरूवी सकर्मलेश्या को जानता है, देखता है।

टीकाकार कहते हैं –"भावितात्मा अणगार छद्मस्थ होने के कारण ज्ञानावरणीयादि कर्म के योग्य अथवा कर्म सम्बन्धी कृष्णादि लेश्याओं को नहीं जानता है ; क्योंकि कर्मद्रव्य तथा लेश्याद्रव्य अति सूक्ष्म होने के कारण छद्मस्थ के ज्ञान द्वारा अगोचर हैं—परन्तु वह अणगार कर्म तथा लेश्या वाले तथा शरीर युक्त आत्मा को जानता है ; क्योंकि शरीर चक्षु इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण होता है तथा आत्मा का शरीर के साथ कथंचित् अभेद है। इसलिये उसको जानता है।"

'६६'४ सलेशी जीव और ज्ञान तुलना :—

'६६'४'१ सलेशी नारकी की ज्ञान तुलना :—

कण्हलेस्से णं भंते ! नेरइए कण्हलेसं नेरइयं पणिहाए ओहिणा सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे केवइयं खेत्तं जाणइ, केवइयं खेत्तं पासइ ? गोयमा ! णो बहुयं खेत्तं णो दूरं खेत्तं जाणइ, णो बहुयं खेत्तं पासइ, णो दूरं खेत्तं जाणई, णो दूरं खेत्तं पासइ, इत्तरियमेव खेत्तं जाणइ, इत्तरियमेव खेत्तं पासइ। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—'कण्हलेसे णं नेरइए तं चेव जाव इत्तरियमेव खेत्तं पासइ' ? गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे बहुसमर-मणिज्जंसि भूमिभागंसि ठिच्चा सव्वओ समंता समभिलोएज्जा, तए णं से पुरिसे धरणितलगयं पुरिसं पणिहाए सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे णो बहुयं खेत्तं जाव पासइ, जाव इत्तरियमेव खेत्तं पासइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ -कण्हलेसे णं नेरइए जाव इत्तरियमेव खेत्तं पासइ। नीललेसे णं भंते ! नेरइए कण्हलेसं नेरइयं पणिहाय ओहिणा सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे केवइयं खेत्तं जाणइ, केवइयं खेत्तं पासइ ? गोयमा ! बहुतरागं खेत्तं जाणइ, बहुतरागं खेत्तं पासइ, दूरतरं खेत्तं जाणइ, दूरतरं खेत्तं पासइ, वितिमिरतरागं खेत्तं जाणइ, वितिमिरतरागं खेत्तं पासइ, विसुद्धतरागं खेत्तं जाणइ, विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ —नीललेसे णं नेरइए कण्हलेसं नेरइयं पणिहाय जाव विसुद्धतरागं खेत्तं जाणइ विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ ? गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ पव्वयं दुरूहित्ता सव्वओ समंता समभिलोएज्जा, तए णं से पुरिसे धरणितलगयं पुरिसं पणिहाय सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे बहुतरागं खेत्तं जाणइ जाव विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—नीललेसे नेरइए कण्हलेसं जाव विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ। काउलेस्से णं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भंते ! नेरइए नीललेस्सं नेरइयं पणिहाय ओहिणा सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे केवइयं खेत्तं जाणइ पासइ ? गोयमा ! बहुतरागं खेत्तं जाणइ पासइ, जाव विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—काउलेस्से णं नेरइए जाव विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ ? गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ पव्वयं दुरूहइ दुरुहित्ता दो वि पाए उच्चावियां, (वइत्ता) सव्वओ समंता समभिलोएज्जा, तए णं से पुरिसे पव्वयगयं धरणितलगयं च पुरिसं पणिहाय सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे बहुतरागं खेत्तं जाणइ, बहुतरागं खेत्तं पासइ जाव वितिमिरतरागं खेत्तं पासइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—काऊलेस्से णं नेरइए नीललेस्सं नेरइयं पणिहाय तं चेव जाव वितिमिरतरागं खेत्तं पासइ ॥ —पण्ण० प १७ । उ ३ । सू २६ । पृ० ४४४-५

कृष्णलेशी नारकी कृष्णलेशी नारकी की अपेक्षा अवधिज्ञान द्वारा चारों दिशाओं में तथा चारों विदिशाओं में बहुत (विस्तृत) क्षेत्र को नहीं जानता है, बहुत क्षेत्र को नहीं देखता है, दूर क्षेत्र को नहीं जानता है, दूर क्षेत्र को नहीं देखता है, कुछ कम-अधिक क्षेत्र को जानता है, कुछ कम-अधिक क्षेत्र को देखता है। जैसे—यदि कोई पुरुष बराबर समान तथा रमणीक भूमि भाग पर खड़ा होकर चारों तरफ देखता हो तो वह पुरुष पृथ्वीतल में रहनेवाले पुरुष की अपेक्षा चारों तरफ देखता हुआ बहुतर क्षेत्र तथा दूरतर क्षेत्र को जानता नहीं है, देखता नहीं है। कुछ अल्पाधिक क्षेत्र को जानता है, देखता है। इसी तरह कृष्णलेशी नारकी अन्य कृष्णलेशी नारकी की अपेक्षा कुछ अल्पाधिक क्षेत्र को जानता है, देखता है।

नीललेशी नारकी कृष्णलेशी नारकी की अपेक्षा अवधिज्ञान द्वारा चारों दिशाओं में तथा चारों विदिशाओं में देखता हुआ अधिकतर क्षेत्र को जानता है, देखता है। दूरतर क्षेत्र को जानता है, देखता है; विशुद्धतर क्षेत्र को जानता है, देखता है, जैसे—यदि कोई पुरुष बराबर बहुसम रमणीक भूमि-भाग से पर्वत पर चढ़कर चारों दिशाओं व चारों विदिशाओं में देखता हो तो वह पुरुष पृथ्वीतल के ऊपर रहे हुए पुरुष की अपेक्षा चारों तरफ अधिकतर क्षेत्र को जानता है, देखता है; दूरतर क्षेत्र को जानता है व देखता है; विशुद्धतर क्षेत्र को जानता है व देखता है।

कापोतलेशी नारकी नीललेशी नारकीकी अपेक्षा अवधिज्ञान द्वारा चारों दिशाओं व चारों विदिशाओं में देखता हुआ अधिकतर क्षेत्र को जानता है व देखता है; दूरतर क्षेत्र को जानता है व देखता है; विशुद्धतर क्षेत्र को जानता है व देखता है। जैसे—कोई पुरुष बराबर सम रमणीक भूमि से पर्वत पर चढ़कर तथा दोनों पैर ऊँचे उठाकर चारों दिशाओं में तथा चारों विदिशाओं में देखता हो तो वह पुरुष पर्वत पर चढ़े हुए तथा पृथ्वीतल पर खड़े हुए पुरुषों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपेक्षा चारों दिशाओं में तथा चारों विदिशाओं में अधिकतर क्षेत्र को जानता है व देखता है ; दूरतर क्षेत्र को जानता है, देखता है ; विशुद्धतर क्षेत्र को जानता है व देखता है।

·७० सलेशी जीव और अनन्तर भव में मोक्ष प्राप्ति :—

·७०·१ कापोतलेशी जीव की अनन्तर भव में मोक्ष प्राप्ति :—

से नूणं भंते ! काऊलेस्से पुढविकाइए काऊलेस्सेहिंतो पुढविकाइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता माणुसं विग्गहं लभइ माणुसं विग्गहं लभइत्ता केवलं बोहिं बुज्झइ केवलं बोहिं बुज्झइत्ता तओ पच्छा सिज्झइ जाव अंतं करेइ ? हंता मागंदियपुत्ता ! काऊलेस्से पुढविकाइए जाव अंतं करेइ।

से नूणं भंते। काऊलेस्से आउकाइए काऊलेस्सेहिंतो आउकाइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता माणुसं विग्गहं लभइ माणुसं विग्गहं लभइत्ता केवलं बोहिं बुज्झइ, जाव अंतं करेइ ? हंता मागंदियपुत्ता ! जाव अंतं करेइ।

से नूणं भंते ! काऊलेस्से वणस्सइकाइए एवं चेव जाव अंतं करेइ।

—भग० श १८ । उ ३ । प्र० १ से ३ । पृ० ७६६

कापोतलेशी पृथ्वीकायिक जीव कापोतलेशी पृथ्वीकायिक योनि से मरण को प्राप्त होकर तदनन्तर मनुष्य के शरीर को प्राप्त करता है, मनुष्य शरीर को प्राप्त करके केवलज्ञान को प्राप्त करता है तथा केवलबोधि को प्राप्त करने के बाद सिद्ध होता है, यावत् सर्व दुःखों का अंत करता है।

कापोतलेशी अप्कायिक जीव कापोतलेशी अप्कायिक योनि से मरण को प्राप्त होकर तदनन्तर मनुष्य के शरीर को प्राप्त करता है, मनुष्य शरीर को प्राप्त करके, केवलज्ञान को प्राप्त करता है तथा केवलज्ञान को प्राप्त करने के बाद सिद्ध होता है, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

कापोतलेशी वनस्पतिकायिक जीव कापोतलेशी वनस्पतिकायिक योनि से मरण को प्राप्त होकर तदनन्तर मनुष्य के शरीर को प्राप्त करता है, मनुष्य शरीर को प्राप्त करके केवलज्ञान को प्राप्त करता है तथा केवलज्ञान को प्राप्त करने के बाद सिद्ध होता है, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

आर्यों के पूछने पर भगवान महावीर ने भी (**अहंपि णं अज्जो ! एवमाइक्खामि**) माकंदीपुत्र के उपर्युक्त कथन का समर्थन किया है।

·७०·२ कृष्णलेशी जीव की अनंतर भव में मोक्ष प्राप्ति :—

एवं खलु अज्जो ! कण्हलेस्से पुढविकाइए कण्हलेस्सेहिंतो पुढविकाइएहिंतो जाव अंतं करेइ ; एवं खलु अज्जो ! नीललेस्से पुढविकाइए जाव अंतं करेइ, एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काऊलेस्से वि, जहा पुढविकाइए × × × एवं आउकाइए वि, एवं वणस्सइकाइए वि सच्चे णं एसमट्ठे ।

—भग० श १८ । उ ३ । प्र ३ । पृ० ७६६-६७

कृष्णलेशी पृथ्वीकायिक जीव कृष्णलेशी पृथ्वीकायिक योनि से, कृष्णलेशी अप्-कायिक जीव कृष्णलेशी अप्कायिक योनि से तथा कृष्णलेशी वनस्पतिकायिक जीव कृष्ण-लेशी वनस्पतिकायिक योनि से मरण को प्राप्त होकर तदनंतर मनुष्य के शरीर को प्राप्त करता है, मनुष्य के शरीर को प्राप्त करके केवलज्ञान को प्राप्त करता है तथा केवलज्ञान को प्राप्त करने के वाद सिद्ध होता है, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

·७०·३ नीललेशी जीव की अनन्तर भव में मोक्ष प्राप्ति :—

नीललेशी पृथ्वीकायिक जीव नीललेशी पृथ्वीकायिक योनि से, नीललेशी अप्कायिक जीव नीललेशी अप्कायिक योनि से तथा नीललेशी वनस्पतिकायिक जीव नीललेशी वनस्पतिकायिक योनि से मरण को प्राप्त होकर तदनंतर मनुष्य के शरीर को प्राप्त करता है मनुष्य के शरीर को प्राप्त करके केवलज्ञान को प्राप्त करता है तथा केवलज्ञान को प्राप्त करने के वाद सिद्ध होता है, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है । (देखो पाठ ·७०·२)

·७१ सलेशी जीव और आरम्भ-परारम्भ-उभयारम्भ अनारम्भ :—

जीवा णं भंते ! किं आयारंभा, परारंभा, तदुभयारंभा, अनारंभा ? गोयमा ! अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि परारंभा वि तदुभयारंभा ; नो अणारंभा ; अत्थे-गइया जीवा नो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा, अणारंभा । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-- अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि एवं पडिउच्चारेयव्वं ? गोयमा, जीवा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा संसारसमावन्नगा य असंसारसमावन्नगा य, तत्थ णं जे ते असंसारसमावन्नगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं नो आयारंभा जाव अणारंभा ; तत्थ णं जे ते संसारसमावन्नगा ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा– संजया य असंजया य, तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पण्णत्ता, तंजहा –पमत्तसंजया य अप्पमत्तसंजया य, तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया ते णं नो आयारंभा, नो परारंभा जाव अणारंभा, तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया ते सुहं जोगं पडुच्च नो आयारंभा नो परारंभा जाव अणारंभा, असुभं जोगं पडुच्च आयारंभा वि जाव नो अणारंभा, तत्थ णं जेते असंजया ते अविरतिं पडुच्च आयारंभा वि जाव नो अणारंभा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ– अत्थेगइया जीवा जाव अणारंभा ।

सलेस्सा जहा ओहिया, कण्हलेसस्स, नीललेसस्स, काऊलेसस्स जहा ओहिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवा, नवरं पमत्त-अप्पमत्ता न भाणियव्वा, तेऊलेसस्स, पम्हलेसस्स, सुक्कलेसस्स जहा ओहिया जीवा, नवरं सिद्धा न भाणियव्वा।

—भग० श १। उ १। प्र ४७, ४८, ५३। पृ० ३८८-८६

कोई एक जीव आत्मारंभी, परारंभी, उभयारंभी होता है, अनारंभी नहीं होता है। कोई एक जीव आत्मारंभी, परारंभी, उभयारंभी नहीं होता है, अनारंभी होता है। जीव दो प्रकार के होते हैं—यथा (१) संसारसमापन्नक तथा (२) असंसारसमापन्नक। उनमें से जो असंसारसमापन्नक जीव हैं वे सिद्ध हैं तथा सिद्ध आत्मारंभी, परारंभी, उभयारंभी नहीं होते हैं, अनारंभी होते हैं। जो संसारसमापन्नक जीव हैं, वे दो प्रकार के होते हैं, यथा—(१) संयत, (२) असंयत। जो संयत होते हैं वे दो प्रकार के होते हैं, यथा—(१) प्रमत्त संयत, (२) अप्रमत्त संयत। इनमें से जो अप्रमत्त संयत हैं वे आत्मारंभी, परारंभी, उभयारंभी नहीं होते हैं, अनारंभी होते हैं। इनमें जो प्रमत्त संयत हैं वे शुभयोग की अपेक्षा आत्मारंभी, परारंभी, उभयारंभी नहीं होते हैं, अनारंभी होते हैं तथा वे अशुभयोग की अपेक्षा आत्मारंभी परारंभी, उभयारंभी होते है, अनारंभी नहीं होते हैं। जो असंयत हैं वे अविरति की अपेक्षा आत्मारंभी, परारंभी, उभयारंभी होते हैं। इसलिए यह कहा गया है कि कोई एक जीव आत्मारंभी, परारंभी, उभयारंभी होता है, अनारंभी नहीं होता है तथा कोई एक जीव आत्मारंभी, परारंभी, उभयारंभी नहीं होता है, अनारंभी होता है।

औघिक जीवों की तरह सलेशी जीव भी कोई एक आत्मारम्भी, परारम्भी तथा उभयारम्भी है, अनारम्भी नहीं है ; कोई एक आत्मारम्भी, परारम्भी, उभयारम्भी नहीं है, अनारम्भी है। सलेशी जीव सभी संसारसमापन्नक हैं अतः सिद्ध नहीं हैं।

कृष्णलेशी, नीललेशी तथा कापोतलेशी जीव मनुष्य को छोड़कर औघिक जीव दण्डक की तरह आत्मारंभी, परारंभी तथा उभयारम्भी हैं, अनारम्भी नहीं हैं। यह अविरति की अपेक्षा से कथन है। कृष्णलेशी, नीललेशी तथा कापोतलेशी मनुष्य कोई एक आत्मारम्भी, परारम्भी तथा उभयारम्भी है, अनारम्भी नहीं है ; कोई एक आत्मारम्भी, परारम्भी तथा उभयारम्भी नहीं है, अनारम्भी है लेकिन इनमें प्रमत्तसंयत-अप्रमत्तसंयत भेद नहीं करने, क्योंकि इन लेश्याओं में अप्रमत्तसंयतता सम्भव नहीं है।

यहाँ टीकाकार का कथन है कि इन लेश्याओं में प्रमत्तसंयतता भी सम्भव नहीं है।

टीका—**कृष्णादिषु हि अप्रशस्तभावलेश्यासु संयतत्वं नास्ति × × × तद् द्रव्य-लेश्यां प्रतीत्येति मन्तव्यं, ततस्तासु प्रमत्ताद्यभावः।**

टीकाकार का भाव है कि कृष्ण-नील-कापोतलेशी मनुष्यों में संयत-असंयत भेद भी नहीं करने क्योंकि इन लेश्याओं में प्रमत्तसंयतता भी सम्भव नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेकिन आगमों में कई स्थलों में संयत में कृष्ण-नील-कापोत लेश्या होती है — ऐसा कथन पाया जाता है। (देखो —'२८ तथा '६६'१)

तेजोलेशी, पद्मलेशी तथा शुक्ललेशी जीव औधिक जीवों की तरह कोई एक आत्मारम्भी, परारम्भी, उभयारम्भी है, अनारम्भी नहीं है, कोई एक आत्मारम्भी, परारम्भी तथा उभयारम्भी है, अनारंभी नहीं है। इनमें संयत असंयत भेद कहने तथा संयत में प्रमत्त-अप्रमत्त भेद कहने। अप्रमत्तसंयत अनारम्भी होते हैं। प्रमत्तसंयत शुभयोग की अपेक्षा से अनारम्भी होते हैं तथा अशुभयोग की अपेक्षा से आत्मारम्भी, परारम्भी तथा उभयारम्भी हैं, अनारम्भी नहीं हैं। तथा इन लेश्याओं में जो असंयती हैं वे अविरति की अपेक्षा से आत्मारम्भी, परारम्भी तथा उभयारम्भी हैं, अनारम्भी नहीं हैं।

'७२ सलेशी जीव और कषाय :—

'७२'१ सलेशी नारकी में कषायोपयोग के विकल्प :—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए जाव (पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं) काऊलेस्साए वट्टमाणा ? (नेरइया किं कोहोवउत्ता माणोवउत्ता मायोवउत्ता लोभोवउत्ता) गोयमा ! सत्तावीसं भंगा। × × × एवं सत्तवि पुढवीओ नेयव्वाओ, णाणत्तं लेस्सासु।

गाहा **काऊ य दोसु, तइयाए मीसिया, नीलिया चउत्थीए।**
पंचमीयाए मीसा, कण्हा तत्तो परमकण्हा॥

—भग० श १। उ ५। प्र १८१, १८६। पृ ४०१

रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों के एक-एक नरकावास में बसे हुए कापोतलेशी नारकी क्रोधोपयोगवाले, मानोपयोगवाले, मायोपयोगवाले तथा लोभोपयोगवाले होते हैं। उनमें एकवचन तथा बहुवचन की अपेक्षा से क्रोधोपयोग आदि के निम्नलिखित २७ विकल्प होते हैं :—

(१) सर्वक्रोधोपयोगवाले।

(२) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला; (३) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मानोपयोगवाले; (४) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला; (५) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मायोपयोगवाले; (६) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक लोभोपयोगवाला; (७) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु लोभोपयोगवाले।

(८) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला, एक मायोपयोगवाला; (९) बहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला, बहु मायोपयोगवाले; (१०) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मानोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला; (११) बहु क्रोधोपयोगवाले, बहु मानोपयोग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले, वहु मायोपयोगवाले ; (१२) वहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला, एक लोभोपयोगवाला ; (१३) वहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला, वहु लोभोपयोगवाले ; (१४) वहु क्रोधोपयोगवाले, वहु मानोपयोगवाले, एक लोभोपयोगवाला ; (१५) वहु क्रोधोपयोगवाले, वहु मानोपयोगवाले, वहु लोभोपयोगवाले ; (१६) वहु क्रोधोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला, एक लोभोपयोगवाला ; (१७) वहु क्रोधोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला, वहु लोभोपयोगवाले ; (१८) वहु क्रोधोपयोगवाले, वहु मायोपयोगवाले, एक लोभोपयोगवाला ; (१९) वहु क्रोधोपयोगवाले, वहु मायोपयोगवाले, वहु लोभोपयोगवाले ।

(२०) वहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला, एक मायोपयोगवाला, एक लोभोपयोगवाला ; (२१) वहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला, एक मायोपयोगवाला, वहु लोभोपयोगवाले ; (२२) वहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला, वहु मायोपयोगवाले, एक लोभोपयोगवाला ; (२३) वहु क्रोधोपयोगवाले, एक मानोपयोगवाला, वहु मायोपयोगवाले, वहु लोभोपयोगवाले ; (२४) वहु क्रोधोपयोगवाले, वहु मानोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला, एक लोभोपयोगवाला ; (२५) वहु क्रोधोपयोगवाले, वहु मानोपयोगवाले, एक मायोपयोगवाला, वहु लोभोपयोगवाले ; (२६) वहु क्रोधोपयोगवाले, वहु मानोपयोगवाले, वहु मायोपयोगवाले, एक लोभोपयोगवाला ; तथा (२७) वहु क्रोधोपयोगवाले, वहु मानोपयोगवाले, वहु मायोपयोगवाले, वहु लोभोपयोगवाले ।

इसी प्रकार सातों नरकपृथ्वी के नरकावासों के एक-एक नरकावास में बसे हुए कापोतलेशी, नीललेशी तथा कृष्णलेशी नारकियों में क्रोधोपयोग आदि के २७ विकल्प कहने, लेकिन जिसमें जो लेश्या होती है वह कहनी तथा नरकावासों की भिन्नता जाननी ।

·७२·२ सलेशी पृथ्वीकायिक में कषायोपयोग के विकल्प :—

असंखेज्जेसु णं भंते ! पुढविक्काइयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि पुढविक्काइयावासंसि जहन्नियाए ठिइए (सव्वेसु वि ठाणेसु) वट्टमाणा पुढविक्काइया किं कोहोवउत्ता माणोवउत्ता मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ? गोयमा ! कोहोवउत्ता वि माणोवउत्ता वि मायोवउत्ता वि लोभोवउत्ता वि, एवं पुढविक्काइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं, नवरं तेऊलेस्साए असीइ भंगा । एवं आउक्काइया वि, तेऊक्काइयवाउक्काइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं । वणस्सइकाइया जहा पुढविक्काइया ।

—भग० श १ । उ ५ । प्र १९२ । पृ० ४०१

पृथ्वीकायिक के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी पृथ्वीकायिक में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने । तेजोलेशी

२३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृथ्वीकायिक में चार कषायोपयोग के एकवचन तथा बहुवचन की अपेक्षा से क्रोधोपयोग आदि के अस्सी विकल्प नीचे लिखे अनुसार होते हैं :—

४ विकल्प एकवचन के, यथा—क्रोधोपयोगवाला,

४ विकल्प बहुवचन के, यथा—क्रोधोपयोगवाले,

२४ विकल्प द्विक संयोग से, यथा—एक क्रोधोपयोगवाला तथा एक मानोपयोगवाला,

३२ विकल्प त्रिक संयोग से, यथा—एक क्रोधोपयोगवाला, एक मानोपयोगवाला तथा एक मायोपयोगवाला,

१६ विकल्प चतुष्क संयोग से, यथा—एक क्रोधोपयोगवाला, एक मानोपयोगवाला, एक मायोपयोगवाला तथा एक लोभोपयोगवाला।

'७२'३ सलेशी अप्कायिक में कषायोपयोग के विकल्प :—

अप्कायिक के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी अप्कायिक में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने। तेजोलेशी अप्कायिक में अस्सी विकल्प कहने (देखो पाठ '७२'२)।

'७२'४ सलेशी अग्निकायिक में कषायोपयोग के विकल्प :—

अग्निकायिक के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी अग्निकायिक में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने (देखो पाठ ७२'२)।

'७२'५ सलेशी वायुकायिक में कषायोपयोग के विकल्प :—

वायुकायिक के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी वायुकायिक में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने (देखो पाठ '७२'२)।

'७२'६ सलेशी वनस्पतिकायिक में कषायोपयोग के विकल्प :—

वनस्पतिकायिक के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी वनस्पतिकायिक में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने। तेजोलेशी वनस्पतिकायिक में अस्सी विकल्प कहने (देखो पाठ '७२'२)।

'७२'७ सलेशी द्वीन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प :—

बेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीइभंगा तेहिं ठाणेहिं असीइं चेव, नवरं अब्भहिया सम्मत्ते आभिणिबोहियनाणे, सुयनाणे य, एएहिं असीइ-भंगा, जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं सत्तावीसं भंगा तेसु ठाणेसु सव्वेसु अभंगयं।

—भग० श १। उ ५। प्र १६३। पृ० ४०१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वीन्द्रिय के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी द्वीन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने।

·७२·८ सलेशी त्रीन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प :—

त्रीन्द्रिय के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी त्रीन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने (देखो पाठ ·७२·७)।

·७२·९ सलेशी चतुरिन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प :—

चतुरिन्द्रिय के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी चतुरिन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने (देखो पाठ ·७२·७)।

·७२·१० सलेशी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प :—

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया तहा भाणियव्वा, नवरं जेहिं सत्तावीसं भंगा तेहिं अभंगयं कायव्वं जत्थ असीइ तत्थ असीइं चेव।

—भग० श १ । उ ५ । प्र १९४ । पृ० ४०१-२

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी, तेजोलेशी, पद्मलेशी व शुक्ललेशी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने।

·७२·११ सलेशी मनुष्य में कषायोपयोग के विकल्प :—

मणुस्साण वि जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीइभंगा तेहिं ठाणेहिं मणुस्साण वि असीइभंगा भाणियव्वा, जेसु ठाणेसु सत्तावीसा तेसु अभंगयं, नवरं मणुस्साणं अब्भहियं जहन्निया ठिई (ठिइए) आहारए य असीइभंगा।

—भग० श १ । उ ५ । प्र १९५ । पृ० ४०२

मनुष्य के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी, तेजोलेशी, पद्मलेशी व शुक्ललेशी मनुष्य में कषायोपयोग के विकल्प नहीं कहने।

·७२·१२ सलेशी भवनपति देव में कषायोपयोग के विकल्प :—

चउसट्ठीए णं भंते! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमाराणं केवइया ठिइट्ठाणा पन्नत्ता? गोयमा! असंखेज्जा ठिइट्ठाणा पन्नत्ता, जहण्णिया ठिइ जहा नेरइया तहा, नवरं पडिलोमा भंगा भाणियव्वा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सव्वे वि ताव होज्ज लोभोवउत्ता ; अहवा लोभोवउत्ता य, मायोवउत्तो य ; अहवा लोभोवउत्ता य, मायोवउत्ता य। एएणं गमेणं (कमेणं) नेयव्वं जाव थणियकुमाराणं नवरं नाणत्तं जाणियव्वं।

—भग० श १। उ ५। प्र १६०। पृ० ४०१

चउसट्ठीए णं भंते! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमाराणं × × × एवं लेस्सासु वि। नवरं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! चत्तारि, तंजहा किण्हा, नीला, काऊ, तेऊलेस्सा। चउसट्ठीए णं जाव कण्हलेस्साए वट्टमाणा किं कोहोवउत्ता? गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा लोहोवउत्ता (इत्यादि) एवं नीला, काऊ, तेऊ वि।

—भग० श १। उ ५। प्र १६० की टीका

असुरकुमार के चौंसठ लाख आवासों में एक-एक असुरकुमारावास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी व तेजोलेशी असुरकुमार में लोभोपयोग, मायोपयोग, मानोपयोग व क्रोधोपयोग के सत्ताईस विकल्प कहने। नारकियों में क्रोध को बिना छोड़े विकल्प होते हैं परन्तु देवों में लोभ को बिना छोड़े विकल्प बनते हैं। अतः प्रतिलोम भंग होते हैं, ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार नागकुमार से स्तनितकुमार तक कहना परन्तु आवासों की भिन्नता जाननी।

'७२'१३ सलेशी वानव्यन्तर देव में कषायोपयोग के विकल्प :—

वाणमंतरजोइसवेमाणिया जहा भवणवासी, नवरं नाणत्तं जाणियव्वं जं जस्स, जाव अनुत्तरा।

—भग० श १। उ ५। प्र १६६। पृ० ४०२

वानव्यन्तर के असंख्यात लाख आवासों में एक-एक आवास में बसे हुए कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी व तेजोलेशी वानव्यंतर में भवनवासी देवों की तरह लोभोपयोग, मायोपयोग, मानोपयोग व क्रोधोपयोग के सत्ताईस विकल्प कहने।

'७२'१४ सलेशी ज्योतिषी देव में कषायोपयोग के विकल्प :—

ज्योतिषी देव के असंख्यात लाख विमानावासों में एक-एक विमानावास में बसे हुए तेजोलेशी ज्योतिषी देव में भवनवासी देवों की तरह लोभोपयोग, मायोपयोग, मानोपयोग व क्रोधोपयोग के सत्ताईस विकल्प कहने। (देखो पाठ '७२'१३)

'७३'१५ सलेशी वैमानिक देव में कषायोपयोग के विकल्प :—

वैमानिक देवों के भिन्न-भिन्न भेदों में भिन्न-भिन्न संख्यात विमानावासों के अनुसार एक-एक विमानावास में बसे हुए तेजोलेशी, पद्मलेशी व शुक्ललेशी वैमानिक देवों में भवनवासी देवों की तरह लोभोपयोग, मायोपयोग, मानोपयोग व क्रोधोपयोग के सत्ताईस विकल्प कहने। (देखो पाठ '७२'१३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·७३ सलेशी जीव और त्रिविध बंध :—

कइविहे णं भंते ! बंधे पन्नत्ते ? गोयमा ! तिविहे बंधे पन्नत्ते, तंजहा जीवप्पओगबंधे, अणंतरबंधे, परंपरबंधे। ××× दंसणमोहणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स कइविहे बंधे पन्नत्ते ? एवं चेव, निरंतरं जाव वेमाणियाणं, ××× एवं एएणं कमेणं ××× कण्हलेस्साए जाव सुक्कलेस्साए ××× एएसिं सव्वेसिं पयाणं तिविहे बंधे पन्नत्ते। सव्वे एए चउव्वीसं दंडगा भाणियव्वा, नवरं जाणियव्वं जस्स जइ अत्थि।

—भग० श २०। उ ७। प्र १, ८। पृ० ८०३

कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या का बंध तीन प्रकार का होता है जैसे—जीवप्रयोगबंध, अनन्तरबंध व परंपरबन्ध। नारकी की कापोतलेश्या का बंध भी तीन प्रकार का होता है। यथा—जीवप्रयोगबंध, व अनंतरबंध, परंपरबंध। इसी प्रकार यावत् वैमानिक दंडक तक तीन प्रकार का बंध कहना तथा जिसके जितनी लेश्या हो उतने पद कहने।

जीवप्रयोगबंध :—जीव के प्रयोग से अर्थात् मनप्रभृति के व्यापार से जो बंध हो वह जीवप्रयोगबंध है। अनंतरबंध :—जीव तथा पुद्गलों के पारस्परिक बंध का जो प्रथम समय है वह अनंतरबंध है; तथा बंध होने के बाद जो दूसरे, तीसरे आदि समय का प्रवर्तन है वह परम्परबंध है।

·७४ सलेशी जीव और कर्म बंधन :—

·७४·१ सलेशी औघिक जीव-दण्डक और कर्म बंधन :—

·७४·१·१ सलेशी औघिक जीव-दंडक और पाप कर्म बंधन :—

सलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ (१), बंधी बधइ ण बंधिस्सइ (२), [बंधी ण बंधइ बंधिस्सइ (३), बंधी ण बंधइ ण बंधिस्सइ (४)] पुच्छा ? गोयमा ! अत्थेगइए बंधी बंधइ बंधिस्सइ (१), अत्थेगइए० एवं चउभंगो। कण्हलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा ! अत्थेगइए बंधी बंधइ बंधिस्सइ; अत्थेगइए बंधी बंधइ ण बंधिस्सइ; एवं जाव-पम्हलेस्से सव्वत्थ पढमबिइयाभंगा। सुक्कलेस्से जहा सलेस्से तहेव चउभंगो। अलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा ! बंधी ण बंधइ ण बंधिस्सइ।

—भग० श २६। उ १। प्र २ से ४। पृ० ८६८

जीव के पापकर्म का बंधन चार विकल्पों से होता है, यथा—(१) कोई एक जीव बांधा है, बांधता है, बांधेगा, (२) कोई एक बांधा है, बांधता है, न बांधेगा, (३) कोई एक बांधा है, नहीं बांधता है, बांधेगा, (४) कोई एक बांधा है, न बांधता है, न बांधेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई एक सलेशी जीव पापकर्म बांधा है, बांधता है, बांधेगा ; कोई एक बांधा है, बांधता है, न बांधेगा ; कोई एक बांधा है, नहीं बांधता है, बांधेगा ; कोई एक बांधा है, न बांधता है, न बांधेगा।

कोई एक कृष्णलेशी जीव प्रथम भंग से, कोई एक द्वितीय भंग से पाप कर्म का बंधन करता है। इसी प्रकार नीललेशी यावत् पद्मलेशी जीव के सम्बन्ध में जानना। कोई एक शुक्ललेशी जीव प्रथम विकल्प से, कोई एक द्वितीय विकल्प से, कोई एक तृतीय विकल्प से, कोई एक चतुर्थ विकल्प से पापकर्म का बंधन करता है। अलेशी जीव चतुर्थ विकल्प से पापकर्म का बंधन करता है।

नेरइए णं भंते ! पावं कम्मं किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ ? गोयमा ! अत्थेगइए बंधी० पढमबिइया। सलेस्से णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं० ? एवं चेव। एवं कण्हलेस्से वि, नीललेस्से वि, काऊलेस्से वि। ××× एवं असुरकुमारस्स वि वत्तव्वया भाणियव्वा, नवरं तेऊलेस्सा। ××× सव्वथ पढमबिइया भंगा, एवं जाव थणिय-कुमारस्स, एवं पुढविकाइयस्स वि, आउकाइयस्स वि, जाव पंचिंदियतिरिक्ख-जोणियस्स वि सव्वत्थ वि पढमबिइया भंगा, नवरं जस्स जा लेस्सा। ××× मणूसस्स जच्चेव जीवपदे वत्तव्वया सच्चेव निरवसेसा भाणियव्वा। वाणमंतरस्स जहा असुरकुमारस्स। जोइसियस्स वेमाणियस्स एवं चेव, नवरं लेस्साओ जाणियव्वाओ।

—भग० श २६। उ १। प्र १४, १५। प्र० ८६६

कोई एक सलेशी नारकी प्रथम भंग से, कोई एक द्वितीय भंग से पाप कर्म का बंधन करता है। इसी प्रकार कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी नारकी के संबंध में जानना। इसी प्रकार सलेशी, कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी व तेजोलेशी असुरकुमार भी कोई प्रथम, कोई द्वितीय विकल्प से पाप कर्म का बंधन करता है। ऐसा ही यावत् स्तनितकुमार तक कहना। इसीप्रकार सलेशी पृथ्वीकायिक व अप्कायिक यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक कोई प्रथम, कोई द्वितीय विकल्प से पाप कर्म का बंधन करता है परन्तु जिसके जितनी लेश्या हो उतने पद कहने। मनुष्य में जीव पद की तरह वक्तव्यता कहनी। वान-व्यंतर असुरकुमार की तरह कोई प्रथम, कोई द्वितीय भंग से पाप कर्म का बंधन करता है। इसी तरह ज्योतिषी तथा वैमानिक देव कोई प्रथम, कोई द्वितीय भंग से पाप कर्म का बंधन करता है परन्तु जिसके जितनी लेश्या हो उतने पद कहने।

'७४'१'२ सलेशी औधिक जीव दंडक और ज्ञानावरणीय कर्म बंधन :—

जीवे णं भंते ! नाणावरणिज्जं कम्मं किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ एवं जहेव पाव-कम्मस्स वत्तव्वया तहेव नाणावरणिज्जस्स वि भाणियव्वा, नवरं जीवपदे, मणुस्सपदे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

य सकसाई, जाव लोभकसाइंमि य पढमबिइया भंगा अवसेसं तं चेव जाव वेमाणिया ।

—भग० श २६ । उ १ । प्र १६ । पृ० ८६६

लेश्या की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म के बंधन की वक्तव्यता, पापकर्म-बंधन की वक्तव्यता की तरह औघिक जीव तथा नारकी यावत् वैमानिक देव के सम्बन्ध में कहनी। प्रत्येक में सलेशी पद तथा जिसके जितनी लेश्या हो उतने पद कहने। औघिक जीवपद तथा मनुष्यपद में अलेशी पद भी कहना।

'७४'१'३ सलेशी औघिक जीव-दंडक और दर्शनावरणीय कर्म बंधन :—

एवं दरिसणावरणिज्जेण वि दंडगो भाणियव्वो निरवसेसो।

—भग० श २६ । उ १ । प्र १६ । पृ० ८६६

ज्ञानावरणीय कर्म के बंधन की वक्तव्यता की तरह दर्शनावरणीय कर्म-बंधन की वक्तव्यता भी निरवशेष कहनी।

'७४'१'४ सलेशी औघिक जीव-दंडक और वेदनीय कर्म बंधन :—

जीवे णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा ! अत्थेगइए बंधी बंधइ बंधिस्सइ (१), अत्थेगइए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ (२), अत्थेगइए बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ (४), सलेस्से वि एवं चेव तइयविहूणा भंगा। कण्हलेस्से जाव पम्हलेस्से पढमबिइया भंगा, सुक्कलेस्से तइयविहूणा भंगा, अलेस्से चरिमो भंगो।

नेरइए णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ० ? एवं नेरइया, जाव वेमाणिय त्ति। जस्स जं अत्थि सव्वत्थ वि पढमबिइया, नवरं मणुस्से जहा जीवे।

—भग० श २६ । उ १ । प्र १७-१८ । पृ० ८६६-६००

कोई एक सलेशी जीव प्रथम विकल्प से, कोई एक द्वितीय विकल्प से, कोई एक चतुर्थ विकल्प से वेदनीय कर्म का बंधन करता है। तृतीय विकल्प से कोई भी सलेशी जीव वेदनीय कर्म का बंधन नहीं करता है। कृष्णलेशी यावत् पद्मलेशी जीव कोई प्रथम विकल्प से, कोई द्वितीय विकल्प से वेदनीय कर्म का बंधन करता है। शुक्ललेशी जीव कोई प्रथम विकल्प से, कोई द्वितीय विकल्प से, कोई चतुर्थ विकल्प से वेदनीय कर्म का बंधन करता है। अलेशी जीव चतुर्थ विकल्प से वेदनीय कर्म का बंधन करता है।

सलेशी नारकी यावत् वैमानिक देव तक मनुष्य को छोड़कर कोई प्रथम विकल्प से, कोई द्वितीय विकल्प से वेदनीय कर्म का बंधन करता है। जिसके जितनी लेश्या हो उतने पद कहने। मनुष्य में जीवपद की तरह वक्तव्यता कहनी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'७४'१'५ सलेशी औघिक जीव-दंडक और मोहनीय कर्म बन्धन :—

जीवेणं भंते ! मोहणिज्जं कम्मं किं बंधी बंधइ० जहेव पावं कम्मं तहेव मोहणिज्जं वि निरवसेसं जाव वेमाणिए।

—भग० श २६। उ १। प्र १६। पृ० ६००

मोहनीय कर्म के बंधन की वक्तव्यता निरवशेष उसी प्रकार कहनी, जिस प्रकार पाप-कर्म बंधन की वक्तव्यता कही है।

.७४'१'६ सलेशी औघिक जीव-दंडक और आयु कर्म बन्धन :—

जीवे णं भंते! आउयं कम्मं किं बंधी बंधइ० पुच्छा ? गोयमा! अत्थेगइए बंधी० चउभंगो, सलेस्से जाव सुक्कलेस्से चत्तारि भंगा ; अलेस्से चरिमो भंगो। ××× नेरइए णं भंते! आउयं कम्मं किं बंधी०-पुच्छा ? गोयमा ! अत्थेगइए चत्तारि भंगा, एवं सव्वत्थ वि नेरइयाणं चत्तारि भंगा, नवरं कण्हलेस्से कण्हपक्खिए य पढम-ततिया भंगा ×××। असुरकुमारे एवं चेव, नवरं कण्हलेस्से वि चत्तारि भंगा भाणि-यव्वा, सेसं जहा नेरइयाणं एवं जाव थणियकुमाराणं। पुढविक्काइयाणं सव्वत्थ वि चत्तारि भंगा, नवरं कण्हपक्खिए पढमतइया भंगा। तेऊलेस्से पुच्छा ? गोयमा! बंधी न बंधइ बंधिस्सइ ; सेसेसु सव्वत्थ चत्तारि भंगा। एवं आउक्काइयवणस्सइ-काइयाणं वि निरवसेसं। तेउक्काइयवाउक्काइयाणं सव्वत्थ वि पढमतइया भंगा। बेइंदियचउरिंदियाणं वि सव्वत्थ वि पढमतइया भंगा। ××× पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं ××× सेसेसु चत्तारि भंगा। मणुस्साणं जहा जीवाणं। ××× सेसं तं चेव, वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा असुरकुमारा।

—भग० श २६। उ १। प्र २०, २४, २५। पृ० ६००-६०१

सलेशी जीव कृष्णलेशी जीव यावत् शुक्ललेशी जीव कोई प्रथम विकल्प से, कोई द्वितीय विकल्प से, कोई तृतीय विकल्प से, कोई चतुर्थ विकल्प से आयुकर्म का बंधन करता है। अलेशी जीव चतुर्थ विकल्प से आयु कर्म का वन्धन करता है। सलेशी नारकी, नीललेशी नारकी व कापोतलेशी नारकी कोई प्रथम विकल्प से, कोई द्वितीय विकल्प से, कोई तृतीय विकल्प से, कोई चतुर्थ विकल्प से आयुकर्म का वन्धन करता है। लेकिन कृष्णलेशी नारकी कोई प्रथम विकल्प से, कोई तृतीय विकल्प से आयुकर्म का बन्धन करता है। सलेशी, कृष्णलेशी यावत् तेजोलेशी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार कोई प्रथम विकल्प से, कोई द्वितीय विकल्प से, कोई तृतीय विकल्प से, कोई चतुर्थ विकल्प से आयु कर्म का वन्धन करता है। सलेशी, कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी पृथ्वीकायिक जीव कोई प्रथम विकल्प से, कोई द्वितीय विकल्प से, कोई तृतीय विकल्प से, कोई चतुर्थ विकल्प से आयु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म का बन्धन करता है। तेजोलेशी पृथ्वीकायिक जीव तृतीय विकल्प से आयुकर्म का बन्धन करता है। सलेशी अप्कायिक यावत् वनस्पतिकाय की वक्तव्यता पृथ्वीकायिक की वक्तव्यता की तरह जाननी। सर्व पदों में अग्निकायिक तथा वायुकायिक जीव कोई प्रथम व कोई तृतीय विकल्प से आयुकर्म का बंधन करता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीव सर्व लेश्या-पदों में इसी प्रकार कोई प्रथम व कोई तृतीय विकल्प से आयुकर्म का बन्धन करता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव सर्व लेश्यापदों में चार विकल्पों से आयुकर्म का बन्धन करता है। मनुष्य के सम्बन्ध में लेश्यापदों में औघिक जीव की तरह वक्तव्यता कहनी। वानव्यंतर, ज्योतिषी तथा वैमानिक देव के सम्बन्ध में भी असुरकुमार की तरह वक्तव्यता कहनी।

'७४'१'७ सलेशी औघिक जीव-दंडक और नामकर्म का बन्धन :—

नामं गोयं अंतरायं च एयाणि जहा नाणावरणिज्जं।

—भग० श २६। उ १। प्र २५। पृ० ६०१

ज्ञानावरणीय कर्म के बन्धन की वक्तव्यता की तरह नामकर्म-बन्धन की वक्तव्यता कहनी।

'७४'१'८ सलेशी औघिक जीव-दंडक और गोत्रकर्म का बन्धन :—

ज्ञानावरणीय कर्म के बन्धन की वक्तव्यता की तरह गोत्रकर्म-बन्धन की वक्तव्यता कहनी। (देखो पाठ '७४'१'७)

'७४'१'६ सलेशी औघिक जीव-दंडक और अंतरायकर्म का बन्धन :—

ज्ञानावरणीय कर्म के बन्धन की वक्तव्यता की तरह अंतरायकर्म-बन्धन की वक्तव्यता कहनी (देखो पाठ '७४'१'७)।

'७४'२ सलेशी अनंतरोपपन्न जीव और कर्मबन्धन :—

सलेस्से णं भंते! अणंतरोववन्नए नेरइए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा? गोयमा! पढम-बिइया भंगा। एवं खलु सव्वत्थ पढम-बिइया भंगा, नवरं सम्मामिच्छत्तं मणजोगो वइजोगो य न पुच्छिज्जइ। एवं जाव—थणियकुमाराणं। बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं वइजोगो न भन्नइ। पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वि सम्मामिच्छत्तं, ओहिनाणं, विभंगनाणं, मणजोगो, वइजोगो—एयाणि पंच पयाणि णं भन्नंति। मणुस्साणं अलेस्स-सम्मामिच्छत्त-मणपज्जवनाण-केवलनाण-विभंगनाण-नोसन्नोवउत्त-अवेयग-अकसायी-मणजोग-वयजोग-अजोगी—एयाणि एक्कारस पदाणि ण भन्नंति। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं तहेव ते तिन्नि न भन्नंति। सव्वेसिं जाणि सेसाणि ठाणाणि सव्वत्थ पढम-बिइया भंगा। एगिंदियाणं सव्वत्थ पढम-बिइया भंगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहा पावे एवं नाणावरणिज्जेण वि दंडओ, एवं आउयवज्जेसु जाव अंतराइए दंडओ। अणंतरोववन्नए णं भंते! नेरइए आउयं कम्मं किं बंधी० पुच्छा? गोयमा! बंधी न बंधइ बंधिस्सइ। सलेस्से णं भंते! अणंतरोववन्नए नेरइए आउयं कम्मं किं बंधी०? एवं चेव तइओ भंगो, एवं जाव अणागारोवउत्ते। सव्वत्थ वि तइओ भंगो। एवं मणुस्सवज्जं जाव वेमाणियाणं। मणुस्साणं सव्वत्थ तइय-चउत्था भंगा, नवरं कण्हपक्खिएसु तइओ भंगो, सव्वेसिं नाणत्ताइं ताइं चेव।

—भग० श २६। उ २। प्र २-४। पृ० ९०१

सलेशी अनन्तरोपपन्न नारकी यावत् सलेशी अनंतरोपपन्न वैमानिक देव पापकर्म का बंधन कोई प्रथम भंग से तथा कोई द्वितीय भंग से करता है। जिसके जितनी लेश्या हो उतने पद कहने। अनंतरोपपन्न अलेशी पृच्छा नहीं करनी, क्योंकि अनंतरोपपन्न अलेशी नहीं होता है।

आयु को छोड़कर बाकी सातों कर्मों के सम्बन्ध में पापकर्म-बंधन की तरह ही सब अनंतरोपपन्न सलेशी दंडकों का विवेचन करना।

अनंतरोपपन्न सलेशी नारकी तीसरे भंग से आयुकर्म का बंधन करता है। मनुष्य को छोड़कर दंडक में वैमानिक देव तक ऐसा ही कहना। मनुष्य कोई तीसरे तथा कोई चौथे भंग से आयुकर्म का बंधन करता है।

जिसमें जितनी लेश्या हो उतने पद कहने।

'७४'३ सलेशी परंपरोपपन्न जीव और कर्मबंधन :—

परंपरोववन्नए णं भंते! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा? गोयमा! अत्थेगइए पढम-बिइया। एवं जहेव पढमो उद्देसओ तहेव परंपरोववन्नएहि वि उद्देसओ भाणियव्वो, नेरइयाइओ तहेव नवदंडगसंगहिओ। अट्ठण्ह वि कम्मप्पगडीणं जा जस्स कम्मस्स वत्तव्वया सा तस्स अहीणमइरित्ता नेयव्वा जाव वेमाणिया अणागारोवउत्ता।

—भग० श २६। उ ३। प्र १। पृ० ९०१

परंपरोपपन्न सलेशी जीव-दंडक के सम्बन्ध में वैसे ही कहना, जैसा बिना परंपरोपपन्न विशेषण वाले सलेशी जीव-दंडक के सम्बन्ध में पापकर्म तथा अष्टकर्म के बंधन के विषय में कहा है।

'७४'४ सलेशी अनंतरावगाढ जीव और कर्मबंधन :—

अणंतरोगाढए णं भंते! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा? गोयमा! अत्थेगइए० एवं जहेव अणंतरोववन्नएहिं नवदण्डगसंगहिओ उद्देसो भणिओ तहेव अणं-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरोगाढएहिं वि अहीणमइरित्तो भाणियव्वो नेरइयादीए जाव वेमाणिए।

—भग० श २६। उ ४। प्र १। पृ० ६०१

सलेशी अनंतरावगाढ जीव-दंडक के सम्बन्ध में वैसे ही कहना, जैसा अनंतरोपपन्न विशेषण वाले सलेशी जीव-दण्डक के सम्बन्ध में पापकर्म तथा अष्टकर्म के बंधन के विषय में कहा है। टीकाकार के अनुसार अनंतरोपपन्न तथा अनंतरावगाढ में एक समय का अन्तर होता है।

'७४'५ सलेशी परंपरावगाढ जीव और कर्मबंधन :—

परंपरोगाढए णं भंते! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी०? जहेव परंपरोववन्नएहिं उद्देसो सो चेव निरवसेसो भाणियव्वो।

—भग० श २६। उ ५। प्र १। पृ० ६०१-६०२

सलेशी परंपरावगाढ जीव-दंडक के सम्बन्ध में वैसे ही कहना, जैसा परंपरोपपन्न विशेषण वाले सलेशी जीव-दंडक के सम्बन्ध में पापकर्म तथा अष्टकर्म बंधन के विषय में कहा है।

'७४'६ सलेशी अनंतराहारक जीव और कर्मबंधन :—

अणंतराहारए णं भंते! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा? गोयमा! एवं जहेव अणंतरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव निरवसेसं।

—भग० श २६। उ ६। प्र १। पृ० ६०२

सलेशी अनंतराहारक जीव-दंडक के सम्बन्ध में वैसे ही कहना, जैसा अनंतरोपपन्न विशेषण वाले सलेशी जीव-दंडक के संबंध में पापकर्म तथा अष्टकर्म बंधन के विषय में कहा है।

'७४'७ सलेशी परंपराहारक जीव और कर्मबंधन :—

परंपराहारए णं भंते! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा? गोयमा! एवं जहेव परंपरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव निरवसेसो भाणियव्वो।

—भग० श २६। उ ७। प्र १। पृ० ६०२

सलेशी परंपराहरक जीव-दंडक के सम्बन्ध में वैसे ही कहना, जैसा परंपरोपपन्न विशेषण वाले सलेशी जीव-दंडक के सम्बन्ध में पापकर्म तथा अष्टकर्म बंधन के विषय में कहा है।

'७४'८ सलेशी अनंतरपर्याप्त जीव और कर्मबंधन :—

अणंतरपज्जत्तए णं भंते! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा? गोयमा! जहेव अणंतरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव निरवसेसं।

—भग० श २६। उ ८। प्र १। पृ० ६०२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सलेशी अनंतरपर्याप्त जीव-दंडक के सम्बन्ध में वैसे ही कहना, जैसा अनंतरोपपन्न विशेषण वाले सलेशी जीव-दंडक के सम्बंध में पापकर्म तथा अष्टकर्म बंधन के विषय में कहा है।

'७४'९ सलेशी परंपरपर्याप्त जीव और कर्मबंधन :—

परंपरपज्जत्तए णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा ! एवं जहेव परंपरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव निरवसेसो भाणियव्वो।

—भग० श २६। उ ९। प्र १। पृ० ६०२

सलेशी परंपरपर्याप्त जीव-दंडक के सम्बन्ध में वैसे ही कहना, जैसा परंपरोपपन्न विशेषण वाले सलेशी जीव-दंडक के सम्बन्ध में पापकर्म तथा अष्टकर्म बंधन के विषय में कहा है।

'७४'१० सलेशी चरम जीव और कर्मबंधन :—

चरिमे णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा ! एवं जहेव परंपरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव चरिमेहिं निरवसेसो।

—भग० श २६। उ १०। प्र १। पृ० ६०२

सलेशी चरम जीव-दंडक के सम्बन्ध में वैसे ही कहना, जैसा परंपरोपपन्न विशेषण वाले सलेशी जीव-दंडक के सम्बन्ध में पापकर्म तथा अष्टकर्म बंधन के विषय में कहा है।

टीकाकार के अनुसार चरम मनुष्य के आयुकर्म के बंधन की अपेक्षा से केवल चतुर्थ भंग ही घट सकता है ; क्योंकि जो चरम मनुष्य है उसने पूर्व में आयु बांधा है, लेकिन वर्तमान में बांधता नहीं है तथा भविष्यत् काल में भी नहीं बांधेगा।

'७४'११ सलेशी अचरम जीव और कर्मबंधन :—

अचरिमे णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा ! अत्थेगइए० एवं जहेव पढमोद्देसए, तहेव पढम-बिइया भंगा भाणियव्वा सव्वत्थ जाव पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं।

सलेस्से णं भंते ! अचरिमे मणुस्से पावं कम्मं किं बंधी० ? एवं चेव तिन्नि भंगा चरिमविहूणा भाणियव्वा एवं जहेव पढमुद्देसे। नवरं जेसु तत्थ वीससु चत्तारि भंगा तेसु इह आदिल्ला तिन्नि भंगा भाणियव्वा चरिमभंगवज्जा। अलेस्से केवल-नाणी य अजोगी य ए ए तिन्नि वि न पुच्छिज्जंति, सेसं तहेव। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिए जहा नेरइए। अचरिमे णं भंते ! नेरइए नाणावरणिज्जं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा ! एवं जहेव पावं०। नवरं मणुस्सेसु सकसाईसु लोभकसाईसु य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पढम-विइया भंगा, सेसा अट्ठारस चरिमविहूणा, सेसं तहेव जाव वेमाणियाणं। दरिसणावरणिज्जं वि एवं चेव निरवसेसं। वेयणिज्जे सव्वत्थ वि पढम-विइया भंगा जाव वेमाणियाणं, नवरं मणुस्सेसु अलेस्से, केवली अजोगी य नत्थि। अचरिमे णं भन्ते ! नेरइए मोहणिज्जं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा ! जहेव पावं तहेव निरवसेसं जाव वेमाणिए।

अचरिमे णं भंते। नेरइए आउयं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा ! पढम-विइया (तइया) भंगा। एवं सव्वपदेसु वि। नेरइया वि पढम-तइया भंगा, नवरं सम्मामिच्छत्ते तइओ भंगो, एवं जाव थणियकुमाराणं। पुढविकाइय-आउकाइय-वणस्सइकाइयाणं तेऊलेस्साए तइओ भंगो, सेसेसु पदेसु सव्वत्थ पढम-तइया भंगा, तेऊकाइय-वाउकाइयाणं सव्वत्थ पढम-तइया भंगा ? बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं एवं चेव, नवरं सम्मत्ते ओहिनाणे आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे एएसु चउसु वि ठाणेसु तइओ भंगो। पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं सम्मामिच्छत्ते तइओ भंगो, सेसेसु पदेसु सव्वत्थ पढम-तइया भंगा। मणुस्साणं सम्मामिच्छत्ते अवेदए अकसाइम्मि य तइओ भंगो। अलेस्स-केवलनाण-अजोगी य न पुच्छिज्जंति। सेसपदेसु सव्वत्थ पढम-तइया भंगा ; वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया। नामं गोयं अंतराइयं च जहेव नाणावरणिज्जं तहेव निरवसेसं।

—भग० श २६ । उ ११ । प्र १-६ । पृ० ६०२-६०३

सलेशी अचरम नारकी से दण्डक में सलेशी अचरम तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों तक के जीव पापकर्म का बंधन प्रथम और द्वितीय भंग से करते हैं।

सलेशी अचरम मनुष्य प्रथम तीन भंगों से पापकर्म का बन्धन करता है। अलेशी मनुष्य के सम्बन्ध में अचरमता का प्रश्न नहीं करना। क्योंकि अचरम अलेशी नहीं होता है। सलेशी अचरम वानव्यंतर, ज्योतिषी तथा वैमानिक देव सलेशी अचरम नारकी की तरह प्रथम और दूसरे भंग से पापकर्म का बन्धन करते हैं।

सलेशी अचरम नारकी ज्ञानावरणीय कर्म का बन्धन प्रथम और द्वितीय भंग से करता है, मनुष्य को छोड़कर यावत् वैमानिक देवों तक इसी प्रकार जानना। सलेशी अचरम मनुष्य ज्ञानावरणीय कर्म का बन्धन प्रथम तीन भंग से करता है। ज्ञानावरणीय कर्म की तरह दर्शनावरणीय कर्म का वर्णन करना। वेदनीय कर्म के बन्धन में सब दण्डकों में प्रथम और द्वितीय भंग से बन्धन होता है लेकिन मनुष्य में अलेशी का प्रश्न नहीं करना।

सलेशी अचरम नारकी मोहनीय कर्म का बन्धन प्रथम और द्वितीय भंग से करता है बाकी सलेशी अचरम दण्डक में जैसा पापकर्म के बन्धन के सम्बन्ध में कहा, वैसा ही निरवशेष कहना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सलेशी अचरम नारकी आयुकर्म का वन्धन प्रथम और तृतीय भंग से करता है। इसी प्रकार यावत् सलेशी अचरम स्तनितकुमार तक दण्डक के जीव प्रथम और तृतीय भंग से आयुकर्म का बन्धन करते हैं। अचरम तेजोलेशी पृथ्वीकायिक, अप्कायिक व वनस्पति-कायिक जीव केवल तृतीय भंग से आयुकर्म का वन्धन करता है। कृष्णलेशी, नीललेशी व कापोतलेशी अचरम पृथ्वीकायिक, अप्कायिक व वनस्पतिकायिक जीव प्रथम और तृतीय भंग से आयुकर्म का बन्धन करता है। सलेशी अचरम अग्निकायिक व वायुकायिक जीव प्रथम और तृतीय भंग से आयुकर्म का वन्धन करता है। इसी प्रकार सलेशी अचरम द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय प्रथम और तृतीय भंग से आयुकर्म का वन्धन करता है। सलेशी अचरम तिर्यंच पंचेन्द्रिय प्रथम और तृतीय भंग से ; सलेशी अचरम मनुष्य भी प्रथम और तृतीय भंग से, सलेशी अचरम वानव्यंतर, ज्योतिषी तथा वैमानिक देव नारकी की तरह प्रथम और तृतीय भंग से आयुकर्म का बन्धन करता है।

नाम, गोत्र, अन्तराय सम्बन्धी पद ज्ञानावरणीय कर्म की वक्तव्यता की तरह जानना।

अचरम विशेषण से अलेशी की पृच्छा नहीं करनी।

·७५ सलेशी जीव और कर्म का करना।

जीवे (जीवा) णं भंते ! पावं कम्मं किं करिंसु करेन्ति करिस्संति (१), करिंसु करेंति न करिस्संति (२), करिंसु न करेंति करिस्संति (३), करिंसु न करेंति न करिस्संति (४) ? गोयमा ! अत्थेगइए करिंसु करेंति करिस्संति (१), अत्थेगइए करिंसु करेंति न करिस्संति (२), अत्थेगइए करिंसु न करेंति करिस्संति (३), अत्थेगइए करिंसु न करेंति न करिस्संति (४)। सलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं-एवं एएणं अभिलावेणं बंधिसए वत्तव्वया सच्चेव निरवसेसा भाणियव्वा, तहेव नवदंडगसंगहिया एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा।

—भग० श २७। उ १। प्र १-२। पृ० ६०३

पापकर्म का करना चार विकल्प से होता है—(१) किया है, करता है, करेगा, (२) किया है, करता है, न करेगा, (३) किया है, नहीं करता है, करेगा, (४) किया है, नहीं करता है और न करेगा।

सलेशी जीव ने पापकर्म तथा अष्टकर्म किया है इत्यादि उसी प्रकार कहने जैसे बंधन शतक में (देखो ·७४) नवदंडक सहित एकादश उद्देशक कहे गए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·७६ सलेशी जीव और कर्म का समर्जन-समाचरणः—

जीवा णं भंते ! पावं कम्मं कहिं समज्जिणिंसु, कहिं समायरिंसु ? गोयमा ! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा (१), अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य होज्जा (२), अहवा तिरिक्खजोणिएसु य मणुस्सेसु य होज्जा (३), अहवा तिरिक्खजोणिएसु य देवेसु य होज्जा (४), अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य मणुस्सेसु य होज्जा (५), अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य देवेसु होज्जा (६), अहवा तिरिक्खजोणिएसु य मणुस्सेसु य देवेसु य होज्जा (७) अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइसु य मणुस्सेसु य देवेसु य होज्जा (८)।

सलेस्सा णं भंते ! जीवा पावं कम्मं कहिं समज्जिणिंसु, कहिं समायरिंसु ? एवं चेव। एवं कण्हलेस्सा जाव अलेस्सा। ××× नेरइयाणं भंते ! पावं कम्मं कहिं समज्जिणिंसु, कहिं समायरिंसु ? गोयमा ! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्ज त्ति— एवं चेव अट्ठ भंगा भाणियव्वा। एवं सव्वत्थ अट्ठ भंगा, एवं जाव अणागारोवउत्ता वि। एवं जाव वेमाणियाणं। एवं नाणावरणिज्जेण वि दंडओ, एवं जाव अंतराइएणं। एवं एए जीवादीया वेमाणियपज्जवसाणा नव दंडगा भवंति।

—भग० श २८। उ १। पृ० ६०३

जीवों ने किस गति में पापकर्म का समर्जन किया—उपार्जन किया तथा किस गति में पापकर्म का समाचरण किया—पापकर्म की हेतुभूत पापक्रिया का आचरण किया। (१) वे सर्व जीव तिर्यंचयोनि में थे, (२) अथवा तिर्यंचयोनि में तथा नारकियों में थे, (३) अथवा तिर्यंच योनि में तथा मनुष्यों में थे (४) अथवा तिर्यंच योनि में तथा देवों में थे, (५) अथवा तिर्यंच योनि में, नारकियों तथा मनुष्यों में थे, (६) अथवा तिर्यंच योनि में, नारकियों तथा देवों में थे, (७) अथवा तिर्यंच योनि में, मनुष्यों, तथा देवों में थे, (८) अथवा तिर्यंच योनि में, नारकियों, मनुष्यों तथा देवों में थे। इन आठ अवस्थाओं में जीवों ने पापकर्म का समर्जन तथा समाचरण किया था।

सलेशी जीवों ने पापकर्म का समर्जन तथा समाचरण उपर्युक्त आठ विकल्पों में किया था। इसी प्रकार कृष्णलेशी यावत्, अलेशी शुक्ललेशी जीवों ने पापकर्म का समर्जन तथा समाचरण आठ विकल्पों में किया था। सलेशी नारकी जीवों ने भी पापकर्म का समर्जन तथा समाचरण आठ विकल्पों में किया था। इसी प्रकार यावत् वैमानिक देवों तक जानना। सलेशी यावत् अलेशी जीवों ने ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय—अष्ट कर्मों का समर्जन तथा समाचरण आठ विकल्पों में किया था। इसी प्रकार नारकी यावत् वैमानिक जीवों ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापकर्म तथा अष्टकर्मों का समर्जन तथा समाचरण आठ विकल्पों में क्रिया था। पापकर्म तथा अष्टकर्म के अलग-अलग नौ दंडक कहने।

अनंतरोववन्नगा णं भंते! नेरइया पावं कम्मं कहिं समज्जिणिंसु, कहिं समायरिंसु? गोयमा! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा, एवं एत्थ वि अट्ठ भंगा। एवं अनंतरोववन्नगाणं नेरइया(ई)णं जस्स जं अत्थि लेस्सादीयं अणागारोवओगपज्जवसाणं तं सव्वं एयाए भयणाए भाणियव्वं जाव वेमाणियाणं। नवरं अनंतरेसु जे परिहरियव्वा ते जहा बंधिसए तहा इहं वि। एवं नाणावरणिज्जेण वि दंडओ, एवं जाव अंतराइएणं निरवसेसं। एसो वि नवदंडगसंगहिओ उद्देसओ भाणियव्वो।

एवं एएणं कमेणं जहेव बंधिसए उद्देसगाणं परिवाडी तहेव इहं वि अट्ठसु भंगेसु नेयव्वा। नवरं जाणियव्वं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं जाव अचरिमुद्देसो। सव्वे वि एए एक्कारस उद्देसगा।

—भग० श २८। उ २ से ११। पृ० ६०३-६०४

सलेशी अनंतरोपपन्न नारकी जीवों ने पापकर्म का समर्जन तथा समाचरण आठ विकल्पों में किया था। यावत् सलेशी अनंतरोपपन्न वैमानिक देवों ने पापकर्म का समर्जन तथा समाचरण आठ विकल्पों में किया था। जिसमें जितनी लेश्या होती है उतने ही पद कहने। पापकर्म, ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म के नौ दंडक निरवशेष कहने। इस प्रकार नव दंडक सहित उद्देशक कहने।

इस प्रकार क्रम से सलेशी परंपरोपपन्न यावत् सलेशी अचरम जीवों के नव उद्देशक (मोट ११ उद्देशक) कहने। जिस जीव में जितनी लेश्या हो, उतने पद कहने।

·७७ सलेशी जीव और कर्म का प्रारंभ व अंत :- –

जीवा णं भंते! पावं कम्मं किं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु (१), समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु (२), विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु (३), विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु (४)? गोयमा! अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु, जाव अत्थेगइया विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु। से केणट्ठे णं भंते! एवं वुच्चइ—अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु० तं चेव? गोयमा! जीवा चउव्विहा पन्नत्ता, तंजहा—अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा (१), अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा (२), अत्थेगइया विसमाउया समोववन्नगा (३), अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा (४) तत्थणं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु। तत्थ णं जे यंते समाउया विसमोववन्नगा ते णं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु। तत्थ णं जे ते विसमाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु। तत्थ णं जे ते विसमाउया विसमोववन्नगा ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु। से तेणट्ठेणं गोयमा! तं चेव।

सलेस्सा णं भंते! जीवा पावं कम्मं०? एवं चेव, एवं सव्वट्ठाणेसु वि जाव अणागारोवउत्ता। एए सव्वे वि पया एयाए वत्तव्वयाए भाणियव्वा।

नेरइया णं भंते! पावं कम्मं किं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु० पुच्छा? गोयमा! अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु० एवं जहेव जीवाणं तहेव भाणियव्वं जाव अणागारोवउत्ता। एवं जाव वेमाणियाणं जस्स जं अत्थि तं एएणं चेव कमेणं भाणियव्वं। जहा पावेण (कम्मेण) दण्डओ, एएणं कमेणं अट्ठसु वि कम्मप्पगडीसु अट्ठ दण्डगा भाणियव्वा जीवादीया वेमाणियपज्जवसाणा। एसो नवदण्डगसंगहिओ पढमो उद्देसो भाणियव्वो।

—भग० श २६। उ १। प्र १ से ४। पृ० ६०४

जीव पापकर्म के भोगने का प्रारम्भ तथा अंत एक काल या भिन्न काल में करते हैं। इस अपेक्षा से चार विकल्प बनते हैं :—(१) भोगने का प्रारम्भ समकाल में करते हैं तथा भोगने का अंत भी समकाल में करते हैं, (२) भोगने का प्रारम्भ समकाल में करते हैं तथा भोगने का अंत विषमकाल में करते हैं, (३) भोगने का प्रारम्भ विषमकाल में तथा भोगने का अंत समकाल में करते हैं, (४) भोगने का प्रारम्भ विषमकाल में तथा अंत भी विषमकाल में करते हैं।

क्योंकि जीव चार प्रकार के होते हैं। यथा—(१) कितने ही जीव सम आयु वाले तथा समोपपन्नक, (२) कितने ही जीव सम आयु वाले तथा विषमोपपन्नक, (३) कितने ही जीव विषम आयु वाले तथा समोपपन्नक तथा (४) कितने ही जीव विषम आयु वाले तथा विषमोपपन्नक होते हैं।

(१) जो जीव सम आयु वाले तथा समोपपन्नक हैं वे पापकर्म का वेदन समकाल में प्रारम्भ करते हैं तथा समकाल में अंत करते हैं, (२) जो जीव सम आयु वाले तथा विषमोपपन्नक हैं वे पापकर्म का वेदन समकाल में प्रारम्भ करते हैं तथा विषमकाल में अंत करते हैं, (३) जो जीव विषम आयु वाले तथा समोपपन्नक हैं वे पापकर्म के वेदन का प्रारम्भ विषमकाल में करते हैं तथा समकाल में पापकर्म का अंत करते हैं, तथा (४) जो जीव विषम आयु वाले हैं तथा विषमोपपन्नक हैं वे पापकर्म के वेदन का प्रारम्भ विषमकाल में करते हैं तथा विषमकाल में ही पापकर्म का अंत करते हैं।

२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सलेशी जीव सम्बन्धी वक्तव्य सर्व औधिक जीवों की तरह कहना। इसी प्रकार सलेशी नारकी यावत् वैमानिक देवों तक कहना। अलग-अलग लेश्या से, जिसके जितनी लेश्या हो, उतने पद कहने। पापकर्म के दंडक की तरह आठ कर्मप्रकृतियों के आठ दंडक औधिक जीव यावत् वैमानिक देव तक कहने।

अनंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया पावं कम्मं किं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु० पुच्छा ? गोयमा ! अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु, अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु० तं चेव ? गोयमा ! अनंतरोववन्नगा नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तंजहा अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा, तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु। तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु। से तेणट्ठेणं तं चेव। सलेस्सा णं भंते ! अनंतरोववन्नगा नेरइया पावं० ? एवं चेव, एवं जाव अनागारोवउत्ता। एवं असुरकुमाराणं। एवं जाव वेमाणिया(णं), नवरं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं। एवं नाणावरणिज्जेण वि दण्डओ, एवं निरवसेसं जाव अंतराइएणं।

एवं एएणं गमएणं जच्चेव बन्धिसए उद्देसगपरिवाड़ी सच्चेव इह वि भाणियव्वा जाव अचरिमो त्ति। अनंतरउद्देसगाणं चउण्ह वि एक्का वत्तव्वया, सेसाणं सत्तण्हं एक्का।

—भग० श २६। उ २ से ३। पृ० ६०४-५

सलेशी अनंतरोपपन्नक नारकी दो प्रकार के होते हैं; यथा कितने ही समायु समोपपन्नक तथा कितने ही समायु विषमोपपन्नक होते हैं। उनमें जो समायु समोपपन्नक हैं वे पापकर्म का प्रारम्भ समकाल में करते हैं तथा अंत भी समकाल में करते हैं। तथा उनमें जो समायु-विषमोपपन्नक हैं वे पापकर्म का प्रारम्भ समकाल में करते हैं तथा अन्त विषमकाल में करते हैं। इसी प्रकार असुरकुमार यावत् वैमानिक देवों तक कहना, जिसके जितनी लेश्या हो उतने पद कहने। इसी प्रकार आठ कर्मप्रकृति के आठ दण्डक कहने।

इस प्रकार के पाठों द्वारा जैसी बंधन शतक में उद्देशकों की परिपाटी कही, वैसी ही उद्देशकों की परिपाटी यहाँ भी यावत् अचरम उद्देशक तक कहनी। अनंतर सम्बन्धी चार उद्देशकों की एक जैसी वक्तव्यता कहनी। बाकी के सात उद्देशकों की एक जैसी वक्तव्यता कहनी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·७८ सलेशी जीव और कर्मप्रकृति का सत्ता—बन्धन—वेदन :—

·७८·१ सलेशी एकेन्द्रिय और कर्मप्रकृति का सत्ता-बंधन-वेदन :—

कइविहा णं भंते ! कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता ? गोयमा ! पंचविहा कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता, तंजहा—पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया।

कण्हलेस्सा णं भंते ! पुढविकाइया कइविहा पन्नत्ता, गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—सुहुमपुढविकाइया य बायरपुढविकाइया य।

कण्हलेस्सा णं भंते ! सुहुमपुढविकाइया कइ विहा पन्नत्ता ? गोयमा ! एवं एएणं अभिलावेणं चउक्कभेदो जहेव ओहिउद्देसए, जाव वणस्सइकाइय त्ति।

कण्हलेस्सअपज्जत्तसुहुमपुढविकाइया णं भंते! कइ कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ? एवं चेव एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिउद्देसए तहेव पन्नत्ताओ तहेव बन्धन्ति, तहेव वेदेन्ति।

कइविहा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता ? गोयमा ! पंचविहा अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया, एवं एएणं अभिलावेणं तहेव दुयओ भेदो जाव वणस्सइकाइय त्ति।

अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्ससुहुमपुढविकाइयाणं भंते! कइ कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ? एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओहिओ अणंतरोववन्नगाणं उद्देसओ तहेव जाव वेदेंति।

कइविहा णं भंते ! परंपरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता ? गोयमा ! पंचविहा परंपरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता, तंजहा—पुढविकाइया, एवं एएणं अभिलावेणं तहेव चउक्कओ भेदो जाव वणस्सइकाइया त्ति।

परंपरोववन्नगकण्हलेस्सअपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयाणं भंते! कइ कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ? एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिओ परंपरोववन्नगउद्देसओ तहेव जाव वेदेंति। एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिएगिंदियसए एक्कारस उद्देसगा भणिया तहेव कण्हलेस्ससए वि भाणियव्वा जाव अचरिमचरिमकण्हलेस्सा एगिंदिया।

एवं कण्हलेस्सेहिं भणियं एवं नीललेस्सेहि वि सयं भाणियव्वं।

एवं काउलेस्सेहिं वि सयं भाणियव्वं, नवरं 'काउलेस्से'त्ति अभिलावो भाणियव्वो।

—भग० श ३३। श २ से ४। पृ० ६१४-१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्णलेशी एकेन्द्रिय पाँच प्रकार के होते हैं, यथा—पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक। कृष्णलेशी पृथ्वीकायिक दो प्रकार के होते हैं, यथा—सूक्ष्म तथा बादर पृथ्वीकायिक। कृष्णलेशी सूक्ष्म पृथ्वीकायिक दो प्रकार के होते हैं, यथा—पर्याप्त तथा अपर्याप्त पृथ्वीकायिक। इसीप्रकार कृष्णलेशी बादर पृथ्वीकायिक के पर्याप्त तथा अपर्याप्त दो भेद होते हैं। इसीप्रकार कृष्णलेशी वनस्पतिकायिक तक चार-चार भेद जानने।

कृष्णलेशी अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव के आठ कर्मप्रकृतियाँ होती हैं। वह सात अथवा आठ कर्मप्रकृतियाँ बांधता है। चौदह कर्मप्रकृतियाँ वेदता है। इसीप्रकार यावत् पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक तक कहना। प्रत्येक के अपर्याप्त सूक्ष्म, पर्याप्त सूक्ष्म, अपर्याप्त बादर, पर्याप्त बादर इस प्रकार चार-चार भेद कहने।

अनन्तरोपपन्न कृष्णलेशी एकेन्द्रिय पाँच प्रकार के होते हैं, यथा—पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक। तथा प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर दो-दो भेद होते हैं। अनंतरोपपन्न कृष्णलेशी एकेंद्रिय जीव के आठ कर्म प्रकृतियाँ होती हैं। वे आठ कर्मप्रकृतियाँ बांधते हैं और चौदह कर्मप्रकृतियाँ वेदते हैं।

परम्परोपपन्न कृष्णलेशी एकेन्द्रिय पाँच प्रकार के होते हैं—पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक। प्रत्येक के चार-चार भेद कहने। परम्परोपपन्न कृष्णलेशी एकेन्द्रिय के सर्व भेदों में आठ प्रकृतियाँ होती हैं। वे सात अथवा आठ कर्मप्रकृतियाँ बाँधते है तथा चौदह कर्मप्रकृतियाँ वेदते हैं।

अनंतरोपपन्न की तरह अनंतरावगाढ़, अनंतराहारक, अनंतरपर्याप्त कृष्णलेशी एकेन्द्रिय के सम्बंध में भी जानना। परम्परोपपन्न की तरह परम्परावगाढ़, परम्पराहारक, परम्परपर्याप्त, चरम तथा अचरम कृष्णलेशी एकेन्द्रिय के सम्बन्ध में कहना।

जैसा कृष्णलेशी का शतक कहा वैसा ही नीललेशी एकेन्द्रिय तथा कापोतलेशी एकेन्द्रिय जीव का शतक कहना।

'७८'२ सलेशी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय और कर्मप्रकृति का सत्ता-बंधन-वेदन :—

कइविहा णं भंते! कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पन्नत्ता? गोयमा! पंचविहा कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पन्नत्ता, तंजहा—पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया। कण्हलेस्सभवसिद्धियपुढविक्काइया णं भंते! कइविहा पन्नत्ता? गोयमा! दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—सुहुमपुढविकाइया य बादरपुढविकाइया य। कण्हलेस्सभवसिद्धियसुहुमपुढविकाइया णं भंते! कइविहा पन्नत्ता? गोयमा! दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एवं बायरा वि। एवं एएणं अभिलावेणं तहेव चउक्कओ भेदो भाणियव्वो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कण्हलेस्सभवसिद्धियअपज्जत्तसुहुमपुढविकाइया णं भंते! कइ कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ? एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिउद्देसए तहेव जाव वेदेंति।

कइविहा णं भंते! अनंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पन्नत्ता ? गोयमा! पंचविहा अनंतरोववन्नगा० जाव वणस्सइकाइया। अनंतरोववन्नगा कण्हलेस्सभवसिद्धीयपुढविकाइया णं भंते! कइविहा पन्नत्ता ? गोयमा! दुविहा पन्नत्ता, तंजहा— सुहुमपुढविकाइया-- एवं दुयओ भेदो।

अनंतरोववन्नगकण्हलेस्सभवसिद्धियसुहुमपुढविकाइया णं भंते! कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ? एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिओ अनंतरोववन्नगउद्देसओ तहेव जाव वेदेंति। एवं एएणं अभिलावेणं एक्कारस वि उद्देसगा तहेव भाणियव्वा जहा ओहियसए जाव 'अचरिमो' त्ति।

जहा कण्हलेस्सभवसिद्धिएहिं सयं भणियं एवं नीललेस्सभवसिद्धिएहि वि सयं भाणियव्वं।

एवं काउलेस्सभवसिद्धिएहि वि सयं।

—भग० श ३३। उ ६ से ८। पृ० ६१५-१६

कृष्णलेशी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के सम्बन्ध में भी ग्यारह उद्देशक वैसे ही कहने जैसे कृष्णलेशी एकेन्द्रिय के ग्यारह उद्देशक कहे, लेकिन 'कृष्णलेशी' के स्थान में 'कृष्णलेशीभवसिद्धिक' कहना।

'नीललेशी' के स्थान में 'नीललेशीभवसिद्धिक' कहना। 'कापोतलेशी' के स्थान में 'कापोतलेशीभवसिद्धिक' कहना।

'७८'३ सलेशी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय और कर्मप्रकृति का सत्ता-बंधन-वेदन :—

कइविहा णं भंते! अभवसिद्धिया एगिंदिया पन्नत्ता ? गोयमा! पंचविहा अभवसिद्धिया एगिंदिया पन्नत्ता, तंजहा—पुढविकाइया, जाव वणस्सकाइया। एवं जहेव भवसिद्धियसयं भणियं, [एवं अभवसिद्धियसयं] नवरं नव उद्देसगा चरमअचरमउद्देसगवज्जा, सेसं तहेव। एवं कण्हलेस्सअभवसिद्धियएगिंदियसयं वि। नीललेस्सअभवसिद्धियएगिंदिएहि वि सयं। काऊलेस्सअभवसिद्धियसयं, एवं चत्तारि वि अभवसिद्धियसयाणि, नव नव उद्देसगा भवंति, एवं एयाणि बारस एगिंदियसयाणि भवंति।

—भग० श ३३। श ६ से १२। पृ० ६१६

कृष्णलेशी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय का शतक उसी प्रकार कहना, जिस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्णलेशी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय का कहा; लेकिन चरम-अचरम उद्देशकों को बाद देकर नव उद्देशक कहने।

इसी प्रकार नीललेशी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय के नव उद्देशक कहने तथा कापोत-लेशी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय के भी नव उद्देशक कहने।

·७६ सलेशी जीव और अल्पकर्मतर-बहुकर्मतर :—

सिय भंते! कण्हलेस्से नेरइए अप्पकम्मतराए, नीललेस्से नेरइए महाकम्मतराए? हंता! सिया। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—कण्हलेस्से नेरइए अप्पकम्मतराए, नीललेस्से नेरइए महाकम्मतराए? गोयमा! ठिइं पडुच्च, से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव महाकम्मतराए। सिय भंते! नीललेस्से नेरइए अप्पकम्मतराए, काऊलेस्से नेरइए महाकम्मतराए हंता? सिया। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—नीललेस्से नेरइए अप्पकम्मतराए काऊलेस्से नेरइए महाकम्मतराए? गोयमा! ठिइं पडुच्च, से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव महाकम्मतराए। एवं असुरकुमारे वि, नवरं तेऊलेस्सा अब्भहिया, एवं जाव वेमाणिया, जस्स जइ लेस्साओ तस्स तत्तिया भाणियव्वाओ, जोइसियस्स न भण्णइ, जाव सिय भंते! पम्हलेस्से वेमाणिए अप्पकम्मतराए सुक्कलेस्से वेमाणिए महाकम्मतराए? हंता! सिया। से केणट्ठेणं०? सेसं जहा नेरइयस्स जाव महाकम्मतराए।

—भग० श ७। उ ३। प्र ६, ७। पृ० ५१५

कदाचित् कृष्णलेश्यावाला नारकी अल्पकर्मवाला तथा नीललेश्यावाला नारकी महा-कर्मवाला होता है। कदाचित् नीललेश्यावाला नारकी अल्पकर्मवाला तथा कापोतलेश्या वाला नारकी महाकर्मवाला होता है। ऐसा स्थिति की अपेक्षा से कहा गया है। ज्योतिषी देवों को छोड़कर बाकी दंडक के सभी जीवों में ऐसा ही जानना; लेकिन जिसके जितनी लेश्या हो उतनी ही लेश्या में तुलना करनी। ज्योतिषी देवों में केवल एक तेजोलेश्या ही होती है। अतः तुलनात्मक प्रश्न नहीं बनता। यावत् वैमानिक देवों में भी कदाचित् पद्म-लेशी वैमानिक अल्पकर्मतर तथा शुक्ललेशी वैमानिक महाकर्मतर हो सकता है। टीकाकार ने उसे इस प्रकार स्पष्ट किया है :—

कृष्णलेश्या अत्यंत अशुभ परिणामरूप होने के कारण तथा उसकी अपेक्षा नीललेश्या कुछ शुभ परिणामरूप होने के कारण सामान्यतः कृष्णलेशी जीव बहुकर्मवाला तथा नील-लेशी जीव अल्पकर्मवाला होता है। परन्तु कदाचित् आयुष्य की स्थिति की अपेक्षा से कृष्णलेशी अल्पकर्मवाला तथा नीललेशी महाकर्मवाला हो सकता है। जिस प्रकार कृष्णलेशी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारकी जिसने अपनी आयुष्य की अधिक स्थिति क्षय कर ली हो तथा जिसके अधिक कर्मों का क्षय हुआ हो तो उसकी अपेक्षा पाँचवीं नरक-पृथ्वी का सत्रह सागरोपम आयुष्यवाला नीललेशी नारकी जो अभी-अभी उत्पन्न हुआ है तथा जिसने अपनी आयुष्य की स्थिति को अधिक क्षय नहीं किया है वह अधिक कर्मवाला होगा। अतः उपर्युक्त कृष्णलेशी जीव से वह महाकर्मवाला होगा।

·८० सलेशी जीव और अल्पऋद्धि-महाऋद्धि :—

एएसि णं भंते ! जीवाणं कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पड्ढिया वा महड्ढिया वा ? गोयमा ! कण्हलेसेहिंतो नीललेसा महड्ढिया, नीललेसेहिंतो काऊलेसा महड्ढिया, एवं काऊलेसेहिंतो तेऊलेसा महड्ढिया, तेऊलेसेहिंतो पम्हलेस्सा महड्ढिया, पम्हलेसेहिंतो सुक्कलेसा महड्ढिया, सव्वप्पड्ढिया जीवा कण्हलेसा, सव्वमहड्ढिया सुक्कलेसा। एएसि णं भंते ! नेरइयाणं कण्हलेसाणं नीललेसाणं काऊलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पड्ढिया वा महड्ढिया वा ? गोयमा ! कण्हलेसेहिंतो नीललेसा महड्ढिया, नीललेसेहिंतो काऊलेसा महड्ढिया, सव्वप्पड्ढिया नेरइया कण्हलेसा, सव्वमहड्ढिया नेरइया काऊलेसा। एएसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियाणं, कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पड्ढिया वा महड्ढिया वा ? गोयमा ! जहा जीवाणं। एएसि णं भंते ! एगिंदियतिरिक्खजोणियाणं कण्हलेसाणं जाव तेऊलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पड्ढिया वा महड्ढिया वा ? गोयमा ! कण्हलेसेहिंतो एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो नीललेसा महड्ढिया, नीललेसेहिंतो तिरिक्खजोणिएहिंतो काऊलेसा महड्ढिया, काऊलेसेहिंतो तेऊलेसा महड्ढिया, सव्वप्पड्ढिया एगेंदियतिरिक्खजोणिया कण्हलेस्सा, सव्वमहड्ढिया तेऊलेसा। एवं पुढविकाइयाण वि। एवं एएणं अभिलावेणं जहेव लेस्साओ भावियाओ तहेव नेयव्वं जाव चउरिंदिया। पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीणं संमुच्छिमाणं गब्भवक्कंतियाण य सव्वेसिं भाणियव्वं जाव अप्पड्ढिया वेमाणिया देवा तेऊलेसा, सव्वमहड्ढिया वेमाणिया सुक्कलेसा। केई भणंति-चउवीसं दण्डएणं इड्ढी भाणियव्वा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू २३-२५। पृ० ४४२

एएसि णं भंते ! दीवकुमाराणं कण्हलेस्साणं जाव तेऊलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा महड्ढिया वा ? गोयमा ! कण्हलेस्साहिंतो नीललेस्सा महिड्ढिया जाव सव्वमहड्ढिया तेऊलेस्सा। ××× उदहिकुमाराणं ××× एवं चेव। एवं दिसाकुमारा वि। एवं थणियकुमारा वि।

—भग० श १६। उ ११-१४। पृ० ७५३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एएसि णं भंते ! एगिंदियाणं कण्हलेस्साणं इड्ढि० जहेव दीवकुमाराणं। नागकुमारा णं भंते ! सव्वे समाहारा जहा सोलसमसए दीवकुमारुद्देसए तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव इड्ढी।

सुवण्णकुमारा णं भंते ! ××× एवं चेव। विज्जुकुमारा णं भंते ! ××× एवं चेव। वाउकुमारा णं भंते ! ××× एवं चेव। अग्गिकुमारा णं भंते ! ××× एवं चेव।

—भग० श १७। उ १२-१७। पृ० ७६१

कृष्णलेशी जीव से नीललेशी जीव महाऋद्धि वाला होता है, नीललेशी जीव से कापोतलेशी जीव महाऋद्धि वाला होता है। कापोतलेशी जीव से तेजोलेशी जीव महाऋद्धि वाला, तेजोलेशी जीव से पद्मलेशी जीव महाऋद्धि वाला तथा पद्मलेशी जीव से शुक्ललेशी जीव महाऋद्धि वाला होता है। सबसे अल्पऋद्धि वाला कृष्णलेशी जीव तथा सबसे महाऋद्धि वाला शुक्ललेशी जीव होता है।

कृष्णलेशी नारकी से नीललेशी नारकी महाऋद्धि वाला तथा नीललेशी नारकी से कापोतलेशी नारकी महाऋद्धि वाला होता है। कृष्णलेशी नारकी सबसे अल्पऋद्धि वाला तथा कापोतलेशी नारकी सबसे महाऋद्धि वाला होता है।

कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी तिर्यंचयोनिक जीवों में अल्पऋद्धि तथा महाऋद्धि के सम्बन्ध में वैसा ही कहना जैसा औधिक जीवों के सम्बन्ध में कहा गया है।

कृष्णलेशी एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव से नीललेशी एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव महाऋद्धि वाला, नीललेशी एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव से कापोतलेशी एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव महाऋद्धि वाला तथा कापोतलेशी एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव से तेजोलेशी एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव महाऋद्धि वाला होता है। कृष्णलेशी एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव सबसे अल्पऋद्धि वाला तथा तेजोलेशी एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव सबसे महाऋद्धि वाला होता है।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों के सम्बन्ध में कहना। इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों तक कहना परन्तु जिसके जितनी लेश्या हो उतनी लेश्या में अल्पऋद्धि महाऋद्धि पद कहना।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेंद्रिय तिर्यंच स्त्री, संमूर्च्छिम तथा गर्भज सब जीवों में अल्पऋद्धि महाऋद्धि पद कहना। यावत् तेजोलेशी वैमानिक सबसे अल्पऋद्धि वाले तथा शुक्ललेशी वैमानिक सबसे महाऋद्धिवाले होते हैं। कोई आचार्य कहते हैं कि ऋद्धि के आलापक चौबीस दण्डकों में ही कहने चाहिए। ज्योतिषी देवों में केवल एक तेजोलेश्या होने के कारण तुलनात्मक प्रश्न नहीं बनता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्णलेशी द्वीपकुमार से नीललेशी द्वीपकुमार महाऋद्धिवाला, नीललेशी द्वीपकुमार से कापोतलेशी द्वीपकुमार महाऋद्धिवाला, कापोतलेशी द्वीपकुमार से तेजोलेशी द्वीपकुमार महाऋद्धिवाला होता है। कृष्णलेशी द्वीपकुमार सबसे अल्पऋद्धिवाला तथा तेजोलेशी द्वीपकुमार सबसे महाऋद्धिवाला होता है।

इसी प्रकार उदधिकुमार, दिशाकुमार, स्तनितकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्-कुमार, वायुकुमार तथा अग्निकुमार के विषय में वैसा ही कहना, जैसा द्वीपकुमार के विषय में कहा।

·८१ सलेशी जीव और बोधि :—

सम्मद्दंसणरत्ता, अनियाणा सुक्कलेसमोगाढा।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं सुलहा भवे बोही॥
मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा कण्हलेसमोगाढा।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही॥

—उत्त० अ ३६। गा २५७, ५८। पृ० १०६

सम्यग्दर्शन में अनुरक्त, निदान रहित, शुक्ललेश्या में अवगाढ़ होकर जो जीव मरते हैं वे परभव में सुलभबोधि होते हैं।

मिथ्यादर्शन में रत, निदान सहित, कृष्णलेश्या में अवगाढ़ होकर जो जीव मरते हैं वे परभव में दुर्लभबोधि होते हैं।

·८२ सलेशी जीव और समवसरण :—

·८२·१ सलेशी जीव और मतवाद (दर्शन) :—

सलेस्सा णं भंते ! जीवा किं किरियावाई० पुच्छा ? गोयमा ! किरियावाई वि, अकिरियावाई वि, अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि। एवं जाव सुक्कलेस्सा।

अलेस्सा णं भंते ! जीवा० पुच्छा ? गोयमा ! किरियावाई। नो अकिरियावाई नो अन्नाणियवाई, नो वेणइयवाई।

सलेस्सा णं भंते ! नेरइया किं किरियावाई० ? एवं चेव। एवं जाव काऊ-लेस्सा। ××× नवरं जं अत्थि तं भाणियव्वं सेसं न भन्नंति। जहा नेरइया एवं जाव थणियकुमारा। पुढविकाइया णं भंते ! किं किरियावाई० पुच्छा ? गोयमा ! नो किरियावाई, अकिरियावाई वि, अन्नाणियवाई वि, नो वेणइयवाई। एवं पुढविकाइयाणं जं अत्थि तत्थ सव्वत्थ वि एयाइं दो मज्झिल्लाइं समोसरणाइं जाव

२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणागारोवउत्ता वि। एवं जाव चउरिंदियाणं। सव्वट्ठाणेसु एयाइं चेव मज्झिल्ल-गाइं दो समोसरणाइं ××× पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा जीवा। नवरं जं अत्थि तं भाणियव्वं। मणुस्सा जहा जीवा तहेव निरवसेसं। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

—भग० श ३०। उ १। प्र ३, ४, ८, ६। पृ० ६०५-६०६

दर्शन की अपेक्षा से जीव, समास में, चार मतवादों में विभक्त हैं, यथा—क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी। इन मतवादों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी हेतु आया० श्रु १। अ १। उ १। सू ३ की टीका देखें।

सलेशी जीव क्रियावादी भी, अक्रियावादी भी, अज्ञानवादी भी तथा विनयवादी भी होते हैं। कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी जीव चारों मतवादवाले होते हैं। अलेशी जीव केवल क्रियावादी होते हैं।

सलेशी नारकी भी चारों मतवादवाले होते हैं। कृष्णलेशी, नीललेशी तथा कापोत-लेशी नारकी भी चारों मतवादवाले होते हैं। सलेशी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार चारों मतवादवाले होते हैं।

सलेशी पृथ्वीकायिक जीव अक्रियावादी तथा अज्ञानवादी होते हैं। इसी प्रकार यावत् सलेशी चतुरिन्द्रिय जीव अक्रियावादी तथा अज्ञानवादी होते हैं।

सलेशी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिवाले जीव चारों मतवादवाले होते हैं। सलेशी मनुष्य भी चारों मतवाद वाले हैं। अलेशी मनुष्य केवल क्रियावादी होते हैं। सलेशी वानव्यंतर, ज्योतिषी तथा वैमानिक देव भी चारों मतवादवाले होते हैं।

जिसके जितनी लेश्याएं हों उतने विवेचन करने।

·८२·२ सलेशी जीव के मतवाद (दर्शन) की अपेक्षा आयु का बंध :—

किरियावाइ णं भंते ! जीवा किं नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पकरेंति, देवाउयं पकरेंति ? गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं वि पकरेंति, देवाउयं वि पकरेंति।

जइ देवाउयं पकरेंति किं भवणवासिदेवाउयं पकरेंति, जाव वेमाणियदेवाउयं पकरेंति ? गोयमा ! नो भवणवासीदेवाउयं पकरेंति, नो वाणमंतरदेवाउयं पकरेंति, नो जोइसियदेवाउयं पकरेंति, वेमाणियदेवाउयं पकरेंति। अकिरियावाई णं भंते ! जीवा किं नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्ख० पुच्छा ? गोयमा ! नेरइयाउयं वि पकरेंति, जाव देवाउयं वि पकरेंति। एवं अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

सलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेंति० पुच्छा ? गोयमा ! नो नेरइयाउयं० एवं जहेव जीवा तहेव सलेस्सा वि चउहि वि समोसरणेहिं भाणियव्वा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कण्हलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेंति० पुच्छा ? गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति। अकिरियावाई अन्नाणियवाई वेणइयवाई य चत्तारि वि आउयाइं पकरेंति। एवं नीललेस्सा वि। काऊलेस्सा वि। तेउलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं नेरइयाउयं पकरेइ (रेंति)० पुच्छा ? गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेइ, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेइ, मणुस्साउयं पकरेइ, देवाउयं वि पकरेइ। जइ देवाउयं पकरेइ—तहेव। तेऊलेस्सा णं भंते ! जीवा अकिरियावाई किं नेरइयाउयं० पुच्छा ? गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेइ मणुस्साउयं वि पकरेइ, तिरिक्खजोणियाउयं वि पकरेइ, देवाउयं वि पकरेइ। एवं अन्नाणियावाई वि, वेणइयवाई वि। जहा तेऊलेस्सा एवं पम्हलेस्सा वि सुक्कलेस्सा वि नायव्वा।

अलेस्सा णं भंते। जीवा किरियावाई किं नेरइयाउयं० पुच्छा ? गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेइ, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेइ, नो मणुस्साउयं पकरेइ, नो देवाउयं पकरेइ (रेंति)।

—भग० श ३०। उ १। प्र १० से १७। पृ० ६०६-६०७

सलेशी क्रियावादी जीव नरकायु तथा तिर्यंचायु नहीं बाँधते हैं। वे मनुष्यायु तथा देवायु बाँधते हैं; देवायु में भी वे सिर्फ वैमानिक देवों की आयु बाँधते हैं। सलेशी अक्रियावादी जीव नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु तथा देवायु चारों प्रकार की आयु बाँधते हैं। इसी प्रकार सलेशी अज्ञानवादी तथा सलेशी विनयवादी भी चारों प्रकार की आयु बाँधते हैं। कृष्णलेशी क्रियावादी जीव केवल मनुष्यायु बाँधते हैं। कृष्णलेशी अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी चारों प्रकार की आयु बाँधते हैं। नीललेशी तथा कापोतलेशी क्रियावादी जीव केवल मनुष्यायु बाँधते हैं। नीललेशी तथा कापोतलेशी अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी जीव चारों प्रकार की आयु बाँधते हैं। तेजोलेशी क्रियावादी जीव केवल मनुष्यायु तथा देवायु बाँधते हैं। देवायु में भी वे केवल वैमानिक देवायु बाँधते हैं। तेजोलेशी अक्रियावादी जीव नरकायु नहीं बाँधते, तिर्यंचायु, मनुष्यायु तथा देवायु बाँधते हैं। तेजोलेशी अज्ञानवादी तथा विनयवादी भी नरकायु नहीं बाँधते, तिर्यंचायु, मनुष्यायु तथा देवायु बाँधते हैं। तेजोलेशी चार मतवादियों के सम्बन्ध में जैसा कहा वैसा ही पद्मलेशी और शुक्ललेशी चारों मतवादियों के सम्बन्ध में कहना। अलेशी क्रियावादी जीव चारों में से कोई आयु नहीं बाँधते हैं। अलेशी केवल क्रियावादी होते हैं।

सलेस्सा णं भंते ! नेरइया किरियावाई किं नेरइयाउयं० ? एवं सव्वे वि नेरइया जे किरियावाई ते मणुस्साउयं एगं पकरेइ, जे अकिरियावाई, अन्नाणियवाई,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेणइयवाई ते सव्वट्ठाणेसु वि नो नेरइयाउयं पकरेइ, तिरिक्खजोणियाउयं वि पकरेइ, मणुस्साउयं वि पकरेइ, नो देवाउयं पकरेइ। ××× एवं जाव थणियकुमारा जहेव नेरइया।

अकिरियावाई णं भंते! पुढविकाइया० पुच्छा? गोयमा! नो नेरइयाउयं पकरेइ, तिरिक्खजोणियाउयं पकरेइ, मणुस्साउयं पकरेइ, नो देवाउयं पकरेइ। एवं अन्नाणियवाई वि। सलेस्सा णं भंते०! एवं जं जं पदं अत्थि पुढविकाइयाणं तहिं तहिं मज्झिमेसु दोसु समोसरणेसु एवं चेव दुविहं आउयं पकरेइ। नवरं तेऊलेस्साए न किं वि पकरेइ। एवं आउक्काइयाण वि, एवं वणस्सइकाइयाण वि। तेउकाइया, वाउकाइया सव्वट्ठाणेसु मज्झिमेसु दोसु समोसरणेसु नो नेरइयाउयं पकरेइ, तिरिक्खजोणियाउयं पकरेइ, नो मणुस्साउयं पकरेइ, नो देवाउयं पकरेइ। वेइंदिय-तेइंदियचउरिंदियाणं जहा पुढविकाइयाणं × × ×। किरियावाई णं भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया किं नेरइयाउयं पकरेइ० पुच्छा? गोयमा! जहा मणपज्जवनाणी अकिरियावाई, अन्नाणियवाई, वेणइयवाई य चउव्विहं वि पकरेइ। जहा ओहिया तहा सलेस्सा वि। कण्हलेस्सा णं भंते! किरियावाई पंचिंदियतिरक्खजोणिया किं नेरइयाउयं० पुच्छा? गोयमा! नो नेरइयाउयं पकरेइ, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेइ, नो मणुस्साउयं पकरेइ, नो देवाउयं पकरेइ। अकिरियावाई, अन्नाणियवाई, वेणइयवाई चउव्विहं वि पकरेइ। जहा कण्हलेस्सा एवं नीललेस्सा वि, काऊलेस्सा वि, तेऊलेस्सा जहा सलेस्सा। नवरं अकिरियावाई, अन्नाणियवाई, वेणइयवाई य नो नेरइयाउयं पकरेइ, तिरिक्खजोणियाउयं वि पकरेइ, मणुस्साउयं वि पकरेइ, देवाउयं वि पकरेइ। एवं पम्हलेसा वि, एवं सुक्कलेस्सा वि भाणियव्वा। ××× जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वत्तव्वया भणिया एवं मणुस्साण वि (वत्तव्वया) भाणियव्वा × × × अलेस्सा केवलनाणी अवेदगा अकसाई अजोगी य एए एगं वि आउयं न पकरेइ। जहा ओहिया जीवा सेसं तं चेव। वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा असुरकुमारा।

—भग० श ३०। उ १। प्र २५ से २६। पृ० ६०७-६०८

सलेशी क्रियावादी नारकी सब केवल मनुष्यायु बाँधते हैं तथा अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी नारकी सभी स्थानों में नरकायु तथा देवायु नहीं बाँधते हैं, तिर्यंचायु तथा मनुष्यायु बाँधते हैं। नारकी की तरह सलेशी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव जो क्रियावादी हैं वे केवल एक मनुष्यायु का बंधन करते हैं तथा जो अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी हैं वे तिर्यंचायु तथा मनुष्यायु का बंधन करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सलेशी पृथ्वीकायिक जो अक्रियावादी तथा अज्ञानवादी होते हैं वे तिर्यंचायु तथा मनुष्यायु बाँधते हैं ; नरकायु तथा देवायु नहीं बाँधते हैं। कृष्ण-नील-कापोतलेशी पृथ्वीकायिकों के सम्बन्ध में ऐसा ही कहना। तेजोलेशी पृथ्वीकायिक किसी भी आयु का बंधन नहीं करते हैं। पृथ्वीकायिक जीवों की तरह अप्कायिक तथा वनस्पतिकायिक जीवों के सम्बन्ध में जानना।

सलेशी अग्निकायिक तथा वायुकायिक जीव अक्रियावादी तथा अज्ञानवादी ही होते हैं तथा सर्व स्थानों में केवल तिर्यंचायु बाँधते हैं।

पृथ्वीकायिक जीवों की तरह द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में जानना।

क्रियावादी सलेशी तिर्यंच पंचेंद्रिय जीव मनःपर्यव ज्ञानी की तरह केवल देवायु बाँधते हैं तथा देवायु में भी केवल वैमानिक देवों की आयु बाँधते हैं। अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी सलेशी पंचेंद्रिय तिर्यंच चारों ही प्रकार की आयु बाँधते हैं। कृष्णलेशी क्रियावादी पंचेंद्रिय तिर्यंच कोई भी आयु नहीं बाँधते हैं। अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी कृष्णलेशी पंचेंद्रिय तिर्यंच चारों ही प्रकार की आयु बाँधते हैं। जैसा कृष्णलेशी पंचेंद्रिय तिर्यंच के सम्बन्ध में कहा, वैसा ही नीललेशी तथा कापोतलेशी तिर्यंच पंचेंद्रिय के सम्बन्ध में जानना। क्रियावादी तेजोलेशी तिर्यंच पंचेंद्रिय क्रियावादी सलेशी तिर्यंच पंचेंद्रिय की तरह केवल वैमानिक देवों की आयु बाँधते हैं। अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी तेजोलेशी तिर्यंच पंचेंद्रिय नरकायु नहीं बाँधते हैं, परन्तु तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु बाँधते हैं। पद्मलेशी तथा शुक्ललेशी पंचेंद्रिय तिर्यंच के सम्बंध में जैसा तेजोलेशी तिर्यंच पंचेंद्रिय के सम्बन्ध में कहा, वैसा ही कहना।

जिस प्रकार सलेशी यावत् शुक्ललेशी पंचेंद्रिय तिर्यंच के सम्बन्ध में कहा गया है वैसा ही सलेशी यावत् शुक्ललेशी मनुष्य के सम्बन्ध में भी कहना। अलेशी मनुष्य किसी भी प्रकार की आयु नहीं बाँधते हैं।

वाणव्यंतर-ज्योतिषी वैमानिक देवों के सम्बन्ध में वैसा ही कहना जैसा असुरकुमार देवों के सम्बन्ध में कहा गया है। जिसमें जितनी लेश्या हो उतनी लेश्या का विवेचन करना।

'८२'३ सलेशी जीव और मतवाद की अपेक्षा से भवसिद्धिकता-अभवसिद्धिकता :—

सलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं भवसिद्धिया पुच्छा ? गोयमा ! भवसिद्धिया, नो अभवसिद्धिया। सलेस्सा णं भंते ! जीवा अकिरियावाई किं भवसिद्धिया पुच्छा ? गोयमा ! भवसिद्धिया वि अभवसिद्धिया वि। एवं अन्नाणियवाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वि, वेणइयवाई वि। जहा सलेस्सा एवं जाव सुक्कलेस्सा। अलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावाई किं भवसिद्धिया पुच्छा ? गोयमा ! भवसिद्धिया, नो अभवसिद्धिया। ××× एवं नेरइया वि भाणियव्वा नवरं नायव्वं जं अत्थि, एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा, पुढविक्काइया सव्वट्ठाणेसु वि मज्झिल्लेसु दोसु वि समोसरणेसु भवसिद्धिया वि अभवसिद्धिया वि एवं जाव वणस्सइकाइया, बेइंदियतेइंदियचउरिंदिया एवं चेव नवरं सम्मत्ते ओहिनाणे आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे एएसु चेव दोसु मज्झिमेसु समोसरणेसु भवसिद्धिया नो अभवसिद्धिया, सेसं तं चेव, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया, नवरं नायव्वं जं अत्थि, मणुस्सा जहा ओहिया जीवा, वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा असुरकुमारा।

—भग० श ३० । उ १ । प्र ३२ से ३४ । पृ० ६०८-६

क्रियावादी सलेशी जीव भवसिद्धिक होते हैं, अभवसिद्धिक नहीं होते हैं। अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी सलेशी जीव भवसिद्धिक भी होते हैं, अभवसिद्धिक भी होते हैं। कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी जीवों के सम्बन्ध में वैसा ही कहना जैसा सलेशी जीवों के सम्बन्ध में कहा है। क्रियावादी अलेशी जीव भवसिद्धिक होते हैं, अभवसिद्धिक नहीं होते हैं।

सलेशी यावत् कापोतलेशी नारकी के सम्बन्ध में वैसा ही कहना जैसा सलेशी जीव के सम्बन्ध में कहा है। इसीप्रकार सलेशी यावत् तेजोलेशी असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहना।

पृथ्वीकायिक यावत् चतुरिन्द्रिय के सर्वलेश्या स्थानों में मध्य के दो समवसरणों में भवसिद्धिक भी होते हैं, अभवसिद्धिक भी होते हैं।

सलेशी यावत् शुक्ललेशी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के सम्बन्ध में वैसा ही कहना जैसा नारकी के सम्बन्ध में कहा है।

क्रियावादी सलेशी यावत् शुक्ललेशी तथा अलेशी मनुष्य भवसिद्धिक होते हैं, अभवसिद्धिक नहीं होते हैं। अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी सलेशी यावत् शुक्ललेशी मनुष्य भवसिद्धिक भी होते हैं, अभवसिद्धिक भी होते हैं।

वानव्यंतर-ज्योतिषी-वैमानिक देवों के सम्बन्ध में वैसा ही कहना जैसा असुरकुमार देवों के सम्बन्ध में कहा गया है। जिसमें जितनी लेश्या हो उतनी लेश्या का विवेचन करना।

·८२·४ सलेशी अनंतरोपपन्न यावत् अचरम जीव तथा मतवाद की अपेक्षा से वक्तव्यता :—

अणंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं किरियावाई० पुच्छा ? गोयमा ! किरियावाई वि जाव वेणइयवाई वि। सलेस्सा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा नेरइया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किं किरियावाई० ? एवं चेव, एवं जहेव पढमुद्देसे नेरइयाणं वत्तव्वया तहेव इह वि भाणियव्वा, नवरं जं जस्स अत्थि अणंतरोववन्नगाणं नेरइयाणं तं तस्स भाणियव्वं, एवं सव्वजीवाणं जाव वेमाणियाणं, नवरं अणंतरोववन्नगाणं जं जहिं अत्थि तं तहिं भाणियव्वं।

सलेस्सा णं भंते! किरियावाई अणंतरोववन्नगा नेरइया किं नेरइयाउयं० पुच्छा ? गोयमा! नो नेरइयाउयं पकरेइ (रेंति) जाव नो देवाउयं पकरेइ, एवं जाव वेमाणिया। एवं सव्वट्ठाणेसु वि अणंतरोववन्नगा नेरइया न किंचि वि आउयं पकरेइ जाव अणागारोवउत्तत्ति। एवं जाव वेमाणिया नवरं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं।

सलेस्सा णं भंते! किरियावाई अणंतरोववन्नगा नेरइया किं भवसिद्धिया अभवसिद्धिया ? गोयमा! भवसिद्धिया, नो अभवसिद्धिया, एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिए उद्देसए नेरइयाणं वत्तव्वया भणिया तहेव इह वि भाणियव्वा जाव अणागारोवउत्तत्ति, एवं जाव वेमाणियाणं नवरं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं, इमं से लक्खणं जे किरियावाई सुक्कपक्खिया सम्मामिच्छादिट्ठिया एए सव्वे भवसिद्धिया नो अभवसिद्धिया, सेसा सव्वे भवसिद्धिया वि अभवसिद्धिया वि।

परंपरोववन्नगा णं भंते! नेरइया किं किरियावाई० एवं जहेव ओहिओ उद्देसओ तहेव परंपरोववन्नएसु वि नेरइयाईओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं, तहेव तियदंडगसंगहिओ।

एवं एएणं कमेणं जच्चेव बंधिसए उद्देसगाणं परिवाडी सच्चेव इहं वि जाव अचरिमो उद्देसओ, नवरं अणंतरा चत्तारि वि एक्कगमगा, परंपरा चत्तारि वि एक्कगमएणं, एवं चरिमा वि, अचरिमा वि एवं चेव नवरं अलेस्सो केवली अजोगी व भन्नइ। सेसं तहेव।

—भग० श ३०। उ २ से ११। पृ० ६०६-१०

सलेशी अनंतरोपपन्न नारकी चारों मतवाद वाले होते हैं। प्रथम उद्देशक ('८२'१) में नारकियों के सम्बन्ध में जैसी वक्तव्यता कही वैसी ही वक्तव्यता यहाँ भी कहनी। लेकिन अनंतरोपपन्न नारकियों में जिसमें जो सम्भव हो उसमें वह कहना। इसी प्रकार यावत् वैमानिक देव तक सब जीवों के सम्बन्ध में जानना। लेकिन अनंतरोपपन्न जीवों में जिसमें जो संभव हो उसमें वह कहना।

क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी तथा विनयवादी सलेशी अनंतरोपपन्न नारकी किसी भी प्रकार की आयु नहीं बाँधते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिक देवों तक कहना। लेकिन जिसमें जो संभव हो उसमें वह कहना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रियावादी सलेशी अनंतरोपपन्न नारकी भवसिद्धिक होते हैं, अभवसिद्धिक नहीं होते हैं। इस प्रकार इस अभिलाप से लेकर औघिक उद्देशक ('८२'३) में नारकियों के सम्बन्ध में जैसी वक्तव्यता कही वैसी वक्तव्यता यहाँ भी कहनी। इसी प्रकार यावत् वैमानिक देव तक जानना लेकिन जिसके जो संभव हो वह कहना। इस लक्षण से जो क्रियावादी, शुक्ल-पक्षी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं वे भवसिद्धिक होते हैं, अभवसिद्धिक नहीं। अवशेष सब जीव भवसिद्धिक भी होते हैं, अभवसिद्धिक भी होते हैं।

सलेशी परंपरोपपन्न नारकी आदि (यावत् वैमानिक) जीवों के सम्बन्ध में जैसा औघिक उद्देशक में कहा वैसा ही तीनों दण्डकों (क्रियावादित्वादि, आयुबंध, भव्याभव्यत्वादि) के सम्बन्ध में निरवशेष कहना।

इस प्रकार इसी क्रम से बंधक शतक (देखो '७४) में उद्देशकों की जो परिपाटी कही है उसी परिपाटी से यहाँ अचरम उद्देशक तक जानना। विशेषता यह है कि 'अनन्तर' शब्द घटित चार उद्देशकों में तथा 'परंपर' घटित चार उद्देशकों में एक-सा गमक कहना। इसी प्रकार 'चरम' तथा 'अचरम' शब्द घटित उद्देशकों के सम्बन्ध में भी कहना लेकिन अचरम में अलेशी, केवली, अयोगी के सम्बन्ध में कुछ भी न कहना।

'८३ सलेशी जीव और आहारकत्व-अनाहारकत्व :—

सलेस्से णं भंते ! जीवे किं आहारए अणाहारए ? गोयमा ! सिय आहारए, सिय अणाहारए, एवं जाव वेमाणिए।

सलेस्सा णं भंते ! जीवा किं आहारगा अणाहारगा ? गोयमा ! जीवेगिंदिय-वज्जो तियभंगो, एवं कण्हलेस्सा वि नीललेस्सा वि काऊलेस्सा वि जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो। तेऊलेस्साए पुढविआउवणस्सइकाइयाणं छब्भंगा, सेसाणं जीवाइओ तिय-भंगो जेसिं अत्थि तेऊलेस्सा, पम्हलेस्साए सुक्कलेस्साए य जीवाइओ तियभंगो।

अलेस्सा जीवा मणुस्सा सिद्धा य एगत्तेण वि पुहुत्तेण वि नो आहारगा अणाहारगा।

—पण्ण० प २८। उ २। सू ११। पृ० ५०६-५१०

सलेशी कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी जीव (एकवचन) कदाचित् आहारक, कदाचित् अनाहारक होते हैं। इस प्रकार दंडक के सभी जीवों के विषय में जानना। जिसके जितनी लेश्या हो उतने पद कहने।

सलेशी जीव (बहुवचन)—औघिक तथा एकेन्द्रिय जीव में एक भंग होता है, यथा—आहारक भी होते हैं, अनाहारक भी होते हैं। क्योंकि ये दोनों प्रकार के जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सदा अनेकों होते हैं। इनके सिवाय अन्यों में तीन भंग होते हैं। यथा—(१) सर्व आहारक, (२) अनेक आहारक तथा एक अनाहारक, (३) अनेक आहारक, अनेक अनाहारक होते हैं। कृष्णलेशी, नीललेशी तथा कापोतलेशी जीव (बहुवचन) को भी सलेशी जीव (बहुवचन) की तरह जानना। तेजोलेशी पृथ्वीकायिक, अप्कायिक तथा वनस्पतिकायिक जीव (बहुवचन) में छः भंग होते हैं। यथा —(१) सर्व आहारक, (२) सर्व अनाहारक, (३) एक आहारक तथा एक अनाहारक, (४) एक आहारक तथा अनेक अनाहारक, (५) अनेक आहारक तथा एक अनाहारक, (६) अनेक आहारक तथा अनेक अनाहारक। अवशेष तेजोलेशी जीव (बहुवचन) के तीन भंग जानना। पद्मलेशी, शुक्ललेशी जीवों—औघिक जीव, तीर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, वैमानिक देवों में तीन भंग जानना।

अलेशी जीव, अलेशी मनुष्य, अलेशी सिद्ध (एकवचन तथा बहुवचन) आहारक नहीं हैं, अनाहारक होते हैं।

·८४ सलेशी जीव के भेद :—

·८४·१ दो भेद :—

सलेसे णं भंते ! सलेस्सेत्ति पुच्छा ? गोयमा ! सलेस्से दुविहे पन्नत्ते। तं-जहा—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

—पण्ण० प १८। द्वा ८। सू ६। पृ० ४५६

सलेशी जीव सलेशीत्व की अपेक्षा से दो प्रकार के होते हैं—(१) अनादि अपर्यवसित, तथा (२) अनादि सपर्यवसित।

·८४·२ छः भेद :—

कृष्णलेश्या की अपेक्षा सलेशी जीव के छः भेद भी होते हैं। यथा—कृष्णलेशी, नील-लेशी, कापोतलेशी, तेजोलेशी, पद्मलेशी तथा शुक्ललेशी।

·८५ सलेशी क्षुद्रयुग्म जीव :—

[युग्म शब्द से टीकाकार अभयदेव सूरि ने 'राशि' अर्थ लिया है—'युग्मशब्देन राशयो विवक्षिताः'। राशि की समता-विषमता की अपेक्षा युग्म चार प्रकार का होता है, यथा—कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म तथा कल्योज। जिस राशि में चार का भाग देने से शेष चार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बचे उस राशि को कृतयुग्म कहते हैं ; जिस राशि में चार का भाग देने से तीन बचे उसको त्र्योज कहते हैं ; जिस राशि में चार का भाग देने से दो बचे उसको द्वापरयुग्म कहते हैं तथा जिस राशि में चार का भाग देने से एक बचे उसको कल्योज कहते हैं।

अन्य अपेक्षा से भगवती सूत्र में तीन प्रकार के युग्मों का विवेचन है, यथा—क्षुद्रयुग्म, (श ३१, ३२), महायुग्म (श ३५ से ४०) तथा राशियुग्म (श ४१)। सामान्यतः छोटी संख्या वाली राशि को क्षुद्रयुग्म कहा जा सकता है। इसमें एक से लेकर असंख्यात तक की संख्या निहित है। महायुग्म बृहद् संख्या वाली राशि का द्योतक है तथा इसमें पाँच से लेकर अनंत तक की संख्या निहित है तथा इसमें गणना के समय और संख्या दोनों के आधार पर राशि का निर्धारण होता है। राशियुग्म इन दोनों को सम्मिलित करती हुई संख्या होनी चाहिए तथा इसमें एक से लेकर अनंत तक की संख्या निहित है।

क्षुद्रयुग्म में केवल नारकी जीवों का अट्ठारह पदों से विवेचन है। महायुग्म में इन्द्रियों के आधार पर सर्व जीवों (एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय) का तैंतीस पदों से विवेचन है। राशि-युग्म में जीव-दंडक के क्रम से जीवों का तेरह पदों से विवेचन है।]

इस प्रकरण में क्षुद्रयुग्मराशि नारकी जीवों का नौ उपपात के तथा नौ उद्वर्तन (मरण) के पदों से विवेचन किया गया है ; तथा विस्तृत विवेचन औधिक क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के पद में है। अवशेष तीन युग्मों में इसकी भुलावण है तथा जहाँ भिन्नता है वहाँ भिन्नता बतलाई गई है। इसमें भग० श २५। उ ८ की भी भुलावण है।

(१) कहाँ से उपपात, (२) एक समय में कितने का उपपात, (३) किस प्रकार से उपपात, (४) उपपात की गति की शीघ्रता, (५) परभव-आयु के बंध का कारण, (६) पर-भव-गति का कारण, (७) आत्मऋद्धि या परऋद्धि से उपपात, (८) आत्मकर्म या परकर्म से उपपात, (९) आत्मप्रयोग या परप्रयोग से उपपात।

इस प्रकार उद्वर्तन (मरण) के भी उपर्युक्त नौ अभिलाप समझने।

औघिक, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, समदृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सममिथ्यादृष्टि, कृष्ण-पाक्षिक, शुक्लपाक्षिक नारकी जीवों का चार क्षुद्रयुग्मों से तथा चार-चार उद्देशक से विवेचन किया गया है। हमने यहाँ पर लेश्या विशेषण सहित पाठों का संकलन किया है।

'८५'१ सलेशी क्षुद्रयुग्म नारकी का उपपात :—

कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति० ? एवं चेव जहा ओहियगमो जाव नो परप्पओगेणं उववज्जंति। नवरं उववाओ जहा वक्कंतीए। धूमप्पभापुढविनेरइया णं सेसं तं चेव (तहेव)। धूमप्पभापुढविकण्हलेस्सखुड्डागकड-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं चेव निरवसेसं, एवं तमाए वि, अहेसत्तमाए वि। नवरं उववाओ सव्वत्थ जहा वक्कंतीए। कण्हलेस्सखुड्डागतेओग-नेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति० ? एवं चेव, नवरं तिन्नि वा सत्त वा एक्कारस वा पन्नरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा, सेसं तं चेव। एवं जाव अहेसत्तमाए वि। कण्हलेस्सखुड्डागदावरजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति० ? एवं चेव। नवरं दो वा छ वा दस वा चोद्दस वा, सेसं तं चेव, (एवं) धूमप्पभाए वि जाव अहेसत्तमाए। कण्हलेस्सखुड्डागकलिओगनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति० ? एवं चेव। नवरं एक्को वा पंच वा नव वा तेरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा, सेसं तं चेव। एवं धूमप्पभाए वि, तमाए वि, अहेसत्तमाए वि।

नीललेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति० ? एवं जहेव कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मा। नवरं उववाओ जो वालुयप्पभाए, सेसं तं चेव। वालुयप्पभापुढविनीललेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया एवं चेव, एवं पंकप्पभाए वि, एवं धूमप्पभाए वि। एवं चउसु वि जुम्मेसु। नवरं परिमाणं जाणियव्वं। परिमाणं जहा कण्हलेस्सउद्देसए। सेसं तहेव।

काऊलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति० ? एवं जहेव कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया नवरं उववाओ जो रयणप्पभाए, सेसं तं चेव। रयणप्पभापुढविकाऊलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति० ? एवं चेव। एवं सक्करप्पभाए वि, एवं वालुयप्पभाए वि। एवं चउसु वि जुम्मेसु। नवरं परिमाणं जाणियव्वं, परिमाणं जहा कण्हलेस्सउद्देसए, सेसं तं चेव।

—भग० श ३१। उ २ से ४। पृ० ६११-१२

कृष्णलेशी क्षुद्रकृतयुग्म नारकी का उपपात प्रज्ञापना सूत्र के व्युत्क्रांतिपद से जानना। वे एक समय में चार अथवा आठ अथवा बारह अथवा सोलह अथवा संख्यात अथवा असंख्यात उत्पन्न होते हैं तथा वे किस प्रकार उत्पन्न होते हैं आदि अवशेष के सात पद **से जहानामए पवए × × × जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति** (भग० श २५। उ ८) **से** जानना। धूमप्रभा पृथ्वी, तमप्रभा पृथ्वी तथा तमतमाप्रभा पृथ्वी के कृष्णलेशी क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के सम्बन्ध में कहाँ से उत्पन्न, एक समय में कितने उत्पन्न तथा किस प्रकार उत्पन्न आदि नौ पदों के सम्बन्ध में ऐसा ही कहना परन्तु उपपात सर्वत्र प्रज्ञापना के व्युत्क्रांतिपद के अनुसार कहना।

कृष्णलेशी क्षुद्रत्र्योज नारकी के सम्बन्ध में नौ पदों में ऐसा ही कहना; परन्तु एक समय में तीन अथवा सात अथवा ग्यारह अथवा पन्द्रह अथवा संख्यात अथवा असंख्यात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्पन्न होते हैं। धूमप्रभा, तमप्रभा, तमतमाप्रभा पृथ्वी के कृष्णलेशी क्षुद्रत्र्योज नारकी के विषय में भी इसी प्रकार जानना।

कृष्णलेशी क्षुद्रद्वापरयुग्म नारकी के सम्बन्ध में नौ पदों में ऐसा ही कहना परन्तु एक समय में दो अथवा छः अथवा दस अथवा चौदह अथवा संख्यात अथवा असंख्यात उत्पन्न होते हैं। धूमप्रभा यावत् तमतमाप्रभा पृथ्वी के कृष्णलेशी क्षुद्रद्वापरयुग्म नारकी के विषय में ऐसा ही कहना।

कृष्णलेशी क्षुद्रकल्योज नारकी के सम्बन्ध में नौ पदों में ऐसा ही कहना परन्तु एक समय मेंए क अथवा पाँच अथवा नौ अथवा तेरह अथवा संख्यात अथवा असंख्यात उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार धूमप्रभा, तमप्रभा, तमतमाप्रभा पृथ्वी के कृष्णलेशी क्षुद्र-कल्योजयुग्म नारकी के सम्बन्ध में कहना।

नीललेशी क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के सम्बन्ध में जैसा कृष्णलेशी क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के उद्देशक में कहा वैसा ही कहना, लेकिन उपपात वालुकाप्रभा में जैसा हो वैसा कहना। वालुकाप्रभा पृथ्वी के नीललेशी क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहना। इसी प्रकार पंकप्रभा तथा धूमप्रभा पृथ्वी के नीललेशी क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के सम्बन्ध में जानना। परन्तु उपपात की भिन्नता जाननी। इसी प्रकार बाकी तीनों युग्मों में जानना। लेकिन परिमाण की भिन्नता कृष्णलेशी उद्देसक से जाननी।

कापोतलेशी क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के सम्बन्ध में जैसा कृष्णलेशी क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के उद्देशक में कहा वैसा ही कहना लेकिन उपपात रत्नप्रभा में जैसा हो वैसा ही कहना। रत्नप्रभा पृथ्वी के कापोतलेशी क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहना। इसी प्रकार शर्कराप्रभा तथा वालुकाप्रभा पृथ्वी के कापोतलेशी क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के सम्बन्ध में भी कहना परन्तु उपपात की भिन्नता जाननी। इसी प्रकार बाकी तीनों युग्मों में जानना लेकिन परिमाण की भिन्नता कृष्णलेशी उद्देशक से जाननी।

कण्हलेस्सभवसिद्धियखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? एवं जहेव ओहिओ कण्हलेस्सउद्देसओ तहेव निरवसेसं चउसु वि जुम्मेसु भाणियव्वो, जाव अहेसत्तमपुढविकण्हलेस्स(भवसिद्धिय)खुड्डागकलिओगनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? तहेव।

नीललेस्सभवसिद्धिया चउसु वि जुम्मेसु तहेव भाणियव्वा जहा ओहिए नील-लेस्सउद्देसए।

काऊलेस्सभवसिद्धिया चउसु वि जुम्मेसु तहेव उववाएयव्वा जहेव ओहिए काऊलेस्सउद्देसए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहा भवसिद्धिएहिं चत्तारि उद्देसगा भणिया एवं अभवसिद्धिएहिं वि चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा जाव काऊलेस्सा उद्देसओ त्ति।

एवं सम्मदिट्ठीहि वि लेस्सासंजुत्तेहिं चत्तारि उद्देसगा कायव्वा, नवरं सम्मदिट्ठी पढमबिइएसु वि दोसु वि उद्देसएसु अहेसत्तमापुढवीए न उववाएयव्वो, सेसं तं चेव।

मिच्छादिट्ठीहि वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा जहा भवसिद्धियाणं।

एवं कण्हपक्खिएहिं वि लेस्सासंजुत्तेहिं चत्तारि उद्देसगा कायव्वा जहेव भवसिद्धिएहिं।

सुक्कपक्खिएहिं एवं चेव चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा। जाव वालुयप्पभापुढविकाऊलेस्ससुक्कपक्खियखुड्डागकलिओगनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? तहेव जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति।

—भग० श ३१। उ ६ से २८, पृ० ६१२

कृष्णलेशी भवसिद्धिक क्षुद्रकृतयुग्म नारकी के सम्बन्ध में जैसा औघिक कृष्णलेशी उद्देशक में कहा वैसा ही निरवशेष चारों युग्मों में कहना। कृष्णलेशी भवसिद्धिक क्षुद्रकृतयुग्म धूमप्रभा नारकी यावत् कृष्णलेशी भवसिद्धिक कल्योज तमतमाप्रभा नारकी तक नौ पदों में कृष्णलेशी औघिक उद्देशक की तरह कहना।

नीललेशीभवसिद्धिक के चारों युग्म उद्देशक वैसे ही कहने जैसे औघिक नीललेशी युग्म उद्देशक कहे।

कापोतलेशी भवसिद्धिक के चारों युग्म उद्देशक वैसे ही कहने जैसे औघिक कापोतलेशी युग्म उद्देशक कहे।

जैसे भवसिद्धिक के चार उद्देशक कहे वैसे ही अभवसिद्धिक के चार उद्देशक (औघिक, कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी) जानने।

इसी प्रकार समदृष्टि के लेश्या संयोग से चार उद्देशक जानने। लेकिन समदृष्टि के प्रथम-द्वितीय उद्देशक में तमतमाप्रभा पृथ्वी में उपपात न कहना।

मिथ्यादृष्टि के भी लेश्या संयोग से चार उद्देशक भवसिद्धिक की तरह जानने।

इसी प्रकार कृष्णपाक्षिक के लेश्या संयोग से चार उद्देशक भवसिद्धिक की तरह कहने।

इसी प्रकार शुक्लपाक्षिक के भी चार उद्देशक कहने। यावत् बालुकाप्रभा पृथ्वी के कापोतलेशी शुक्लपाक्षिक क्षुद्रकल्योज नारकी कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते हैं—तक जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·८५·२ सलेशी क्षुद्रयुग्म नारकी का उद्वर्तन :—

खुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु उववज्जंति ? तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति० ? उव्वट्टणा जहा वक्कंतीए।

ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उव्वट्टंति ? गोयमा ! चत्तारि वा अट्ठ वा बारस वा सोलस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उव्वट्टंति।

ते णं भंते ! जीवा कहं उव्वट्टंति ? गोयमा ! से जहा नामए पवए—एवं तहेव। एवं सो चेव गमओ जाव आयप्पओगेणं उव्वट्टंति, नो परप्पओगेणं उव्वट्टंति।

रयणप्पभापुढविखुड्डागकड० ? एवं रयणप्पभाए वि, एवं जाव अहेसत्तमाए (वि)। एवं खुड्डागतेओगखुड्डागदावरजुम्मखुड्डागकलिओगा। नवरं परिमाणं जाणियव्वं, सेसं तं चेव।

कण्हलेस्सकडजुम्मनेरइया—एवं एएणं कमेणं जहेव उववायसए अट्ठावीसं उद्देसगा भाणिया तहेव उव्वट्टणासए वि अट्ठावीसं उद्देसगा भाणियव्वा निरवसेसा। नवरं 'उव्वट्टंति' त्ति अभिलावो भाणियव्वो, सेसं तं चेव।

—भग० श ३२। पृ० ६१२-१३

·८५·१ में जैसे उपपात के २८ उद्देशक कहे उसी प्रकार उद्वर्तन के २८ उद्देशक कहने लेकिन उपपात के स्थान पर उद्वर्तन कहना।

·८६ सलेशी महायुग्म जीव :—

[इस प्रकरण में महायुग्म राशि जीवों का विवेचन किया गया है। महायुग्म राशि के सोलह भेद होते हैं, यथा—(१) कृतयुग्म कृतयुग्म, (२) कृतयुग्म त्र्योज, (३) कृतयुग्म द्वापरयुग्म, (४) कृतयुग्म कल्योज, (५) त्र्योज कृतयुग्म, (६) त्र्योज त्र्योज, (७) त्र्योज द्वापरयुग्म, (८) त्र्योज कल्योज, (९) द्वापरयुग्म कृतयुग्म, (१०) द्वापरयुग्म त्र्योज, (११) द्वापरयुग्म द्वापरयुग्म, (१२) द्वापरयुग्म कल्योज, (१३) कल्योज कृतयुग्म, (१४) कल्योज त्र्योज, (१५) कल्योज द्वापरयुग्म तथा (१६) कल्योज कल्योज। महायुग्म के सोलह भेद राशि (संख्या) तथा अपहार समय की अपेक्षा से किये गये हैं। जिस राशि में से प्रतिसमय चार-चार घटाते-घटाते शेष में चार बाकी रहे तथा घटाने के समयों में से भी चार-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चार घटाते-घटाते चार बाकी रहे वह कृतयुग्म-कृतयुग्म कहलाता है क्योंकि घटानेवाले द्रव्य तथा समय की अपेक्षा दोनों रीति से कृतयुग्म रूप हैं। सोलह की संख्या जघन्य कृतयुग्म-कृतयुग्म राशि रूप है। उसमें से प्रति समय चार घटाते-घटाते शेष में चार बचते हैं तथा घटाने के समय भी चार होते हैं अथवा उन्नीस की संख्या में प्रति समय चार घटाते-घटाते शेष में तीन शेष रहते हैं तथा घटाने के समय चार लगते हैं। अतः १६ की संख्या जघन्य कृतयुग्म त्र्योज कहलाती है। इसी प्रकार अन्य भेद जान लेने चाहियें।]

यहाँ पर महायुग्म राशि एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय जीवों का निम्नलिखित ३३ पदों से विवेचन किया गया है तथा विस्तृत विवेचन कृययुग्म कृतयुग्म एकेन्द्रिय के पद में है, अवशेष महायुग्म पदों में इसकी भुलावण है तथा जहाँ भिन्नता है वहाँ भिन्नता बतलाई गई है। स्थान-स्थान पर उत्पल उद्देशक (भग० श ११। उ १) की भुलावण है।

(१) कहाँ से उपपात, (२) उपपात संख्या, (३) जीवों की संख्या, (४) अवगाहना, (५) बंधक-अबन्धक, (६) वेदक-अवेदक, (७) उदय-अनुदय, (८) उदीरक-अनुदीरक (९) लेश्या, (१०) दृष्टि, (११) ज्ञानी-अज्ञानी, (१२) योगी, (१३) उपयोगी, (१४) शरीर के वर्ण-गंध-रस-स्पर्शी, आत्मा की अपेक्षा अवर्णी आदि, (१५) श्वासोच्छ्वासक, (१६) आहारक-अनाहारक, (१७) विरत-अविरत, (१८) सक्रिय-अक्रिय, (१९) कर्म-संख्याबंधक, (२०) संज्ञोपयोगी, (२१) कषायी, (२२) वेदक (लिंग), (२३) वेदबन्धक, (२४) संज्ञी-असंज्ञी, (२५) इन्द्रिय-अनिन्द्रिय, (२६) अनुबन्धकाल, (२७) आहार, (२८) संवेध, (२९) स्थिति, (३०) समुद्घात, (३१) समवहत, (३२) उद्वर्तन, (३३) अनन्तखुत्तो।

सोलह महायुग्मों में प्रत्येक महायुग्म के जीवों के सम्बन्ध में ११ अपेक्षाओं से ११ उद्देशक कहे गये हैं। प्रत्येक उद्देशक में उपर्युक्त ३३ पदों का विवेचन है। ११ अपेक्षाएं इस प्रकार हैं—

(१) औघिक रूप से, (२) प्रथम समय के, (३) अप्रथम समय के, (४) चरम समय के, (५) अचरम समय के, (६) प्रथम-प्रथम समय के, (७) प्रथम-अप्रथम समय के, (८) प्रथम-चरम समय के, (९) प्रथम-अचरम समय के, (१०) चरम-चरम समय के तथा (११) चरम-अचरम समय के।

भवसिद्धिक तथा अभवसिद्धिक जीवों का उपर्यक्त सोलह महायुग्मों से तथा ग्यारह अपेक्षाओं से विवेचन किया गया है। हमने यहाँ पर लेश्या विशेषण सहित पाठों का ही संकलन किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'८६'१ सलेशी महायुग्म एकेन्द्रिय जीव :—

(कडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया) ते णं भंते ! जीवा किं कण्हलेस्सा० पुच्छा ? गोयमा ! कण्हलेस्सा वा, नीललेस्सा वा, काऊलेस्सा वा, तेऊलेस्सा वा । ××× एवं एएसु सोलससु महाजुम्मेसु एक्को गमओ ।

—भग० श ३५ । श १ । उ १ । प्र ६, १६ । पृ० ६२६-२७

कृतयुग्मकृतयुग्म एकेन्द्रिय जीवों में कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या—ये चार लेश्याएँ होती हैं। इसी प्रकार सोलह महायुग्मों में चार लेश्याएँ होती हैं।

एवं एए (णं कमेणं) एक्कारस उद्देसगा ।

—भग० श ३५ । श १ । उ ११ । प्र ६ । पृ० ६२६

इसी क्रम से निम्नलिखित ग्यारह उद्देशक कहने। ग्यारह उद्देशक इस प्रकार हैं—

(१) कृतयुग्मकृतयुग्म, (२) पढमसमयकृतयुग्मकृतयुग्म, (३) अपढमसमय०, (४) चरमसमय०, (५) अचरमसमय०, (६) प्रथम-प्रथमसमय०, (७) प्रथमअप्रथमसमय०, (८) प्रथमचरमसमय०, (६) प्रथमअचरमसमय०, (१०) चरमचरमसमय० तथा (११) चरमअचरमसमय० ।

इन ग्यारह उद्देशकों में प्रत्येक उद्देशक में सोलह महायुग्म कहने।

पढमो तइओ पंचमओ य सरिसगमा, सेसा अट्ठ सरिसगमगा । नवरं चउत्थे छट्ठे अट्ठमे दसमे य देवा न उववज्जंति, तेऊलेस्सा नत्थि ।

—भग० श ३५ । श१ । उ ११ । प्र ६ । पृ० ६२६

पहले, तीसरे, पाँचवें उद्देशक का एक सरीखा गमक होता है तथा बाकी आठ का एक सरीखा गमक होता है। चौथे, छट्ठे, आठवें तथा दशवें गमक में कृष्ण-नील-कापोतलेश्या होती है, तेजोलेश्या नहीं होती है। बाकी के उद्देशकों में कृष्ण-नील-कापोत-तेजो ये चारों लेश्याएँ होती हैं।

नोट :—यद्यपि उपरोक्त पाठ से छट्ठे उद्देशक में तेजोलेश्या नहीं ठहरती है लेकिन छट्ठे उद्देशक में जो भुलावण है उसके अनुसार इस उद्देशक में चारों लेश्याएँ होनी चाहियें। प्रवीण व्यक्ति इस पर विचार करें।

कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति० ? गोयमा ! उववाओ तहेव, एवं जहा ओहिउद्देसए। नवरं इमं नाणत्तं—ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा ? हंता कण्हलेस्सा ।

ते णं भंते ! 'कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिय' त्ति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं । एवं ठिईए वि । सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो । एवं सोलस वि जुम्मा भाणियव्वा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पढमसमयकण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति० ? जहा पढमसमयउद्देसओ। नवरं ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा ? हंता कण्हलेस्सा, सेसं तं चेव।

एवं जहा ओहियसए एक्कारस उद्देसगा भणिया तहा कण्हलेस्ससए वि एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा। पढमो तइओ पंचमो य सरिसगमा, सेसा अट्ठ वि सरिसगमा। नवरं चउत्थ-छट्ठ-अट्ठम-दसमेसु उववाओ नत्थि देवस्स।

एवं नीललेस्सेहि वि सयं कण्हलेस्ससयसरिसं, एक्कारस उद्देसगा तहेव।

एवं काऊलेस्सेहि वि सयं कण्हलेस्ससयसरिसं।

—भग० श ३५। श २ से ४। पृ० ६२६

कृष्णलेशी कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय का उपपात औघिक उद्देशक (भग० श ३५। श १। उ १) की तरह जानना। लेकिन भिन्नता यह है कि वे कृष्णलेशी हैं। वे कृष्णलेशी कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं। इसी प्रकार स्थिति के सम्बन्ध में जानना। बाकी सब यावत् पूर्व में अनंत बार उत्पन्न हुए हैं—वहाँ तक जानना। इसी प्रकार सोलह युग्म कहने।

प्रथमसमय के कृष्णलेशी कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय का उपपात प्रथम समय के उद्देशक (भग० श ३५। श १। उ २) की तरह जानना। लेकिन वे कृष्णलेशी हैं बाकी सब वैसे ही जानना। जिस प्रकार औघिक शतक में ग्यारह उद्देशक कहे वैसे ही कृष्णलेशी शतक में भी ग्यारह उद्देशक कहने। पहले, तीसरे, पाँचवें के गमक एक समान हैं। बाकी आठ के गमक एक समान हैं। लेकिन चौथे, छट्ठे, आठवें, दशवें उद्देशक में देवों का उपपात नहीं होता है।

नीललेशी एकेन्द्रिय महायुग्म शतक के कृष्णलेशी एकेन्द्रिय महायुग्म शतक के समान ग्यारह उद्देशक कहने।

कापोतलेशी एकेन्द्रिय महायुग्म शतक के कृष्णलेशी एकेन्द्रिय महायुग्म शतक के समान ग्यारह उद्देशक कहने।

कण्हलेस्सभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ(हिंतो) उववज्जंति० ? एवं कण्हलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि सयं बिइयसयकण्हलेस्ससरिसं भाणियव्वं।

एवं नीललेस्सभवसिद्धियएगिंदियएहि वि सयं।

एवं काऊलेस्सभवसिद्धियएगिंदियएहि वि तहेव एक्कारसउद्देसगसंजुत्तं सयं। एवं एयाणि चत्तारि भवसिद्धियसयाणि। चउसु वि सएसु सव्वे पाणा जाव उववन्नपुव्वा ? नो इणट्ठे समट्ठे।

२८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहा भवसिद्धिएहिं चत्तारि सयाइं भणियाइं एवं अभवसिद्धिएहि वि चत्तारि सयाणि लेस्सासंजुत्ताणि भाणियव्वाणि। सव्वे पाणा० तहेव नो इणट्ठे समट्ठे। एवं एयाइं बारस एगिंदियमहाजुम्मसयाइं भवंति।

—भग० श ३५। श ६ से १२। पृ० ६२६-३०

कृष्णलेशी भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय के सम्बन्ध में भी दूसरे उद्देशक में वर्णित कृष्णलेशी शतक की तरह कहना।

इसी प्रकार नीललेशी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के सम्बन्ध में भी शतक कहना। तथा कापोतलेशी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के सम्बन्ध में भी एकादश उद्देशक सहित—ऐसा ही शतक कहना। इसी प्रकार चार भवसिद्धिक शतक भी जानना। तथा चारों भवसिद्धिक शतकों में—सर्व प्राणी यावत् पूर्व में अनंत बार उत्पन्न हुए हैं—इस प्रश्न के उत्तर में 'यह सम्भव नहीं'—ऐसा कहना।

जैसे भवसिद्धिक के चार शतक कहे वैसे ही अभवसिद्धिक के भी चार शतक लेश्या-सहित कहने। इनमें भी सर्व प्राणी यावत् सर्व सत्त्व पूर्व में अनंत बार उत्पन्न हुए हैं—इस प्रश्न के उत्तर में 'यह सम्भव नहीं' ऐसा कहना।

'८६'२ सलेशी महायुग्म द्वीन्द्रिय जीव :—

कडजुम्मकडजुम्मबेंदिया णं भंते! (कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ?) × × × तिन्नि लेस्साओ। × × × एवं सोलससु वि जुम्मेसु।

—भग० श ३६। श १। उ १। प्र १-२। पृ० ६३०

कृतयुग्म-कृतयुग्म द्वीन्द्रिय में कृष्ण-नील-कापोत ये तीन लेश्याएँ होती हैं। इसी प्रकार सोलह महायुग्मों में कहना।

कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मबेइंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? एवं चेव। कण्हलेस्सेसु वि एक्कारसउद्देसगसंजुत्तं सयं। नवरं लेस्सा, संचिट्ठणा, ठिई जहा एगिंदियकण्हलेस्साणं।

एवं नीललेस्सेहि वि सयं।

एवं काऊलेस्सेहि वि।

भवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मबेइंदिया णं भंते०! एवं भवसिद्धियसया वि चत्तारि तेणेव पुव्वगमएणं नेयव्वा। नवरं सव्वे पाणा० ? नो इणट्ठे समट्ठे। सेसं तहेव ओहियसयाणि चत्तारि।

जहा भवसिद्धियसयाणि चत्तारि एवं अभवसिद्धियसयाणि चत्तारि भाणिय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्वाणि। नवरं सम्मत्त-नाणाणि नत्थि, सेसं तं चेव। एवं एयाणि बारस बेइंदियमहाजुम्मसयाणि भवंति।

—भग० श ३६। श २ से १२। पृ० ६३०-३१

कृष्णलेशी कृतयुग्म-कृतयुग्म द्वीन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में कृतयुग्म-कृतयुग्म औधिक द्वीन्द्रिय शतक की तरह ग्यारह उद्देशक सहित महायुग्म शतक कहना लेकिन लेश्या, कायस्थिति तथा आयु स्थिति एकेन्द्रिय कृष्णलेशी शतक की तरह कहने। इस प्रकार सोलह महायुग्म शतक कहने।

इसी प्रकार नीललेशी तथा कापोतलेशी शतक भी कहने।

भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म द्वीन्द्रिय के सम्बन्ध में भी पूर्व गमक की तरह अर्थात् भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय शतक की तरह चार शतक कहने लेकिन सर्व प्राणी यावत् सर्व सत्त्व पूर्व में उत्पन्न हुए हैं—इस प्रश्न के उत्तर में 'यह सम्भव नहीं' ऐसा कहना।

भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म द्वीन्द्रिय के जैसे चार शतक कहे वैसे ही अभवसिद्धिक के भी चार शतक कहने। लेकिन सम्यक्त्व और ज्ञान नहीं होते हैं।

·८६·३ सलेशी महायुग्म त्रीन्द्रिय जीव :—

कडजुम्मकडजुम्मतेइंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? एवं तेइंदिएसु वि बारस सया कायव्वा बेइंदियसयसरिसा। नवरं ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइं। ठिई जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं एगूणवन्नं राइंदियाइं, सेसं तहेव।

—भग० श ३७। पृ० ६३१

महायुग्म द्वीन्द्रिय शतक की तरह औधिक, कृष्णलेशी, नीललेशी तथा कापोतलेशी महायुग्म त्रीन्द्रिय जीवों के भी औधिक, भवसिद्धिक तथा अभवसिद्धिक पदों से बारह शतक कहने। लेकिन अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग की, उत्कृष्ट तीन गाउ (क्रोश) प्रमाण की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट उनचास रात्रिदिवस की कहनी।

·८६·४ सलेशी महायुग्म चतुरिन्द्रिय जीव :—

चउरिंदिएहि वि एवं चेव बारस सया कायव्वा। नवरं ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं। ठिई जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा। सेसं जहा बेइंदियाणं।

—भग० श ३८। पृ० ६३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महायुग्म द्वीन्द्रिय शतक की तरह महायुग्म चतुरिन्द्रिय के भी बारह शतक कहने लेकिन अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट चारगाउ (क्रोश) प्रमाण की ; स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट छः मास की कहनी। शेष पद सर्व द्वीन्द्रिय की तरह कहने।

·८६·५ सलेशी महायुग्म असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव :—

कडजुम्मकडजुम्मअसन्निपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जन्ति० ? जहा बेइंदियाणं तहेव असन्निसु वि बारस सया कायव्वा। नवरं ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं। संचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं। ठिई जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी, सेसं जहा बेइंदियाणं।

—भग० श ३६। पृ० ६३१

कृतयुग्म-कृतयुग्म द्वीन्द्रिय की तरह कृतयुग्म-कृतयुग्म असंज्ञी पंचेन्द्रिय के भी बारह शतक कहने। लेकिन अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट एक हजार योजन की ; कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट प्रत्येक पूर्व क्रोड की तथा आयुस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट पूर्व क्रोड की होती है। बाकी पद सर्व द्वीन्द्रिय शतक की तरह कहना।

·८६·६ सलेशी महायुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव :—

कडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचिंदिया णं भंते! ××× (कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ)? कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा। ××× एवं सोलससु वि जुम्मेसु भाणियव्वं।

पढमसमयकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचिंदिया णं भंते! ××× (कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ)? कण्हलेस्सा वा जाव सुक्कलेस्सा वा। ××× एवं सोलससु वि जम्मेसु।

एवं एत्थ वि एक्कारस उद्देसगा तहेव।

—भग० श ४०। श १। प्र २, ५, ६। पृ० ६३१,६३२

कृतयुग्म-कृतयुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में सोलह महायुग्मों में ही कृष्ण यावत् शुक्ल छः लेश्याएं होती हैं। प्रथमसमय कृतयुग्म-कृतयुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में सोलह महायुग्मों में ही कृष्ण यावत् शुक्ल छः लेश्याएं होती हैं। इसी प्रकार प्रथमसमय यावत् चरम-अचरम समय उद्देशक तक छः लेश्याएं होती हैं ऐसा कहना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? जहा पढमं सन्निसयं तहा नेयव्वं भवसिद्धियाभिलावेणं।

—भग० श ४०। श ८। पृ० ६३३

भवसिद्धिक महायुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में सोलह ही महायुग्मों में कृष्ण यावत् शुक्ल छः लेश्याएं होती हैं (देखो श ४०। श १)।

अभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचिंदिया णं भंते! ××× (कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ) ? कण्हलेस्सा वा सुक्कलेस्सा वा। ××× एवं सोलससु वि जुम्मेसु।

—भग० श ४०। श १५। पृ० ६३३-६३४

अभवसिद्धिक महायुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में सोलह ही महायुग्मों में कृष्ण यावत् शुक्ल छः लेश्याएं होती हैं।

कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? तहेव जहा पढमुद्देसओ सन्नीणं। नवरं बन्धो-वेओ-उदई-उदीरणा-लेस्सा-बन्धन-सन्ना कसाय-वेदबंधगा य एयाणि जहा बेइंदियाणं। कण्हलेस्साणं वेदो तिविहो, अवेदगा नत्थि। संचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं। एवं ठिईए वि। नवरं ठिईए अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं न भन्नंति। सेसं जहा एएसिं चेव पढमे उद्देसए जाव अणंतखुत्तो। एवं सोलससु वि जुम्मेसु।

पढमसमयकण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? जहा सन्निपंचिंदियपढमसमयउद्देसए तहेव निरवसेसं। नवरं ते णं भंते! जीवा कण्हलेस्सा ? हंता कण्हलेस्सा। सेसं तं चेव। एवं सोलससु वि जुम्मेसु ××× एवं एए वि एक्कारस (वि) उद्देसगा कण्हलेस्ससए। पढम-तइय-पंचमा सरिसगमा, सेसा अट्ठ वि एक्क(सरिस)गमा।

एवं नीललेस्सेसु वि सयं। नवरं संचिट्ठणा जहन्ने णं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं। एवं ठिईए वि। एवं तिसु उद्देसएसु।

एवं काऊलेस्ससयं वि। नवरं संचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिन्नि सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं। एवं ठिईए वि। एवं तिसु वि उद्देसएसु, सेसं तं चेव।

एवं तेऊलेस्सेसु वि सयं। नवरं संचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं। एवं ठिईए वि। नवरं नोसन्नोवउत्ता वा। एवं तिसु वि उद्देसएसु, सेसं तं चेव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहा तेऊलेसा सयं तहा पम्हलेस्सा सयं वि। नवरं संचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं। एवं ठिईए वि। नवरं अंतोमुहुत्तं न भन्नइ, सेसं तं चेव। एवं एएसु पंचसु सएसु जहा कण्हलेस्सा सए गमओ तहा नेयव्वो, जाव अणंतखुत्तो।

सुक्कलेस्ससयं जहा ओहियसयं। नवरं संचिट्ठणा ठिई य जहा कण्हलेस्ससए, सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो।

—भग० श ४०। श २ से ७। पृ० ९३२-३३

कृष्णलेशी कृतयुग्म-कृतयुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं इत्यादि प्रश्न ? जैसा कृतयुग्म-कृतयुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय उद्देशक में कहा वैसा ही यहाँ जानना। लेकिन बंध, वेद, उदय, उदीरणा, लेश्या, बंधक, संज्ञा, कषाय तथा वेदबंधक—इन सबके सम्बन्ध में जैसा कृतयुग्म-कृतयुग्म द्वीन्द्रिय के पद में कहा वैसा ही कहना। कृष्णलेशी जीव तीनों वेद वाले होते हैं, अवेदी नहीं होते हैं। कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट साधिक अन्तर्मुहूर्त तैंतीस सागरोपम की होती है। इसी प्रकार स्थिति के सम्बन्ध में जानना लेकिन स्थिति अन्तर्मुहूर्त अधिक न कहना। बाकी सब प्रथम उद्देशक में जैसा कहा वैसा ही यावत् 'अणंतखुत्तो' तक कहना। इसी प्रकार सोलह युग्मों में कहना।

प्रथम समय कृष्णलेशी कृतयुग्म-कृतयुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय के सम्बन्ध में जैसा प्रथम समय के संज्ञी पंचेन्द्रिय के उद्देशक में कहा वैसा ही कहना लेकिन वे जीव कृष्णलेशी होते हैं। इसी प्रकार सोलह युग्मों में कहना। इस प्रकार कृष्णलेश्या शतक में भी ग्यारह उद्देशक कहना। पहला, तीसरा, पाँचवाँ—ये तीनउद्देशक एक समान गमक वाले हैं, शेष आठ उद्देशक एक समान गमक वाले हैं।

इसी प्रकार नीललेश्या वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में महायुग्म शतक कहना लेकिन कायस्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम की होती है। इसी प्रकार स्थिति के सम्बन्ध में जानना। पहला, तीसरा, पाँचवाँ —ये तीन उद्देशक एक समान गमक वाले हैं, शेष आठ उद्देशक एक समान गमक वाले हैं।

इसी प्रकार कापोतलेश्या वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में महायुग्म शतक कहना लेकिन कायस्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की होती है। इसी प्रकार स्थिति के सम्बन्ध में जानना। पहला, तीसरा, पाँचवाँ—ये तीन उद्देशक एक समान गमक वाले हैं शेष आठ उद्देशक एक समान गमक वाले हैं।

इसी प्रकार तेजोलेश्या वाले जीवों के सम्बन्ध में महायुग्म शतक कहना। कायस्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है। इसी प्रकार स्थिति के सम्बन्ध में जानना। लेकिन नोसंज्ञाउपयोग वाले भी होते हैं। पहला, तीसरा, पाँचवां—ये तीन उद्देशक एक समान गमक वाले हैं शेष आठ उद्देशक एक समान गमक वाले हैं।

जैसा तेजोलेश्या का शतक कहा वैसा ही पद्मलेश्या का महायुग्म शतक कहना। लेकिन कायस्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक अन्तर्मुहूर्त दस सागरोपम की होती है। इसी प्रकार स्थिति के सम्बन्ध में जानना लेकिन स्थिति अन्तर्मुहूर्त अधिक न कहना। इस प्रकार पाँच (कृष्ण यावत् पद्मलेश्या) शतकों में जैसा कृष्णलेश्या शतक में पाठ कहा वैसा ही पाठ यावत् 'अणंतखुत्तो' तक कहना।

जैसा औघिक शतक में कहा वैसा ही शुक्ललेश्या के सम्बन्ध में महायुग्म शतक कहना लेकिन कायस्थिति और स्थिति के सम्बन्ध में जैसा कृष्णलेश्या शतक में कहा वैसा यावत् 'अणंतखुत्तो' तक कहना। शेष सब औघिक शतक की तरह कहना।

कण्हलेस्सभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति? एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओहिय कण्हलेस्ससयं।

एवं नीललेस्सभवसिद्धिए वि सयं।

एवं जहा ओहियाणि सन्निपंचिंदियाणं सत्त सयाणि भणियाणि, एवं भवसिद्धिएहि वि सत्त सयाणि कायव्वाणि। नवरं सत्तसु वि सएसु सव्वपाणा जाव नो इणट्ठे समट्ठे।

—भग० श ४०। श ६ से १४। पृ० ६३३

कृष्णलेशी भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय के सम्बन्ध में—इसी प्रकार के अभिलापों से जिस प्रकार औघिक कृष्णलेश्या महायुग्म शतक में कहा वैसा—कहना।

इसी प्रकार नीललेशी भवसिद्धिक महायुग्म शतक भी कहना।

इस प्रकार जैसे संज्ञी पंचेन्द्रियों के सात औघिक शतक कहे वैसे ही भवसिद्धिक के सात शतक कहने लेकिन सातों शतकों में ही सर्वप्राणी यावत् सर्वसत्त्व पूर्व में अनंत बार उत्पन्न हुए है—इस प्रश्न के उत्तर में हैं 'यह सम्भव नहीं हैं' ऐसा कहना।

कण्हलेस्सअभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति०? जहा एएसिं चेव ओहियसयं तहा कण्हलेस्ससयं वि। नवरं तेणं भंते! जीवा कण्हलेस्सा? हंता कण्हलेस्सा। ठिई, संचिट्ठणा य जहा कण्हलेस्सासए सेसं तं चेव।

एवं छहि वि लेस्साहिं छ सया कायव्वा जहा कण्हलेस्ससयं। नवरं संचिट्ठणा ठिई य जहेव ओहियसए तहेव भाणियव्वा। नवरं सुक्कलेस्साए उक्कोसेणं एक्कतीसं साग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोवमाइं अन्तोमुहुत्तमब्भहियाइं। ठिई एवं चेव। नवरं अन्तोमुहुत्तं नत्थि जहन्नगं[1], तहेव सव्वत्थ सम्मत्त-नाणाणि नत्थि। विरई विरयाविरई अणुत्तरविमाणोववत्ति— एयाणि नत्थि। सव्वपाणा० (जाव) नो इणट्ठे समट्ठे। ××× एवं एयाणि सत्त अभवसिद्धियमहाजुम्मसयाणि भवन्ति।

—भग० श ४०। श १६ से २१। पृ० ६३४

कृष्णलेशी अभवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म संज्ञी पंचेन्द्रिय के सम्बन्ध में जैसा इनके औघिक (अभवसिद्धिक) शतकों में कहा वैसा कृष्णलेश्या अभवसिद्धिक शतक में भी कहना लेकिन ये जीव कृष्णलेश्या वाले होते हैं। इनकी कायस्थिति तथा स्थिति के सम्बंध में जैसा औघिक कृष्णलेश्या शतक में कहा वैसा ही कहना।

कृष्णलेश्या शतक की तरह छः लेश्याओं के छः शतक कहने लेकिन कायस्थिति और स्थिति औघिक शतक की तरह कहनी। लेकिन शुक्ललेश्या में उत्कृष्ट कायस्थिति साधिक अन्तर्मुहूर्त इकतीस सागरोपम की कहनी। इसी प्रकार स्थिति के सम्बन्ध में जानना लेकिन जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक न कहना। सर्व स्थानों में सम्यक्त्व तथा ज्ञान नहीं है। विरति, विरताविरति भी नहीं है तथा अनुत्तर विमान से आकर उत्पत्ति भी नहीं है। सर्व-प्राणी यावत् सर्वसत्त्व पूर्व में अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं—इस प्रश्न के उत्तर में 'यह सम्भव नहीं है' ऐसा कहना। इस प्रकार अभवसिद्धिक के सात महायुग्म शतक होते हैं।

महायुग्म सञ्ज्ञी पंचेन्द्रिय के इक्कीस शतक होते हैं। तथा सर्व महायुग्म शतक इक्कासी होते हैं।

·८७ सलेशी राशियुग्म जीव :—

[राशियुग्म संख्या चार प्रकार की होती है यथा—(१) कृतयुग्म, (२) त्र्योज, (३) द्वापरयुग्म तथा (४) कल्योज। जिस संख्या में चार का भाग देने चार वचे वह कृतयुग्म संख्या कहलाती है, यदि तीन वचे तो वह त्र्योज संख्या कहलाती है, यदि दो वचे तो वह द्वापरयुग्म संख्या कहलाती है, यदि एक वचे तो वह कल्योज संख्या कहलाती है। क्षुद्रयुग्म तथा राशियुग्म की आगमीय परिभाषा समान हैं लेकिन विवेचन अलग-अलग है। अतः अन्तर अवश्य होना चाहिए। क्षुद्रयुग्म में केवल नारकी जीवों का विवेचन है। राशियुग्म में दण्डक के सभी जीवों का विवेचन है।

यहाँ पर राशियुग्म जीवों का निम्नलिखित १३ वोलों से विवेचन किया गया है। विस्तृत विवेचन राशियुग्म कृतयुग्म नारकी में किया गया है। वाकी में इसकी भुलावण है तथा यदि कहीं भिन्नता है तो उसका निर्देशन है।

१—यहाँ 'जहन्नगं' शब्द का भाव समझ में नहीं आया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१—कहाँ से उपपात, २—एक समय में कितने का उपपात, ३—सान्तर या निरन्त उपपात, ४—एक ही समय में भिन्न-भिन्न युग्मों की अवस्थिति, ५—किस प्रकार से उपपात, ६—उपपात की गति की शीघ्रता, ७—परभव-आयुष के बंध का कारण, ८—परभव-गति का कारण, ९—आत्म या परऋद्धि से उपपात १०—आत्मकर्म या परकर्म से उपपात ११—आत्म-प्रयोग या पर-प्रयोग से उपपात, १२—आत्मयश या आत्म-अयश से उपपात, १३—आत्मयश या आत्म-अयश से उपजीवन, आत्मयश या आत्म-अयश से उपजीवित जीव सलेशी या अलेशी, यदि सलेशी या अलेशी है तो सक्रिय या अक्रिय, यदि सक्रिय या अक्रिय है तो उसी भव में सिद्ध होता है या नहीं।

हमने यहाँ सिर्फ लेश्या सम्बन्धी पाठों का संकलन किया है।]

(रासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते!) जइ आयअजसं उवजीवंति किं सलेस्सा अलेस्सा? गोयमा! सलेस्सा, नो अलेस्सा। जइ सलेस्सा किं सकिरिया अकिरिया? गोयमा! सकिरिया, नो अकिरिया। जइ सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति, जाव अंतं करेंति? नो इणट्ठे समट्ठे (प्र ११, १२, १३)।

रासीजुम्मकडजुम्मअसुरकुमारा णं भंते! कओ उववज्जंति०? जहेव नेरइया तहेव निरवसेसं। एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिया। नवरं वणस्सइकाइया जाव असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति, सेसं एवं चेव (प्र १४)।

(मणुस्सा) जइ आयजसं उवजीवंति किं सलेस्सा अलेस्सा? गोयमा! सलेसा वि अलेस्सा वि। जइ अलेस्सा किं सकिरिया, अकिरिया? गोयमा! नो सकिरिया, अकिरिया। जइ अकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति, जाव अंतं करेंति? हंता सिज्झंति, जाव अंतं करेंति। जइ सलेस्सा किं सकिरिया, अकिरिया? गोयमा! सकिरिया, नो अकिरिया। जइ सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झन्ति, जाव अंतं करेंति? गोयमा! अत्थेगइया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करेन्ति, अत्थेगइया नो तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति, जाव अंतं करेन्ति। जइ आयअजसं उवजीवन्ति किं सलेस्सा अलेस्सा? गोयमा! सलेस्सा, नो अलेस्सा जइ सलेस्सा किं सकिरिया, अकिरिया? गोयमा! सकिरिया, नो अकिरिया। जइ सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति, जाव अंतं करेन्ति? नो इणट्ठे समट्ठे। (प्र १६ से २३)

वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा नेरइया।

—भग० श ४१। उ १। प्र ११ से २३। पृ० ९३५-३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राशियुग्म में जो कृतयुग्म राशि रूप नारकी आत्म-असंयम का आश्रय लेकर जीते हैं वे सलेशी हैं, अलेशी नहीं हैं तथा वे सलेशी नारकी क्रियावाले हैं, क्रिया रहित नहीं हैं। वे सक्रिय नारकी उसी भव में सिद्ध नहीं होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त नहीं करते हैं।

कृतयुग्म राशि असुरकुमारों के विषय में जैसा नारकी के विषय में कहा वैसा ही निरवशेष कहना। इसी प्रकार यावत् तिर्यंच पंचेन्द्रिय तक समझना परन्तु वनस्पति-कायिक जीव असंख्यात अथवा अनन्त उत्पन्न होते हैं।

जो कृतयुग्म राशि रूप मनुष्य आत्मसंयम का आश्रय लेकर जीते हैं वे सलेशी भी हैं, अलेशी भी हैं। यदि वे अलेशी हैं तो वे क्रियावाले नहीं हैं, क्रियारहित हैं। तथा वे अक्रिय मनुष्य उसी भव में सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं। यदि वे सलेशी हैं तो वे क्रिया वाले हैं, क्रियारहित नहीं है तथा उन सक्रिय जीवों में कितने ही उसी भव में सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं तथा कितने ही उसी भव में सिद्ध नहीं होते हैं यावत् सर्व-दुःखों का अन्त नहीं करते हैं। जो कृतयुग्म राशि रूप मनुष्य आत्म असंयम का आश्रय लेकर जीते हैं वे सलेशी हैं, अलेशी नहीं है तथा वे सलेशी मनुष्य क्रियावाले हैं, क्रियारहित नहीं है तथा वे सक्रिय मनुष्य उसी भव में सिद्ध नहीं होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त नहीं करते हैं।

वानव्यन्तर-ज्योतिषी-वैमानिक देवों के सम्बन्ध में जैसा नारकी के विषय में कहा वैसा ही समझना।

रासीजुम्मतेओयनेरइया × × × एवं चेव उद्देसओ भाणियव्वो। × × × सेसं तं चेव जाव वेमाणिया। (उ २)

रासीजुम्मदावरजुम्मनेरइया × × × एवं चेव उद्देसओ × × × सेसं जहा पढमुद्देसए जाव वेमाणिया। (उ ३)

रासीजुम्मकलिओगनेरइया × × × एवं चेव × × × सेसं जहा पढमुद्देसए एवं जाव वेमाणिया। (उ ४)

—भग० श ४१। उ २ से ४। पृ० ६३६

राशि युग्म में त्र्योज राशि रूप नारकी यावत् वैमानिक देवों के सम्बन्ध में जैसा राशियुग्म कृतयुग्म प्रथम उद्देशक में कहा वैसा ही समझना।

राशियुग्म में द्वापरयुग्म रूप नारकी यावत् वैमानिक देवों के सम्बन्ध में जैसा प्रथम उद्देशक में कहा वैसा ही जानना।

राशियुग्म में कल्योज राशि रूप नारकी यावत् वैमानिक देवों के सम्बन्ध में जैसा प्रथम उद्देशक में कहा वैसा ही जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कण्हलेस्सरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति० ? उववाओ जहा धूमप्पभाए, सेसं जहा पढमुद्देसए। असुरकुमाराणं तहेव, एवं जाव वाणमंतराणं। मणुस्साण वि जहेव नेरइयाणं 'आयअजसं उवजीवंति'। अलेस्सा, अकिरिया, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति एवं न भाणियव्वं। सेसं जहा पढमुद्देसए।

कण्हलेस्सतेओगेहि वि एवं चेव उद्देसओ।

कण्हलेस्सदावरजुम्मेहिं एवं चेव उद्देसओ।

कण्हलेस्सकलिओगेहि वि एवं चेव उद्देसओ। परिमाणं संवेहो य जहा ओहिएसु उद्देसएसु।

जहा कण्हलेस्सेहिं एवं नीललेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा निरवसेसा। नवरं नेरइयाणं उववाओ जहा वालुयप्पभाए, सेसं तं चेव।

काऊलेस्सेहि वि एवं चेव चत्तारि उद्देसगा कायव्वा। नवरं नेरइयाणं उववाओ जहा रयणप्पभाए, सेसं तं चेव।

तेऊलेस्सरासीजुम्मकडजुम्मअसुरकुमारा णं भंते ! कओ उववज्जंति० ? एवं चेव। नवरं जेसु तेऊलेस्सा अत्थि तेसु भाणियव्वं। एवं एए वि कण्हलेस्सासरिसा चत्तारि उद्देसगा कायव्वा।

एवं पम्हलेस्साए वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा। पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं वेमाणियाण य एएसिं पम्हलेस्सा, सेसाणं नत्थि।

जहा पम्हलेस्साए एवं सुक्कलेस्साए वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा। नवरं मणुस्साणं गमओ जहा ओहि(य)उद्देसएसु, सेसं तं चेव। एवं एए छसु लेस्सासु चउवीसं उद्देसगा, ओहिया चत्तारि।

—भग० श ४१। उ ५ से २८। पृ० ६३६-३७

कृष्णलेशी राशियुग्म कृतयुग्म नारकी का उपपात जैसा धूमप्रभा नारकी का कहा वैसा ही समझना। अवशेष प्रथम उद्देशक की तरह समझना। असुरकुमार यावत् वानव्यंतर देव तक ऐसा ही समझना। मनुष्यों के सम्बन्ध में नारकियों की तरह जानना। वे यावत् आत्म-असंयम का आश्रय लेकर जीते हैं तथा उनके विषय में अलेशी, अक्रिय तथा उसी भव में सिद्ध होते हैं—ऐसा न कहना। अवशेष जैसा प्रथम उद्देशक में कहा वैसा ही कहना। कृष्णलेशी राशियुग्म त्र्योज, कृष्णलेशी राशियुग्म द्वापरयुग्म, कृष्णलेशी राशियुग्म कल्योज इन तीनों नारकी युग्मों के सम्बन्ध में कृष्णलेशी राशियुग्म कृतयुग्म के उद्देशक में जैसा कहा वैसा ही अलग-अलग उद्देशक कहना। लेकिन परिमाण तथा संवेध की भिन्नता जाननी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीललेशी राशियुग्म जीवों के भी कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म, कल्योज चार उद्देशक कृष्णलेशी राशीयुग्म उद्देशक की तरह कहने लेकिन नारकी का उपपात बालुकाप्रभा की तरह कहना।

कापोतलेशी राशियुग्म जीवों के भी कृष्णलेशी राशियुग्म की तरह कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म, कल्योज चार उद्देशक कहने। लेकिन नारकी का उपपात रत्नप्रभा की तरह कहना।

तेजोलेशी राशियुग्म जीवों के सम्बन्ध में कृष्णलेशी राशियुग्म की तरह चार उद्देशक कहने। लेकिन जिनके तेजोलेश्या होती है उनके ही सम्बन्ध में ऐसा कहना।

पद्मलेशी राशियुग्म जीवों के सम्बन्ध में कृष्णलेशी राशियुग्म की तरह ही चार उद्देशक कहने। तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य तथा वैमानिक देवों के ही पद्मलेश्या होती है, अवशेष के नहीं होती है।

जैसे पद्मलेश्या के विषय में चार उद्देशक कहे वैसे ही शुक्ललेश्या के भी चार उद्देशक कहने। लेकिन मनुष्य के सम्बन्ध में जैसा औधिक उद्देशक में कहा वैसा ही समझना तथा अवशेष वैसा ही जानना।

कण्हलेस्सभवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? जहा कण्हलेस्साए चत्तारि उद्देसगा भवंति तहा इमे वि भवसिद्धियकण्हलेस्सेहिं (वि) चत्तारि उद्देसगा कायव्वा।

एवं नीललेस्सभवसिद्धिएहि वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा। एवं काऊलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा। तेऊलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ओहियसरिसा। पम्हलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा। सुक्कलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ओहियसरिसा।

—भग० श ४१। उ ३३ से ५६। पृ० ६३७

कृष्णलेशी भवसिद्धिक राशियुग्म कृतयुग्म नारकियों के विषय में जैसे कृष्णलेशी राशियुग्म के चार उद्देशक कहे वैसे ही चार उद्देशक कहने। इसी प्रकार नीललेशी भवसिद्धिक राशियुग्म तथा कापोतलेशी भवसिद्धिक राशियुग्म के चार-चार उद्देशक कहने।

तेजोलेशी भवसिद्धिक राशियुग्म जीवों के भी औधिक तेजोलेशी राशियुग्म जीवों की तरह चार उद्देशक कहने। पद्मलेशी भवसिद्धिक राशियुग्म जीवों के भी औधिक पद्मलेशी राशियुग्म जीवों की तरह चार उद्देशक कहने। शुक्ललेशी भवसिद्धिक राशियुग्म जीवों के भी औधिक शुक्ललेशी राशियुग्म जीवों की तरह चार उद्देशक कहने। जिसके जितनी लेश्या हो उतने विवेचन करने।

अभवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? जहा पढमो उद्देसगो। नवरं मणुस्सा नेरइया य सरिसा भाणियव्वा। सेसं तहेव × × × एवं चउसु वि जुम्मेसु चत्तारि उद्देसगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कण्हलेस्सअभवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति? एवं चेव चत्तारि उद्देसगा। एवं नीललेस्सअभवसिद्धिय (रासीजुम्मकडजुम्मनेरइयाणं) चत्तारि उद्देसगा। एवं काऊलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा। तेऊलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा। पम्हलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा। सुक्कलेस्सअभवसिद्धिए वि चत्तारि उद्देसगा। एवं एएसु अट्ठावीसाए वि अभवसिद्धियउद्देसएसु मणुस्सा नेरइयगमेणं नेयव्वा।

—भग० श ४१। उ ५७ से ८४। पृ० ६३७

अभवसिद्धिक राशियुग्म जीवों के सम्बन्ध में जैसा प्रथम उद्देशक में कहा वैसा ही कहना लेकिन मनुष्य और नारकी का एक-सा वर्णन करना। चारों युग्मों के चार उद्देशक कहने।

इसी तरह कृष्णलेशी अभवसिद्धिक राशियुग्म जीवों के सम्बन्ध में चार उद्देशक कहने। इसी तरह नीललेशी अभवसिद्धिक राशियुग्म यावत् शुक्ललेशी अभवसिद्धिक राशियुग्म जीवों के सम्बन्ध में प्रत्येक के चार-चार उद्देशक कहने। लेकिन मनुष्यों के सम्बन्ध में सर्वत्र नारकी की तरह कहना। जिसके जितनी लेश्या हो उतने विवेचन करने।

सम्मदिट्ठीरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? एवं जहा पढमो उद्देसओ। एवं चउसु वि जुम्मेसु चत्तारि उद्देसगा भवसिद्धियसरिसा कायव्वा। कण्हलेस्ससम्मदिट्ठीरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? एए वि कण्हलेस्ससरिसा चत्तारि वि उद्देसगा कायव्वा। एवं सम्मदिट्ठीसु वि भवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा कायव्वा।

मिच्छादिट्ठीरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? एवं एत्थ वि मिच्छादिट्ठिअभिलावेणं अभवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा कायव्वा।

—भग० श० ४१। उ ८५ से १४०। पृ० ६३७-३८

कृष्णलेशी सम्यग्दृष्टि राशियुग्म जीवों के सम्बन्ध में कृष्णलेशी राशियुग्म जीवों की तरह चार उद्देशक कहने। समदृष्टि राशियुग्म जीवों के भी भवसिद्धिक राशियुग्म जीवों की तरह अट्ठाईस उद्देशक कहने।

मिथ्यादृष्टि राशियुग्म जीवों के सम्बन्ध में अभवसिद्धिक राशियुग्म जीवों की तरह अट्ठाईस उद्देशक कहने।

कण्हपक्खियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? एवं एत्थ वि अभवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा कायव्वा।

सुक्कपक्खियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति० ? एवं एत्थ वि भवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा भवंति। एवं एए सव्वे वि छन्नउयं उद्देसग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सयं भवंति रासीजुम्मसयं। जाव सुक्कलेस्सा सुक्कपक्खियरासीजुम्मकलिओग-वेमाणिया जाव अंतं करेंति ? नो इणट्ठे समट्ठे ।

भग० श ४१ । उ १४१ से १९६ । पृ० ९३८

कृष्णपाक्षिक राशियुग्म जीवों के सम्बन्ध में भी अभवसिद्धिक राशियुग्म जीवों की तरह अट्ठाईस उद्देशक कहने ।

यावत् शुक्लपाक्षिक राशियुग्म जीवों के सम्बन्ध में भी भवसिद्धिक राशियुग्म जीवों की तरह अट्ठाईस उद्देशक कहने ।

·८८ सलेशी जीव का आठ पदों से विवेचन :—

[यहाँ पर सलेशी जीव का निम्नलिखित आठ पदों की अपेक्षा से विवेचन हुआ है — यथा—(१) भेद, (२) उपभेद, (३) श्रेणी तथा क्षेत्र की अपेक्षा से विग्रह गति, (४) स्थान (उपपातस्थान, समुद्घातस्थान, स्वस्थान), (५) कर्म प्रकृति की सत्ता, बंधन, वेदन, (६) कहाँ से उपपात, (७) समुद्घात, (८) तुल्य अथवा भिन्न स्थिति की अपेक्षा तुल्य विशेषाधिक अथवा भिन्न विशेषाधिक कर्म का बंधन। लेकिन भगवती सूत्र के ३४ वें शतक में केवल एकेन्द्रिय जीव का विवेचन है, अन्य जीवों का इन आठ पदों की अपेक्षा से विवेचन नहीं मिलता है।]

·८८·१ सलेशी एकेन्द्रिय जीव का आठ पदों से विवेचन :—

कइविहा णं भंते ! कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता ? गोयमा ! पंचविहा कण्ह-लेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता, भेदो चउक्कओ जहा कण्हलेस्सएगिंदियसए, जाव वणस्सइकाइय त्ति ।

कण्हलेस्सअपज्जत्तसुहुमपुढविक्काइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरच्छिमिल्ले० ? एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिउद्देसओ जाव 'लोगचरिमंते' त्ति । सव्वत्थ कण्हलेस्सेसु चेव उववाएयव्वो ।

कहिं णं भंते ! कण्हलेस्सअपज्जत्तबायरपुढविक्काइयाणं ठाणा पन्नत्ता ? (गोयमा !) एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओहिउद्देसओ जाव तुल्लट्ठिइय त्ति ।

एवं एएणं अभिलावेणं जहेव पढमं सेढिसयं तहेव एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा ।

एवं नीललेस्सेहि वि तइयं सयं ।

काऊलेस्सेहि वि सयं । एवं चेव चउत्थं सयं ।

भग० श ३४ । श २ से ४ । पृ० ९२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्णलेशी एकेन्द्रिय पाँच प्रकार के अर्थात् कृष्णलेशी पृथ्वीकायिक यावत् कृष्णलेशी वनस्पतिकायिक होते हैं। इनमें प्रत्येक के पर्याप्तसूक्ष्म, अपर्याप्तसूक्ष्म, पर्याप्तबादर, अपर्याप्त-बादर चार भेद होते हैं। (देखो भग० श ३३। श २)।

कृष्णलेशी अपर्याप्तसूक्ष्म पृथ्वीकायिक की श्रेणी तथा क्षेत्र की अपेक्षा विग्रहगति के पद आदि औघिक उद्देशक में जैसा कहा वैसा रत्नप्रभा नारकी के पूर्वलोकांत से यावत् लोक के चरमांत तक समझना। सर्वत्र कृष्णलेश्या में उपपात कहना।

कृष्णलेशी अपर्याप्तबादर पृथ्वीकायिकों के स्थान कहाँ कहे हैं? इस अभिलाप से औघिक उद्देशक में जैसा कहा वैसा स्थान पद से यावत् तुल्यस्थिति तक समझना।

इस अभिलाप से जैसा प्रथम श्रेणी शतक में कहा वैसा ही द्वितीय श्रेणी शतक के ग्यारह उद्देशक (औघिक यावत् अचरम उद्देशक) कहना।

इसी प्रकार नीललेश्या वाले एकेन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में तीसरा श्रेणी शतक कहना।

इसी प्रकार कापोतलेश्या वाले एकेन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में चौथा श्रेणी शतक कहना।

कइविहा णं भंते! कण्हलेस्सभवसिद्धियएगिंदिया पन्नत्ता? एवं जहेव ओहियउद्देसओ।

कइविहा णं भंते! अणंतरोववन्ना कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पन्नत्ता? जहेव अणंतरोववन्नउद्देसओ ओहिओ तहेव।

कइविहा णं भंते! परंपरोववन्ना कण्हलेस्सभवसिद्धियएगिंदिया पन्नत्ता? गोयमा! पंचविहा परंपरोववन्ना कण्हलेस्सभवसिद्धियएगिंदिया पन्नत्ता, ओहिओ भेदो चउक्कओ जाव वणस्सइकाइय त्ति।

परंपरोववन्नकण्हलेस्सभवसिद्धियअपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए० एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिओ उद्देसओ जाव 'लोय-चरिमंते' त्ति। सव्वत्थ कण्हलेस्सेसु भवसिद्धिएसु उववाएयव्वो।

कहिं णं भंते! परंपरोववन्नकण्हलेस्सभवसिद्धियपज्जत्तबायरपुढविकाइयाणं ठाणा पन्नत्ता? एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिओ उद्देसओ जाव 'तुल्लट्ठिइय' त्ति। एवं एएणं अभिलावेणं कण्हलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि तहेव एक्कारस-उद्देसगसंजुत्तं छट्ठं सयं।

नीललेस्सभवसिद्धियएगिंदिएसु सयं सत्तमं।

एवं काऊलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि अट्ठमं सयं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहा भवसिद्धिएहिं चत्तारि सयाणि एवं अभवसिद्धिएहि वि चत्तारि सयाणि भाणियव्वाणि। नवरं चरम-अचरमवज्जा नव उद्देसगा भाणियव्वा, सेसं तं चेव। एवं एयाइं बारस एगिंदियसेढीसयाइं।

—भग० श० ३४। श ६ से १२। पृ० ६२४-२५

कृष्णलेशी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के सम्बन्ध में जैसा औघिक उद्देशक में कहा वैसा समझना।

अनंतरोपपन्न कृष्णलेशी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के सम्बन्ध में जैसा अनंतरोपपन्न औघिक उद्देशक में कहा वैसा समझना।

परंपरोपपन्न कृष्णलेशी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय पाँच प्रकार के अर्थात् परंपरोपन्न कृष्णलेशी भवसिद्धिक पृथ्वीकायिक यावत् परंपरोपन्न कृष्णलेशी भवसिद्धिक वनस्पतिकायिक होते हैं। इनमें प्रत्येक के पर्याप्त सूक्ष्म, अपर्याप्त सूक्ष्म, पर्याप्त बादर, अपर्याप्त बादर चार भेद होते हैं। परंपरोपपन्न कृष्णलेशी भवसिद्धिक अपर्याप्तसूक्ष्म पृथ्वीकायिक की श्रेणी तथा क्षेत्र की अपेक्षा विग्रह गति के पद आदि औघिक उद्देशक में जैसा कहा वैसा रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी के पूर्वलोकांत से यावत् लोक के चरमांत तक समझना। सर्वत्र कृष्णलेशी भवसिद्धिक में उपपात कहना। परंपरोपपन्न कृष्णलेशी भवसिद्धिक पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिकों के स्थान कहाँ कहे हैं—इस अभिलाप से औघिक उद्देशक में जैसा कहा वैसा स्थान पद से यावत् तुल्यस्थिति तक समझना। इस अभिलाप से जैसा प्रथम श्रेणी शतक में कहा वैसे ही छट्ठे श्रेणी शतक के ग्यारह उद्देशक कहने।

इसी प्रकार नीललेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में सप्तम श्रेणी शतक कहना।

इसी प्रकार कापोतलेश्यावाले भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में अष्टम श्रेणी शतक कहना।

जैसे भवसिद्धिक के चार शतक कहे वैसे ही अभवसिद्धिक के चार शतक कहने लेकिन अभवसिद्धिक में चरम-अचरम को छोड़कर नौ उद्देशक ही कहने।

·८९ सलेशी जीव और अल्पबहुत्व :—

·८९·१ औघिक सलेशी जीवों में अल्पबहुत्व :—

(क) एएसि णं भंते! जीवाणं सलेस्साणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साणं अलेस्साणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा, तेऊलेस्सा संखेज्जगुणा, अलेस्सा अणंतगुणा, काऊलेस्सा अणंतगुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, सलेस्सा विसेसाहिया ।

—पण्ण० प ३ । द्वार ८ । सू ३६ । पृ० ३२८

—पण्ण० पद १७ । उ २ । सू १४ । पृ० ४३८

—जीवा० प्रति ६ । सर्व जीव । सू २६६ । पृ० २५८

सबसे कम शुक्ललेश्या वाले जीव होते हैं, उनसे पद्मलेश्यावाले जीव संख्यातगुणा हैं, उनसे तेजोलेश्यावाले जीव संख्यातगुणा हैं, उनसे लेश्या रहित (अलेशी) जीव अनन्तगुणा हैं, उनसे कापोत लेश्यावाले जीव अनन्तगुणा हैं, उनसे नीललेश्यावाले जीव विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्णलेश्या वाले जीव विशेषाधिक हैं, तथा उनसे सलेशी जीव विशेषाधिक हैं।

(ख) सव्वथोवा अलेस्सा सलेस्सा अणंतगुणा।

—जीवा० प्रति ६ । सर्व जीव । सू २३५ । पृ० २५२

अलेसी जीव सबसे कम तथा सलेशी जीव उनसे अनन्त गुणा हैं।

·८६·२ नारकी जीवों में :—

एएसि णं भंते ! नेरइयाणं कण्हलेस्साणं नीललेस्साणं काऊलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ? गोयमा ! सव्वत्थोवा नेरइया कण्हलेसा, नीललेसा असंखेज्जगुणा, काऊलेसा असंखेज्जगुणा ।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १५ । पृ० ४३८

सबसे कम कृष्णलेशी नारकी, उनसे असंख्यातगुणा नीललेशी नारकी, उनसे असंख्यात गुणा कापोतलेशी नारकी हैं।

·८६·३ तिर्यंचयोनि के जीवों में :—

एएसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियाणं कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ? गोयमा ! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया सुक्कलेसा, एवं जहा ओहिया, नवरं अलेसवज्जा ।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १५ । पृ० ४३८

सबसे कम शुक्ललेशी तिर्यंचयोनिक जीव हैं अवशेष (अलेशी को बाद देकर) औघिक जीव की तरह जानना ।

·८६·४ एकेन्द्रिय जीवों में :—

एएसि णं भंते ! एगिंदियाणं कण्हलेस्साणं नीललेस्साणं काऊलेस्साणं तेऊलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया ? गोयमा ! सव्वत्थोवा एगिंदिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेऊलेस्सा, काऊलेस्सा अणंतगुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १५। पृ० ४३८

—भग० श १७। उ १२। प्र ३। पृ० ७६१

सबसे कम एकेन्द्रिय तेजोलेशी जीव हैं, उनसे कापोतलेशी एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणा हैं, उनसे नीललेशी एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्णलेशी एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं।

·८६·५ पृथ्वीकायिक जीवों में :—

एएसि णं भंते! पुढविकाइयाणं कण्हलेस्साणं जाव तेऊलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४? गोयमा! जहा ओहिया एगिंदिया, नवरं काऊलेस्सा असंखेज्जगुणा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १५। पृ० ४३८-६

सबसे कम तेजोलेशी पृथ्वीकायिक जीव हैं, उनसे कापोतलेशी पृथ्वीकायिक जीव असंख्यातगुणा, उनसे नीललेशी विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी विशेषाधिक हैं।

·८६·६ अप्कायिक जीवों में :—

एवं आउकाइयाण वि।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १५। पृ० ४३६

पृथ्वीकायिक जीवों की तरह अप्कायिक जीवों में भी अल्पबहुत्व जानना।

·८६·७ अग्निकायिक जीवों में :—

एएसि णं भंते! तेउकाइयाणं कण्हलेस्साणं नीललेस्साणं काऊलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४? गोयमा! सव्वत्थोवा तेउकाइया काऊलेस्सा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १५। पृ० ४३६

सबसे कम कापोतलेशी अग्निकायिक जीव, उनसे नीललेशी अग्निकायिक विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी अग्निकायिक विशेषाधिक हैं।

·८६·८ वायुकायिक जीवों में :—

एवं वायुकाइयाण वि।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १५। पृ० ४३६

अग्निकायिक जीवों की तरह वायुकायिक जीवों में भी अल्पबहुत्व जानना। (देखो ८६·७)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·८९·९ वनस्पतिकायिक जीवों में :—

एएसि णं भंते ! वणस्सइकाइयाणं कण्हलेस्साणं जाव तेऊलेस्साण य जहा एगिंदियओहियाणं।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १५। पृ० ४३६

सलेशी वनस्पतिकायिक जीवों में अल्पबहुत्व औघिक सलेशी एकेन्द्रिय जीवों की तरह जानना।

·८९·१० द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीवों में :—

बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं जहा तेउकाइयाणं।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १५। पृ० ४३६

सलेशी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीवों में अपने-अपने में अल्पबहुत्व अग्निकायिक जीवों की तरह जानना। (देखो ८८)

·८९·११ पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों में :—

एएसि णं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं कण्हलेस्साणं एवं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ? गोयमा ! जहा ओहियाणं तिरिक्खजोणियाणं, नवरं काऊलेस्सा असंखेज्जगुणा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १६। पृ० ४३६

सलेशी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों में अल्पबहुत्व औघिक तिर्यंचयोनिक जीवों की तरह जानना (देखो ·८९·३) लेकिन कापोतलेश्या को असंख्यात गुणा कहना।

·८९·१२ संमूर्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों में :—

संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं जहा तेउकाइयाणं।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १६। पृ० ४३६

समूर्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों में अल्पबहुत्व अग्निकायिक जीवों की तरह जानना (देखो ·८९·७)।

·८९·१३ गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों में :—

गब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं जहा ओहियाणं तिरिक्खजोणियाणं, नवरं काऊलेस्सा संखेज्जगुणा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १६। पृ० ४३६

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों में अल्पबहुत्व औघिक तिर्यंचयोनिक की तरह जानना। लेकिन कापोतलेश्या में संख्यात गुणा कहना (देखो ८९·३)। लेकिन टीकाकार कहते हैं कि कापोतलेश्या में 'असंख्यात' गुणा कहना :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गर्भव्युत्क्रांतिकपंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकसूत्रे तेजोलेश्याभ्यः कापोतलेश्या असंख्येयगुणा वक्तव्याः तावतामेव तेषां केवलवेदसोपलब्धत्वात्।

'८६'१४ (गर्भज) पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक स्त्री जीवों में :—

एवं तिरिक्खिजोणिणीण वि।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १६। पृ० ४३६

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक स्त्री जीवों में अल्पबहुत्व गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय योनिक की तरह जानना।

'८६'१५ संमूर्छिम तथा गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों में :—

एएसि णं भंते! संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४? गोयमा! सव्वथोवा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा, तेऊलेस्सा संखेज्जगुणा, काऊलेस्सा संखेज्जगुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काऊलेस्सा संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १६। पृ० ४३६

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक—शुक्ललेशी सबसे कम, पद्मलेशी उनसे संख्यात गुणा, तेजोलेशी उनसे संख्यातगुणा, कापोतलेशी उनसे संख्यातगुणा, नीललेशी उनसे विशेषाधिक तथा कृष्णलेशी उनसे विशेषाधिक होते हैं। इनसे संमूर्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कापोतलेशी असंख्यातगुणा, नीललेशी उनसे विशेषाधिक तथा कृष्णलेशी उनसे विशेषाधिक होते हैं।

'८६'१६ संमूर्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक तथा (गर्भज) पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्री जीवों में :—

एएसि णं भंते! संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४? गोयमा! जहेव पंचमं तहा इमं छट्ठं भाणियव्वं।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १६। पृ० ४३६

संमूर्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रियों तथा गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्त्रियों में कौन-कौन अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं— इस सम्बन्ध में '८६'१५ में जैसा कहा, वैसा कहना। गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिययोनिक की जगह गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिययोनिक स्त्री कहना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·८६·१७ गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों तथा तिर्यंच स्त्रियों में :—

एएसि णं भंते ! गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ? गोयमा ! सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया सुक्कलेसा, सुक्कलेसाओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ, पम्हलेसा गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, पम्हलेसाओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ, तेऊलेसा तिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, तेऊलेसाओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ, काऊलेसा संखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसा विसेसाहिया, काऊलेसाओ संखेज्जगुणाओ, नीललेसाओ विसेसाहियाओ, कण्हलेसाओ विसेसाहियाओ ।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १६ । पृ० ४३६

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक शुक्ललेशी सबसे कम, तिर्यंच स्त्री शुक्ललेशी उनसे संख्यातगुणा, ग० पं० तिर्यंच पद्मलेशी उनसे संख्यातगुणा, तिर्यंच स्त्री पद्मलेशी उनसे संख्यातगुणा, ग० पं० ति० तेजोलेशी उनसे संख्यातगुणा, तिर्यंच स्त्री तेजोलेशी उनसे संख्यातगुणा, ग० पं० ति० कापोतलेशी उनसे संख्यातगुणा, ग० पं० ति० नीललेशी उनसे विशेषाधिक, ग० पं० ति० कृष्णलेशी उनसे विशेषाधिक, तिर्यंच स्त्री कापोतलेशी उनसे संख्यातगुणा, तिर्यंच स्त्री नीललेशी उनसे विशेषाधिक, तथा तिर्यंच स्त्री कृष्णलेशी उनसे विशेषाधिक होती हैं ।

·८६·१८ संमूर्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों, गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों तथा तिर्यंच स्त्रियों में :—

एएसि णं भंते ! संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं गब्भवक्कंतियपंचेंदिय-(तिरिक्खजोणियाणं) तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ? गोयमा ! सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतिया तिरिक्खजोणिया सुक्कलेसा, सुक्कलेसाओ तिरि० संखेज्जगुणाओ, पम्हलेसा गब्भवक्कंतिया तिरिक्ख-जोणिया संखेज्जगुणा, पम्हलेसाओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ, तेऊलेसा गब्भवक्कंतिया तिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, तेऊलेसाओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ, काऊलेसाओ संखेज्जगुणाओ, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसा विसेसाहिया, काऊलेसा संखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसाओ विसेसा-हियाओ, काऊलेसा संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसा विसेसाहिया ।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १६ । पृ० ४३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[इस पाठ में भूल मालूम होती है। यद्यपि हमको सभी प्रतियों में एक-सा ही पाठ मिला है, हमारे विचार में इसमें गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक तथा तिर्यंच स्त्री सम्बन्धी जितना पाठ है वह '८६'१७ की तरह होना चाहिए। गुणीजन इस पर विचार करें। हमने अर्थ '८६'१७ के अनुसार किया हैं।]

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक शुक्ललेशी सबसे कम, तिर्यंच स्त्री शुक्ललेशी उनसे संख्यातगुणा, ग० पं० ति० पद्मलेशी उनसे संख्यातगुणा, तिर्यंच स्त्री पद्मलेशी उनसे संख्यातगुणा, ग० पं० ति० तेजोलेशी उनसे संख्यातगुणा, तिर्यंच स्त्री तेजोलेशी उनसे संख्यातगुणा, ग० पं० ति० कापोतलेशी उनसे संख्यातगुणा, ग० पं० ति० नीललेशी उनसे विशेषाधिक, ग० पं० ति० कृष्णलेशी उनसे विशेषाधिक, तिर्यंच स्त्री कापोतलेशी उनसे संख्यातगुणा, तिर्यंच स्त्री नीललेशी उनसे विशेषाधिक तथा तिर्यंच स्त्री कृष्णलेशी उनसे विशेषाधिक होती हैं। इनसे संमूर्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कापोतलेशी असंख्यातगुणा, नीललेशी उनसे विशेषाधिक तथा कृष्णलेशी उनसे विशेषाधिक होते हैं।

'८६'१६ पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों तथा तिर्यंच स्त्रियों में :—

एएसि णं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया सुक्कलेसा, सुक्कलसाओ संखेज्जगुणाओ, पम्हलेसा संखेज्जगुणा, पम्हलेसाओ संखेज्जगुणाओ, तेऊलेसा संखेज्जगुणा, तेऊलेसाओ संखेज्जगुणाओ, काऊलेसा संखेज्जगुणा, नीललेसाओ विसेसाहियाओ; कण्हलेसा विसेसाहिया, काऊलेसा असंखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसाओ विसेसाहियाओ।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १६ । पृ० ४४०

[इस पाठ में भूल मालूम होती है। यद्यपि हमें सभी प्रतियों में एक-सा ही पाठ मिला है, हमारे विचार में शेष की तरफ का पाठ निम्न प्रकार से होना चाहिये क्योंकि यहाँ पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों में गर्भज पुरुष तथा संमूर्छिम दोनों सम्मिलित हैं। गुणीजन इस पर विचार करें।

'काऊलेस्साओ संखेज्जगुणाओ, नीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, काऊलेस्सा असंखेज्जगुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया।'

हमने अर्थ इसी आधार पर किया हैं।]

पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिक शुक्ललेशी सबसे कम, तिर्यंच स्त्री शुक्ललेशी उनसे संख्यातगुणा, पं० ति० पद्मलेशी उनसे संख्यातगुणा, स्त्री तिर्यंच पद्मलेशी उनसे संख्यात-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणा, पं० ति० तेजोलेशी उनसे संख्यातगुणा, तिर्यंच स्त्री तेजोलेशी उनसे संख्यातगुणा, तिर्यंच स्त्री कापोतलेशी उनसे संख्यातगुणा, तिर्यंच स्त्री नीललेशी उनसे विशेषाधिक, तिर्यंच स्त्री कृष्णलेशी उनसे विशेषाधिक, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कापोतलेशी उनसे असंख्यातगुणा, पं० ति० नीललेशी उनसे विशेषाधिक तथा पं० ति० कृष्णलेशी उनसे विशेषाधिक होते हैं।

·८९·२० तिर्यंचयोनिकों तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियों में :—

एएसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियाणं, तिरिक्खजोणिणीण य कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ? गोयमा! जहेव नवमं अप्पाबहुगं तहा इमं पि, नवरं काऊलेसा तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। एवं एए दस अप्पाबहुगा तिरिक्खजोणियाणं।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १६। पृ० ४४०

तिर्यंचयोनिक तथा गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यंच स्त्रियों में कौन-कौन अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है—इस सम्बन्ध में ·८९·१९ में जैसा कहा वैसा कहना लेकिन कापोतलेशी तिर्यंचयोनिक जीव अनंतगुणा कहना।

टीकाकार ने पूर्वाचार्यों द्वारा उक्त दो संग्रह गाथाओं का उल्लेख किया है—

(१) ओहियपणिंदि संमुच्छिमा य गब्भे तिरिक्ख इत्थिओ।
समुच्छगब्भतिरि या, मुच्छतिरिक्खी य गब्भंमि॥
(२) संमुच्छिमगब्भइत्थि पणिंदि तिरिगित्थीयाओ ओहित्थी।
दस अप्पबहुगभेआ तिरियाणं होंति नायव्वा॥

(१) औघिक सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय, (२) संमूर्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय, (३) गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, (४) गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्त्री, (५) संमूर्छिम तथा गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, (६) संमूर्छिम पंचेन्द्रिय तथा तिर्यंच स्त्री, (७) गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय तथा तिर्यंच स्त्री, (८) संमूर्छिम, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय तथा तिर्यंच स्त्री, (९) पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा तिर्यंच स्त्री और (१०) औघिक-सामान्य तिर्यंच तथा तिर्यंच स्त्री। इस प्रकार तिर्यंचों के दस अल्पबहुत्व जानने।

·८९·२१

एवं मणुस्सा वि अप्पाबहुगा भाणियव्वा, नवरं पच्छिमं (दसं) अप्पाबहुगं नत्थि।

—पण्ण० प १७। उ २। सूत्र १६

यह पाठ पण्णवणा सूत्र की प्रति (क) तथा (ग) में नहीं है लेकिन (ख) में है। टीका में भी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'मनुष्याणामपि वक्तव्यानि, नवरं पश्चिमं दशममल्पबहुत्वं नास्ति, मनुष्याणामनन्तत्वाभावात्, तदभावे काऊलेसा अणंतगुणा इति पदासम्भवात्।'

मनुष्य का अल्पबहुत्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक की तरह जानना (देखो '८९'११ से ८९'१९ तक)। '८९'२० वाँ बोल नहीं कहना ; क्योंकि मनुष्यों में अनन्त का अभाव है। अतः 'कापोतलेशी अनन्तगुणा' यह पाठ सम्भव नहीं है।

'८९'२२ देवताओं में :—

एएसि णं भन्ते! देवाणं कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४? गोयमा! सव्वत्थोवा देवा सुक्कलेसा, पम्हलेसा असंखेज्जगुणा, काऊलेसा असंखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसा विसेसाहिया, तेऊलेसा संखेज्जगुणा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १७। पृ० ४४०

शुक्ललेशी देवता सबसे कम, उनसे पद्मलेशी असंख्यातगुणा, उनसे कापोतलेशी असंख्यातगुणा, उनसे नीललेशी विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी विशेषाधिक तथा उनसे तेजोलेशी देवता संख्यातगुणा होते हैं।

'८९'२३ देवियों में :—

एएसि णं भंते! देवीणं कण्हलेसाणं जाव तेऊलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४? गोयमा! सव्वत्थोवाओ देवीओ काऊलेसाओ, नीललेसाओ विसेसाहियाओ, कण्हलेसाओ विसेसाहियाओ, तेऊलेसाओ संखेज्जगुणाओ।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १७। पृ० ४४०

कापोतलेशी देवियाँ सबसे कम, उनसे नीललेशी विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी विशेषाधिक तथा उनसे तेजोलेशी देवियाँ संख्यातगुणी होती हैं।

'८९'२४ देवता और देवियों में :—

एएसि णं भंते! देवाणं देवीणं य कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४? गोयमा! सव्वत्थोवा देवा सुक्कलेसा, पम्हलेसा असंखेज्जगुणा, काऊलेसा असंखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसा विसेसाहिया, काऊलेसाओ देवीओ संखेज्जगुणाओ, नीललेसाओ विसेसाहियाओ, कण्हलेसाओ विसेसाहियाओ, तेऊलेसा देवा संखेज्जगुणा, तेऊलेसाओ देवीओ संखेज्जगुणाओ।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १७। पृ० ४४०

शुक्ललेशी देवता सबसे कम, उनसे पद्मलेशी असंख्यातगुणा, उनसे कापोतलेशी असंख्यातगुणा, उनसे नीललेशी विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी विशेषाधिक, उनसे कापोत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेशी देवियाँ संख्यातगुणी, उनसे नीललेशी देवियाँ विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी देवियाँ विशेषाधिक, उनसे तेजोलेशी देवता संख्यातगुणा तथा उनसे तेजोलेशी देवियाँ संख्यातगुणी होती हैं।

'८६'२५ भवनवासी देवताओं में :—

एएसि णं भंते! भवणवासीणं देवाणं कण्हलेसाणं जाव तेऊलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४? गोयमा! सव्वत्थोवा भवणवासी देवा तेऊलेसा, काऊलेसा असंखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसा विसेसाहिया।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १८। पृ० ४४०

तेजोलेशी भवनवासी देवता सबसे कम, उनसे कापोतलेशी भ० असंख्यातगुणा, उनसे नीललेशी भ० विशेषाधिक तथा उनसे कृष्णलेशी भ० विशेषाधिक होते हैं।

'८६'२६ भवनवासी देवियों में :—

एएसि णं भंते! भवणवासिणीणं देवीणं कण्हलेसाणं जाव तेऊलेसाण य कयरे कयरेहिंतों अप्पा वा ४? गोयमा! एवं चेव।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १८। पृ० ४४०-४१

तेजोलेशी भवनवासी देवियाँ सबसे कम, उनसे कापोतलेशी भ० असंख्यातगुणी, उनसे नीललेशी भ० विशेषाधिक तथा उनसे कृष्णलेशी भ० देवियाँ विशेषाधिक होती हैं।

'८६'२७ भवनवासी देवता तथा देवियों में :—

एएसि णं भंते! भवणवासीणं देवाणं देवीण य कण्हलेसाणं जाव तेऊलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४? गोयमा! सव्वत्थोवा भवणवासी देवा तेऊलेसा, भवणवासिणीओ तेऊलेसाओ संखेज्जगुणाओ, काऊलेसा भवणवासीदेवा असंखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसा विसेसाहिया, काऊलेसाओ भवणवासिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ, नीललेसाओ विसेसाहियाओ, कण्हलेसाओ विसेसाहियाओ।

—पण्ण० प १७। उ २। सू १८। पृ० ४४१

तेजोलेशी भवनवासी देवता सबसे कम, उनसे तेजोलेशी भ० देवियाँ संख्यात गुणी, उनसे कापोतलेशी भ० देवता असंख्यात गुणा, उनसे नीललेशी भ० देवता विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी भ० देवता विशेषाधिक, उनसे कापोतलेशी भवनवासी देवियाँ संख्यातगुणी, उनसे नीललेशी भव० देवियाँ विशेषाधिक तथा उनसे कृष्णलेशी भ० देवियाँ विशेषाधिक होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·८६·२८ भवनवासी देवों के भेदों में :—

(क) एएसि णं भंते ! दीवकुमाराणं कण्हलेस्साणं जाव तेऊलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ? गोयमा ! सव्वत्थोवा दीवकुमारा तेऊलेस्सा, काऊलेस्सा असंखेज्जकुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया ।

—भग० श १६ । उ ११ प्र ३ । पृ० ७५३

(ख) उदहिकुमाराणं × × × एवं चेव ।

—भग० श १६ । उ १२ । प्र १ । पृ० ७५३

(ग) एवं दिसाकुमारा वि ।

—भग० श १६ । उ १३ । प्र १ । पृ० ७५३

(ख) एवं थणियकुमारा वि ।

—भग० श १६ । उ १४ । प्र १ । पृ० ७५३

(ङ) नागकुमारा णं भंते ! × × × जहा सोलसमसए दीवकुमारुद्देसए तहेव निरविसेसं भाणियव्वं जाव इड्ढी (त्ति) ।

—भग० श १७ । उ १३ । प्र १ । पृ० ७६१

(च) सुवन्नकुमाराणं × × × एवं चेव ।

—भग० श १७ । उ १४ । प्र १ । पृ० ७६१

(छ) विज्जुकुमाराणं × × × एवं चेव ।

—भग० श १७ । उ १५ । प्र १ । पृ० ७६१

(ज) वाउकुमाराणं × × × एवं चेव ।

—भग० श १७ । उ १६ । प्र १ । पृ० ७६१

(झ) अग्गिकुमाराणं × × × एवं चेव ।

—भग० श १७ । उ १७ । प्र १ । पृ० ७६१

तेजोलेशी द्वीपकुमार सबसे कम, उनसे कापोतलेशी असंख्यात गुणा, उनसे नीललेशी विशेषाधिक तथा उनसे कृष्णलेशी विशेषाधिक होते हैं ।

इसी प्रकार नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युतकुमार, अग्निकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार, तथा स्तनितकुमार देवों में भी अल्पबहुत्व जानना ।

·८६·२६ वानव्यंतर देवों में :—

एवं वाणमंतराणं, तिन्नेव अप्पाबहुया जहेव भवणवासीणं तहेव भाणियव्वा ।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १८ । पृ० ४४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'८६'२६'१ वानव्यंतर देवों में :—

तेजोलेशी वानव्यंतर देवता सबसे कम, उनसे कापोतलेशी असंख्यातगुणा, उनसे नीललेशी विशेषाधिक तथा उनसे कृष्णलेशी विशेषाधिक होते हैं।

'८६'२६'२ वानव्यंतर देवियों में :—

तेजोलेशी वानव्यंतर देवियाँ सबसे कम, उनसे कापोतलेशी असंख्यातगुणी, उनसे नीललेशी विशेषाधिक तथा उनसे कृष्णलेशी विशेषाधिक होती हैं।

'८६'२६'३ वानव्यंतर देव और देवियों में :—

तेजोलेशी वानव्यंतर देवता सबसे कम, उनसे तेजोलेशी वा० देवियाँ संख्यात गुणी, उनसे कापोतलेशी वानव्यंतर देवता असंख्यातगुणा, उनसे नीललेशी वा० देवता विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी वा० देवता विशेषाधिक, उनसे कापोतलेशी वानव्यंतर देवियाँ संख्यातगुणी, उनसे नीललेशी वा० देवियाँ विशेषाधिक, तथा उनसे कृष्णलेशी वा० देवियाँ विशेषाधिक होती हैं।

'८६'३० ज्योतिषी देव और देवियों में :—

एएसि णं भंते ! जोइसियाणं देवाणं देवीण य तेऊलेसाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ? गोयमा ! सव्वत्थोवा जोइसिया देवा तेऊलेस्सा, जोइसिणीओ देवीओ तेऊलेस्साओ संखेज्जगुणाओ।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू १६ । पृ० ४४१

तेजोलेशी ज्योतिषी देवता सबसे कम तथा उनसे तेजोलेशी ज्योतिषी देवियाँ संख्यातगुणी हैं।

'८६'३१ वैमानिक देवों में :—

एएसि णं भंते ! वेमाणियाणं देवाणं तेऊलेसाणं पम्हलेसाणं सुक्कलेसाण य कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ? गोयमा ! सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेसा, पम्हलेसा असंखेज्जगुणा, तेऊलेसा असंखेज्जगुणा।

—पण्ण० प १७ । उ २ । सू २० । पृ० ४४१

शुक्ललेशी वैमानिक देवता सबसे कम, उनसे पद्मलेशी असंख्यातगुणा तथा उनसे तेजोलेशी असंख्यातगुणा होते हैं।

'८६'३२ वैमानिक देव और देवियों में :—

एएसि णं भंते ! वेमाणियाणं देवाणं देवीण य तेऊलेस्साणं पम्हलेस्साणं सुक्क-लेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ? गोयमा ! सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असंखेज्जगुणा, तेऊलेस्सा असंखेज्जगुणा, तेऊलेस्साओ वेमाणिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ।

—पण्ण० प १७। उ २। सू २०। पृ० ४४१

शुक्ललेशी वैमानिक देवता सबसे कम, उनसे पद्मलेशी वै० देवता असंख्यातगुणा, उनसे तेजोलेशी वै० देवता असंख्यातगुणा तथा उनसे तेजोलेशी वैमानिक देवियाँ संख्यातगुणी होती हैं।

'८६'३३ भवनवासी, वानव्यंतर, ज्योतिषी तथा वैमानिक देवों में :—

एएसि णं भंते! भवणवासीदेवाणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाण य देवाण य कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४? गोयमा! सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेसा, पम्हलेसा असंखेज्जगुणा, तेऊलेसा असंखेज्जगुणा, तेऊलेसा भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा, काऊलेसा असंखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसा विसेसाहिया, तेऊलेसा वाणमंतरा देवा असंखेज्जगुणा, काऊलेसा असंखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसा विसेसाहिया, तेऊलेसा जोइसिया देवा संखेज्जगुणा।

—पण्ण० प १७। उ २। सू २१। पृ० ४४१

शुक्ललेशी वैमानिक देव सबसे कम, उनसे पद्मलेशी वै० देव असंख्यातगुणा, उनसे तेजोलेशी वै० देव असंख्यातगुणा, उनसे तेजोलेशी भवनवासी देव असंख्यातगुणा, उनसे कापोतलेशी भ० देव असंख्यातगुणा, उनसे नीललेशी भ० देव विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी भ० देव विशेषाधिक, उनसे तेजोलेशी वानव्यंतर देव असंख्यातगुणा, उनसे कापोतलेशी वानव्यंतर देव असंख्यातगुणा, उनसे नीललेशी वा० देव विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी वा० देव विशेषाधिक तथा उनसे तेजोलेशी ज्योतिषी देव संख्यातगुणा होते हैं।

'८६'३४ भवनवासी, वानव्यंतर, ज्योतिषी तथा वैमानिक देवियों में :—

एएसि णं भंते! भवणवासिणीणं वाणमंतरीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीण य कण्हलेसाणं जाव तऊलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४? गोयमा! सव्वत्थोवाओ देवीओ वेमाणिणीओ तेऊलेसाओ, भवणवासिणीओ तेऊलेसाओ असंखेज्जगुणाओ, काऊलेसाओ असंखेज्जगुणाओ, नीललेसाओ विसेसाहियाओ, कण्हलेसाओ विसेसाहियाओ, तेऊलेसाओ वाणमंतरीओ देवीओ असंखेज्जगुणाओ, काऊलेसाओ असंखेज्जगुणाओ, नीललेसाओ विसेसाहियाओ, कण्हलेसाओ विसेसाहियाओ, तेऊलेसाओ जोइसिणीओ देवोओ संखेज्जगुणाओ।

—पण्ण० प १७। उ २। सू २१। पृ० ४४१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेजोलेशी वैमानिक देवियाँ सबसे कम, उनसे तेजोलेशी भवनवासी देवियाँ असंख्यात् गुणी, उनसे कापोतलेशी भ० देवियाँ असंख्यात गुणी, उनसे नीललेशी भ० देवियाँ विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी भ०देवियाँ विशेषाधिक, उनसे तेजोलेशी वानव्यन्तर देवियाँ असंख्यात गुणी, उनसे कापोतलेशी वा० देवियाँ असंख्यात गुणी, उनसे नीललेशी वा० देवियाँ विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी वा० देवियाँ विशेषाधिक तथा उनसे तेजोलेशी ज्योतिषी देवियाँ संख्यात गुणी होती हैं।

'८६'३५ चारों प्रकार के देव और देवियों में :—

एएसि णं भंते ! भवणवासीणं जाव वेमाणियाणं देवाण य देवणी य कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ? गोयमा ! सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेसा, पम्हलेसा असंखेज्जगुणा, तेऊलेसा असंखेज्जगुणा, तेऊलेसाओ वेमाणियदेवीओ संखेज्जगुणाओ, तेऊलेसा भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा, तेऊलेसाओ भवणवासिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ, काऊलेसा भवणवासी असंखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसा विसेसाहिया. काऊलेसाओ भवणवासिणीओ संखेज्जगुणाओ नीललेसाओ विसेसाहियाओ, कण्हलेसाओ विसेसाहियाओ, तेऊलेसा वाणमंतरा संखेज्जगुणा, तेऊलेसाओ वाणमंतरीओ संखेज्जगुणाओ, काऊलेसा वाणमंतरा असंखेज्जगुणा, नीललेसा विसेसाहिया, कण्हलेसा विसेसाहिया, काऊलेसाओ वाणमंतरीओ संखेज्जगुणाओ, नीललेसाओ विसेसाहियाओ, कण्हलेसाओ विसेसाहियाओ, तेऊलेसा जोइसिया संखेज्जगुणा, तेऊलेसाओ जोइसिणीओ संखेज्जगुणाओ।

—पण्ण० प १७। उ २। सू २२। पृ० ४४१-४२

शुक्ललेशी वैमानिक देव सबसे कम, उनसे पद्मलेशी वै० देव असंख्यात गुणा, उनसे तेजोलेशी वै० देव असंख्यात गुणा, उनसे तेजोलेशी वै० देवियाँ संख्यात गुणी, उनसे तेजोलेशी भवनवासी देव असंख्यात गुणा, उनसे तेजोलेशी भ० देवियाँ संख्यात गुणी, उनसे कापोतलेशी भ० देव असंख्यात गुणा, उनसे नीललेशी भ० देव विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी भ० देव विशेषाधिक, उनसे कापोतलेशी भ० देवियाँ संख्यात गुणी, उनसे नीललेशी भ० देवियाँ विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी भ० देवियाँ विशेषाधिक, उनसे तेजोलेशी वानव्यंतर देव संख्यात गुणा, उनसे तेजोलेशी वा० देवियाँ संख्यात गुणी, उनसे कापोतलेशी वा० देव असंख्यात गुणा, उनसे नीललेशी वा० देव विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी वा० देव विशेषाधिक, उनसे कापोतलेशी वा० देवियाँ संख्यात गुणी, उनसे नीललेशी वा० देवियाँ विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी वा० देवियाँ विशेषाधिक, उनसे तेजोलेशी ज्योतिषी देव संख्यात गुणा तथा उनसे तेजोलेशी ज्यो० देवियाँ संख्यात गुणी होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·६० लेश्या और विविध विषय :—

·६१ लेश्याकरण :—

(कइविहं णं भंते ! लेस्साकरणे पन्नत्ते ? गोयमा !) लेस्साकरणे छव्विहे × × × एए सव्वे नेरइयादी दण्डगा जाव वेमाणियाणं जस्स जं अत्थि तं तस्स सव्वं भाणियव्वं ।

—भग० श १९ । उ ६ । प्र ४ । पृ० ७८६

२२ करणों में 'लेश्याकरण' भी एक है। लेश्याकरण छः प्रकार का है, यथा—कृष्ण-लेश्याकरण यावत् शुक्ललेश्याकरण। सभी जीव दण्डकों में लेश्याकरण कहना लेकिन जिसमें जितनी लेश्या हो उतने लेश्याकरण कहने। टीकाकर ने 'करण' की इस प्रकार व्याख्या की है—

तत्र क्रियतेऽनेनेति करणं—क्रियायाः साधकतमं कृतिर्वा करणं—क्रियामात्रं, नन्वस्मिन् व्याख्याने करणस्य निर्वृत्तेश्च न भेदः स्यात्, निर्वृत्तेरपि क्रियारूपत्वात्, नैवं, करणमारम्भक्रिया निर्वृत्तिस्तु कार्यस्य निष्पत्तिरिति।

जिसके द्वारा किया जाय वह करण। क्रिया का साधन अथवा करना वह करण। इस दूसरी व्युत्पत्ति के प्रमाण से करण व निर्वृत्ति एक हो गई ऐसा नहीं समझना, क्योंकि करण आरंभिक क्रिया रूप है तथा निर्वृत्ति कार्य की समाप्ति रूप है।

·६२ लेश्यानिर्वृत्तिः—

कइविहा णं भंते ! लेस्सानिव्वत्ती पन्नत्ता ? गोयमा ! छव्विहा लेस्सानिव्वत्ती पन्नत्ता, तंजहा—कण्हलेस्सानिव्वत्ती जाव सुक्कलेस्सानिव्वत्ती। एवं जाव वेमाणियाणं जस्स जइ लेस्साओ (तस्स तत्तिया भाणियव्वा)।

—भग० श १९ । उ ८ । प्र १९ । पृ० ७८८

छः लेश्यानिर्वृत्ति होती हैं यथा कृष्णलेश्यानिर्वृत्ति यावत् शुक्ललेश्यानिर्वृत्ति। इसी प्रकार दण्डक के सभी जीवों के लेश्यानिर्वृत्ति होती हैं। जिस दण्डक में जितनी लेश्या होती है उसमें उतनी लेश्यानिर्वृत्ति कहना। टीकाकार ने निर्वृत्ति की व्याख्या इस प्रकार की है :—

निर्वर्तनं—निर्वृतिर्निष्पत्तिर्जीवस्यैकेन्द्रियादितया निर्वृत्तिर्जीवनिर्वृत्तिः।

निर्वृत्ति-निर्वर्तन अर्थात् निष्पन्नता। यथा जीव का एकेन्द्रियादि रूप से निर्वृत्त होना जीवनिर्वृत्ति। लेश्यानिर्वृत्ति का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है—द्रव्यलेश्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के द्रव्यों के ग्रहण की निष्पन्नता अथवा भावलेश्या के एक लेश्या से दूसरी लेश्या में परिणमन की निष्पन्नता लेश्यानिर्वृत्ति।

·९३ लेश्या और प्रतिक्रमण :—

पडिक्कमामि छहिं लेस्साहिं—कण्हलेस्साए, नीललेस्साए, काऊलेस्साए, तेऊलेस्साए, पम्हलेस्साए, सुक्कलेस्साए। ××× तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

—आव० अ ४। सू ६। पृ० ११६८

आदिल्ल तिणि एत्थं, अपसत्था उवरिमा पसत्थाउ।
अपसत्थासु वट्टियं, न वट्टियं जं पसत्थासु।
एसऽइयारो एया—सु होइ, तस्स य पडिक्कमामि त्ति।
पडिकूलं वट्टामी, जं भणियं पुणो न सेवेमि।

—आव० अ ४। सू ६। हारि० टीका में उद्धृत

मैं छः लेश्याओं का प्रतिक्रमण करता हूँ—उनसे निवृत्त होता हूँ। मेरे लेश्या जनित दुष्कृत निष्फल हों।

यदि तीन अप्रशस्त लेश्या में वर्तना की हो तथा तीन प्रशस्त लेश्या में वर्तना न की हो तो इस कारण से संयम में यदि किसी प्रकार का अतिचार लगा हो तो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रतिकूल लेश्या में यदि वर्तना की हो तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि फिर उसका सेवन नहीं करूंगा।

·९४ लेश्या शाश्वत भाव है :—

'पुव्विं भंते! लोयंते, पच्छा अलोयंते? पुव्विं अलोयंते पच्छा लोयंते? रोहा! लोयंते य, अलोयंते य; जाव—(पुव्विं एते, पच्छा एते—दुवेते सासया भावा), अणाणुपुव्वी एसा रोहा! ××× एवं लोयंते एक्केक्केणं संजोएयव्वे इमेहिं ठाणेहिं, तंजहा—

उवास-वाय-घणउदहि-पुढवी-दीवा य सागरा वासा।
नेरइयाई अत्थिय समया कम्माइं लेस्साओ॥ १॥
दिट्ठी-दंसण-णाणा-सण्णा-सरीरा य जोग-उवओगे।
दव्वपएसा पज्जव अद्धा किं पुव्विं लोयंते॥ २॥

—भग० श १। उ ६। प्र २१९, २२०। पृ० ४०३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोक, अलोक, लोकान्त, अलोकान्त आदि शाश्वत भावों की तरह लेश्या भी शाश्वत भाव है। पहले भी है, पीछे भी है ; अनानुपूर्वी है, इनमें कोई क्रम नहीं है।

रोहक अणगार के प्रश्न करने पर मुर्गी और अण्डे का उदारहण देकर भगवान ने आगे-पीछे के प्रश्न को समझाया है।

'रोहा ! से णं अंडए कओ ?' 'भयवं ! कुक्कुडीओ !' 'सा णं कुक्कुडी कओ ?' 'भंते ! अंडयाओ !'

—भग० श १ । उ ६ । प्र २१८ । पृ० ४०३

अण्डा कहाँ से आया ? मुर्गी से।

मुर्गी कहाँ से आयी ? अण्डे से।

दोनों पहले भी हैं, दोनों पीछे भी हैं। दोनों शाश्वत भाव हैं। दोनों अनानुपूर्वी हैं, आगे पीछे का क्रम नहीं है।

लेश्या भी शाश्वत भाव है ; किसी अन्य शाश्वत भाव की अपेक्षा इसका पहिले-पीछे का क्रम नहीं है।

·९५ लेश्या और ध्यान :—

·९५·१ रौद्र ध्यान :—

कावोयनीलकाला, लेसाओ तीव्व संकिलिट्ठाओ।
रोद्दज्झाणोवगयस्स, कम्मपरिणामजणियाओ ॥

रौद्र ध्यान में उपगत जीवों में तीव्र संक्लिष्ट परिणाम वाली कापोत, नील, कृष्ण लेश्याएँ होती हैं।

·९५·२ आर्त्तध्यान :—

कावोयनीलकाला, लेसाओ णाइसंकिलिट्ठाओ।
अट्टज्झाणोवगस्स, कम्मपरिणामजणियाओ ॥

टीका—कापोतनीलकृष्णलेश्याः। किं भूताः ? नातिसंक्लिष्टा रौद्रध्यान लेश्यापेक्षया नातीवाशुभानुभावाः, भवन्तीति क्रिया। कस्येत्यत आह –आर्तध्यानोपगतस्य, जन्तोरिति गम्यते। किं निबंधना एताः ? इत्यत आह—कर्मपरिणामजनिताः तत्र 'कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः। स्फटिकस्येव तत्रायं लेश्याशब्द. प्रयुज्यते ॥ एताश्च कर्मोदयायत्ता इति गाथार्थः।

—आव० अ ४। टीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्त्तध्यान में उपगत जीवों में नातिसंक्लिष्ट परिणाम वाली कापोत, नील, कृष्ण लेश्याएँ होती हैं। यह रौद्रध्यान में उपगत जीवों के लेश्या परिणामों की अपेक्षा से कथन है अर्थात् रौद्रध्यान में उपगत जीव की अपेक्षा आर्त्तध्यान में उपगत जीव के लेश्या परिणाम कम संक्लिष्ट होते हैं।

टीकाकार का कथन है कि लेश्या कर्मोदय परिणाम जनित है।

·६५·३ धर्मध्यान :—

·६५·४ शुक्लध्यान :—

धर्म और शुक्ल ध्यानों में वर्तता हुआ जीव किस-किस लेश्या में परिणमन करता है—इनके सम्बन्ध में पाठ उपलब्ध नहीं हुए हैं। ध्यान और लेश्या में अविनाभावी सम्बन्ध है कि नहीं—यह कहा नहीं जा सकता है लेकिन चौदहवें गुणस्थान में जब जीव अयोगी तथा अलेशी हो जाता है तब भी उसके शुक्ल ध्यान का चौथा भेद होता है। यहाँ लेश्या रहित होकर भी जीव के ध्यान का एक उपभेद रहता है।

निव्वाणगमणकाले केवलिणोद्धनिरुद्धजोगस्स।
सुहुमकिरियाऽनियट्टिं तइयं तणुकायकिरियस्स॥
तस्सेव य सेलेसीगयस्स सेलोव्व निप्पकंपस्स।
वोच्छिन्नकिरियमप्पडिवाई झाणं परमसुक्कं॥

—ठाण० स्था ४। उ १। सू २४७। टीका में उद्धृत

निर्वाण के समय केवली के मन और वचन योगों का सम्पूर्ण निरोध हो जाता है तथा काययोग का अर्ध निरोध होता है। उस समय उसके शुक्ल ध्यान का तीसरा भेद 'सुहुम-किरिए अनियट्टी' होता है और सूक्ष्म कायिकी क्रिया—उच्छ्वासादि के रूप में होती है।

उस निर्वाणगामी जीव के शैलेशत्व प्राप्त होने पर, सम्पूर्ण योग निरोध होने पर भी शुक्लध्यान का चौथा भेद 'समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाती' होता है, यद्यपि शैलेशत्व की स्थिति मात्र पांच ह्रस्व स्वराक्षर उच्चारण करने समय जितनी होती है।

ध्यान का लेश्या के परिणमन पर क्या प्रभाव पड़ता है यह भी विचारणीय विषय है। क्या ध्यान के द्वारा लेश्या द्रव्यों का ग्रहण नियंत्रित या बंद किया जा सकता है? ध्यान का लेश्या-परिणमन के साथ क्या सीधा संयोग है या योग के द्वारा? इत्यादि अनेक प्रश्न विज्ञजनों के विचारने योग्य हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·९६ लेश्या और मरण :—

बालमरणे तिविहे पन्नत्ते, तंजहा—ठिअलेस्से, संकिलिट्ठलेस्से, पज्जवजायलेस्से। पंडियमरणे तिविहे पन्नत्ते, तंजहा—ठिअलेस्से, असंकिलिट्ठलेस्से, पज्जवजायलेस्से। बालपंडियमरणे तिविहे पन्नत्ते, तंजहा—ठिअलेस्से, असंकिलिट्ठलेस्से, अपज्जवजायलेस्से।

—ठाण० स्था ३। उ ४। सू २२२। पृ० २२०

टीका—स्थिता—उपस्थिता अविशुध्यन्त्यसंक्लिश्यमाना च लेश्या कृष्णादिर्यस्मिन् तत्स्थितलेश्यः, संक्लिष्टा-संक्लिश्यमाना संक्लेशमागच्छन्तीत्यर्थः, सा लेश्या यस्मिंस्तत्तथा, तथा पर्यवाः—पारिशेष्याद्विशुद्धिविशेषाः प्रतिसमयं जाता यस्यां सा तथा, विशुद्ध्या वर्द्धमानेत्यर्थः, सा लेश्या यस्मिस्तत्तथेति, अत्र प्रथमं कृष्णादिलेश्यः सन् यदा कृष्णादिलेश्येस्वेव नारकादिषूत्पद्यते तदा प्रथमं भवति, यदा तु नीलादिलेश्यः सन् कृष्णादिलेश्येषूत्पद्यते तदा द्वितीयं, यदा पुनः कृष्णलेश्यादिः सन् नीलकापोतलेश्येषूत्पद्यते तदा तृतीयम्, उक्तं चान्त्यद्वयसंवादि भगवत्याम् यदुक्तं—"से णूणं भंते! कण्हलेसे, नीललेसे जाव सुक्कलेसे भवित्ता काऊलेसेसु नेरइएसु उववज्जइ? हंता, गोयमा! से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ? गोयमा! लेसाठाणेसु संकिलिस्समाणेसु वा विसुज्झमाणेसु वा काऊलेस्सं परिणमइ परिणमइत्ता काऊलेसेसु नेरइएसु उववज्जइ" त्ति, एतदनुसारेणोत्तरसूत्रयोरपि स्थितलेश्यादिविभागो नेय इति। पण्डितमरणे संक्लिश्यमानता लेश्याया नास्ति, संयतत्वादेवेत्ययं बालमरणाद्विशेषः, बालपण्डितमरणे तु संक्लिश्यमानता विशुद्ध्यमानता च लेश्याया नास्ति, मिश्रत्वादेवेत्ययं विशेष इति। एवं च पण्डितमरणे वस्तुतो द्विविधमेव, संक्लिश्यमानलेश्यानिषेधे अवस्थितवर्द्धमानलेश्यत्वात् तस्य, त्रिविधत्वं तु व्यपदेशमात्रादेव, बालपण्डितमरणं त्वेकविधमेव, संक्लिश्यमानपर्यवजातलेश्यानिषेधे अवस्थितलेश्यत्वात् तस्येति, त्रैविध्यं त्वस्येतरव्यावृत्तितो व्यपदेशत्रयप्रवृत्तेरिति।

—ठाण० स्था ३। उ ४। सू २२२। टीका

मरण के समय में यदि लेश्या अवस्थित रहे तो वह स्थितलेश्यमरण, मरण के समय में यदि लेश्या संक्लिश्यमान हो तो वह संक्लिष्टलेश्यमरण, तथा मरण के समय में यदि लेश्या के पर्यायों की प्रतिसमय विशुद्धि हो रही हो तो वह पर्यवजातलेश्यमरण कहलाता है। मरण के समय में यदि लेश्या की अविशुद्धि नहीं हो रही हो तो वह असंक्लिष्टलेश्यमरण तथा यदि मरण के समय में लेश्या की विशुद्धि नहीं हो रही हो तो अपर्यवजातलेश्यमरण कहलाता है।

लेश्या की अपेक्षा से बालमरण के तीन भेद होते हैं—स्थितलेश्य, संक्लिष्टलेश्य और पर्यवजातलेश्य बालमरण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बालमरणके समय यदि जीव कृष्णादि लेश्या में अविशुद्ध रूप में अवस्थित रहे तो उसका वह मरण स्थितलेश्य बालमरण कहलाता है, यथा—कृष्णलेशी जीव मरणके समय कृष्ण लेश्या में अवस्थित रहकर कृष्णलेशी नारकी में उत्पन्न होता है। बालमरण के समय यदि जीव लेश्या में संक्लिश्यमान—कलुषित होता रहता है तो उसका वह मरण संक्लिष्ट-लेश्य बालमरण कहलाता है, यथा—नीलादिलेशी जीव मरण के समय लेश्यास्थानों में संक्लिश्यमान होते-होते कृष्णलेश्या में उत्पन्न होता है। बालमरण के समय यदि जीव की लेश्या के पर्याय विशुद्धि को प्राप्त हो रहे हों तो उसका वह मरण पर्यवजातलेश्य बालमरण कहलाता है, यथा—कृष्णलेशी जीव मरण के समय लेश्या के पर्यायों में विशुद्धत्व को प्राप्त होता हुआ नील-कापोतादि लेश्या में उत्पन्न होता है।

यद्यपि मूल सूत्र में पंडितमरण के भी स्थितलेश्य, असंक्लिष्टलेश्य तथा पर्यवजातलेश्य तीन भेद बताये गये हैं; तथापि टीकाकार का कथन है कि पंडितमरण में लेश्या की संक्लिष्टता—अविशुद्धि सम्भव नहीं है, वहाँ असंक्लिष्टता—विशुद्धि ही होती है तथा पर्यवजातलेश्य पंडितमरण में भी लेश्या के पर्यायों की विशुद्धि ही होती है। अतः वास्तव में लेश्या की अपेक्षा से पंडितमरण के दो ही भेद करने चाहियें। असंक्लिष्टलेश्य भेद को पर्यवजातलेश्य भेद में शामिल कर लेना चाहिये।

यद्यपि मूल पाठ में बालपंडितमरण के भी स्थितलेश्य, असंक्लिष्टलेश्य तथा अपर्यव-जातलेश्य तीन भेद किये गये हैं; तथापि टीकाकार का कथन है कि बालपंडितमरण का एक स्थितलेश्य भेद ही करना चाहिये; क्योंकि बालपंडितमरण के समय में न तो लेश्या की अविशुद्धि ही होती है और न विशुद्धि, कारण उसमें बालत्व और पंडितत्व का सम्मिश्रण है। अतः वहाँ असंक्लिष्टलेश्य तथा अपर्यवजातलेश्य भेदों का निषेध किया गया है। सुधीजन इस पर गम्भीर चिन्तन करें।

·९७ लेश्या परिमाणों को समझाने के लिये दृष्टान्त :—

·९७·१ जम्बू खादक दृष्टान्त

(क) जह जंबुतरुवरेगो, सुपक्कफलभरियनमियसालग्गो।
दिट्ठो छहिं पुरिसेहिं, ते बिंती जंबु भक्खेमो॥
किह पुण ? ते बेंतेक्को, आरुहमाणाण जीव संदेहो।
तो छिंदिऊण मूले, पाडेमुं ताहे भक्खेमो॥
बिति आह एद्दहेणं, किं छिण्णेणं तरूण अम्हं ति ?
साहामहल्लछिंदह, तइओ बेंती पसाहाओ॥

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोच्छे चउत्थओ उण, पंचमओ बेंति गेण्हह फलाइं ?
छट्ठो बेंती पडिया, एए च्चिय खाह घेत्तुं जे॥
दिट्ठंतस्सोवणओ, जो बेंति तरू विछिन्नमूलाओ।
सो वट्टइ किण्हाए, साहमहल्ला उ नीलाए॥
हवइ पसाहा काऊ, गोच्छा तेऊ फला य पम्हाए।
पडियाए सुक्कलेसा, अहवा अण्णं उदाहरणं॥

—आव० अ ४। सू ६। हारि० टीका

ख) पहिया जे छप्पुरिसा परिभट्ठारणमज्झ देसम्हि।
फलभरियरुक्खमेगं पेक्खित्ता ते विचिंतं ति॥
णिम्मूल खंध साहुवसाहुं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं।
खाउं फलाइं इदि जं मणेण वयणं हवे कम्मं॥

—गोजी० गा ५०६-७। पृ० १८२

छः बंधु किसी उपवन में घूमने गये तथा एक फल से लदे भरे-पूरे अवनत शाखा वाले जामुन वृक्ष को देखा। सबके मन में फलाहार करने की इच्छा जाग्रत हुई। छओं बंधुओं के मन में लेश्या जनित अपने-अपने परिणामों के कारण भिन्न-भिन्न विचार जाग्रत हुए और उन्होंने फल खाने के लिये अलग-अलग प्रस्ताव रखे, उनसे उनकी लेश्या का अनुमान किया जा सकता है।

प्रथम बंधु का प्रस्ताव था कि कौन पेड़ पर चढ़कर तोड़ने की तकलीफ करे तथा चढ़ने में गिरने की आशंका भी है। अतः सम्पूर्ण पेड़ को ही काट कर गिरा दो और आराम से फल खाओ।

द्वितीय बंधु का प्रस्ताव आया कि समूचे पेड़ को काटकर नष्ट करने से क्या लाभ ? बड़ी-बड़ी शाखायें काट डालो। फल सहज ही हाथ लग जायंगे तथा पेड़ भी बच जायगा।

तीसरा बंधु बोला कि बड़ी डालें काटकर क्या लाभ होगा ? छोटी शाखाओं में ही फल बहुतायत से लगे हैं उनको तोड़ लिया जाय। आसानी से काम भी बन जायगा और पेड़ को भी विशेष नुकसान न होगा।

चतुर्थ बंधु ने सुझाव दिया कि शाखाओं को तोड़ना ठीक नहीं। फल के गुच्छे ही तोड़ लिये जायं। फल तो गुच्छों में ही हैं और हमें फल ही खाने हैं। गुच्छे तोड़ना ही उचित रहेगा।

पंचम बंधु ने धीमे से कहा कि गुच्छे तोड़ने की भी आवश्यकता नहीं है। गुच्छे में तो कच्चे-पक्के सभी तरह के फल होंगे। हमें तो पक्के मीठे फल खाने हैं। पेड़ को झकझोर दो परिपक्व रसीले फल नीचे गिर पड़ेंगे। हम मजे से खा लेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छठे बंधु ने ऋजुता भरी बोली में सबको समझाया क्यों विचारे पेड़ को काटते हो, बाढ़ते हो, तोड़ते हो, झकझोरते हो ! देखो ! जमीन पर आगे से ही अनेक पके पकाये फल स्वयं निपतित होकर पड़े हैं। उठाओ और खाओ। व्यर्थ में वृक्ष को कोई क्षति क्यों पहुँचाते हो।

•९७·२ ग्रामघातक दृष्टान्त

चोरा गामवहत्थं, विणिग्गया एगो बेंति घाएह।
जं पेच्छह सव्वं वा दुपयं च चउप्पयं वावि॥
बिइओ माणुस पुरिसे य, तइओ साउहे चउत्थे य।
पंचमओ जुज्झंते, छट्ठो पुण तत्थिमं भणइ॥
एक्कं ता हरह धणं, बीयं मारेह मा कुणह एयं।
केवल हरह घणंती, उवसंहारो इमो तेसिं॥
सव्वे मारेह त्ती, वट्टइ सो किण्हलेसपरिणामो।
एवं कमेण सेसा, जा चरमो सुक्कलेसाए॥

—आव० अ ४। सू ६। हारि० टीका

छः डाकू किसी ग्राम को लूटने के लिये जा रहे थे। छओं के मन में लेश्याजनित अपने-अपने परिणामों के अनुसार भिन्न-भिन्न विचार जागृत हुए। उन्होंने ग्राम को लूटने के लिए अलग-अलग विचार रखे—उनसे उनके लेश्या परिणामों का अनुमान किया जा सकता है।

प्रथम डाकू का प्रस्ताव रहा कि जो कोई मनुष्य या पशु अपने सामने आवे—उन सबको मार देना चाहिए।

द्वितीय डाकू ने कहा—पशुओं को मारने से क्या लाभ ? मनुष्यों को मारना चाहिए जो अपना विरोध कर सकते हैं।

तृतीय डाकू ने सुझाया—स्त्रियों का हनन मत करो, दुष्ट पुरुषों का ही हनन करना चाहिए।

चतुर्थ डाकू का प्रस्ताव था कि प्रत्येक पुरुष का हनन नहीं करना चाहिए ? जो पुरुष शस्त्र सज्जित हों उन्हीं को मारना चाहिए।

पंचम डाकू बोला—शस्त्र सहित पुरुष भी यदि अपने को देखकर भाग जाते हैं तो उन्हें नहीं मारना चाहिए। सशस्त्र पुरुष जो सामना करे उनको ही मारो।

छठे डाकू ने समझाया कि अपना मतलब धन लूटने से है तो धन लूटें, मारें क्यों ? दूसरे का धन छीनना तथा किसी को जान से मारना—दोनों महादोष हैं। अतः अपने लूट लें लेकिन मारें किसी को नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपरोक्त दोनों दृष्टांत लेश्या परिणामों को समझने के लिये स्थूल दृष्टान्त हैं। ये दोनों दृष्टान्त दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में प्रचलित हैं। अतः प्रतीत होता है कि ये दृष्टान्त परम्परा से प्रचलित हैं।

·९८ जैनेतर ग्रन्थों में लेश्या के समतुल्य वर्णन :—

·९८·१ महाभारत में :—

लेश्या से मिलती भावना महाभारत के शान्ति पर्व की "वृत्रगीता" में मिलती है जहाँ जगत् के सब जीवों को वर्ण—रंग के अनुसार छः भेदों में विभक्त किया गया है।

षड् जीववर्णाः परमं प्रमाणं कृष्णो धूम्रो नीलमथास्य मध्यम्।
रक्तं पुनः सह्यतरं सुखं तु हारिद्रवर्णं सुसुखं च शुक्लम्॥

—महा० शा० पर्व। अ २८०। श्लो ३३

जीव छः प्रकार के वर्णवाले होते हैं, यथा—कृष्ण, धूम्र, नील, रक्त, हारिद्र तथा शुक्ल। कृष्ण वर्ण वाले जीव को सबसे कम सुख, धूम्र वर्ण वाले जीव को उससे अधिक सुख होता है तथा नील वर्ण वाले जीव को मध्यम सुख होता है। रक्त वर्ण वाले जीव का सुख-दुःख सहने योग्य होता है। हारिद्रवर्ण (पीले वर्ण) वाले जीव सुखी होते हैं तथा शुक्लवर्ण वाले परम सुखी होते हैं। इस प्रकार जीवों के छः वर्णों का वर्णन परम प्रमाणित माना जाता है।

× × × तत्र यदा तमस आधिक्यं सत्त्वरजसोर्न्यूनत्वसमत्वे तदा कृष्णो वर्णः। अन्त्ययोर्वैपरीत्ये धूम्रः। तथा रजस आधिक्ये सत्त्वतमसोर्न्यूनत्वसमत्वे नीलवर्णः। अन्त्ययोर्वैपरीत्ये मध्यं मध्यमो वर्णः। तच्च रक्तं लोकानां सह्यतरं लोकानां प्रवृत्ति-कुशलानाममूढ़ानां साहसिकानां सत्त्वस्याधिक्ये रजस्तमसोर्न्यूनत्वसमत्वे हारिद्रः पीतवर्णस्तच्च सुखकरं। अन्त्ययोर्वैपरीत्ये शुक्लं तच्चात्यंतसुखकरं × × ×।

—महा० शा० पर्व। अ २८०। श्लो ३३ पर नील० टीका

जब तमोगुण की अधिकता, सत्त्वगुण की न्यूनता और रजोगुण की सम अवस्था हो तब कृष्णवर्ण होता है। तमोगुण की अधिकता, रजोगुण की न्यूनता और सत्त्वगुण की सम अवस्था होने पर धूम्र वर्ण होता है। रजोगुण की अधिकता, सत्त्वगुण की न्यूनता और तमोगुण की सम अवस्था होने पर नील वर्ण होता है। इसी में जब सत्त्वगुण की सम अवस्था और तमोगुण की न्यूनावस्था हो तो मध्यम वर्ण होता है। उसका रंग लाल होता है। जब सत्त्वगुण की अधिकता, रजोगुण की न्यूनता और तमोगुण की सम अवस्था हो तो हरिद्रा के समान पीतवर्ण होता है। उसीमें जब रजोगुण की सम अवस्था और तमोगुण की न्यूनता हो तो शुक्लवर्ण होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके वाद के श्लोक भी तुलनात्मक अध्ययन के लिए पठनीय हैं। जीव किस लेश्या में कितने समय तक रहता है, इसका वर्णन जैन दर्शन में पल्योपम, सागरोपम आदि काल-गणना शब्दों में बताया गया है (देखो '६४) तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में जीव कितने 'विसर्ग' तक किस वर्ण में रहता है इसका वर्णन महाभारतकार व्यासदेव ने किया है। उन्होंने विसर्ग को विस्तार से समझाया है, क्योंकि वैदिक परम्परा के लिए यह एक अज्ञात बात थी जब कि जैन साहित्य में पल्योपम, सागरोपम आदि काल-गणना की पद्धति सुप्रसिद्ध है।

संहार-विक्षेप-सहस्रकोटीस्तिष्ठंति जीवाः प्रचरन्ति चान्ये।
प्रजाविसर्गस्य च पारिमाण्यं वापीसहस्राणि बहूनि दैत्य ॥
वाप्यः पुनर्योजनविस्तृतास्ताः क्रोशं च गंभीरतयाऽवगाढाः।
आयामतः पंचशताश्च सर्वाः प्रत्येकशो योजनतः प्रवृद्धाः॥
वाप्या जलं क्षिप्यति बालकोट्या त्वह्ना सकृच्चाप्यथ न द्वितीयम्।
तासां क्षये विद्धि परं विसर्गं संहारमेकं च तथा प्रजानाम्॥

—महा० शा० पर्व। अ २८०। श्लो ३०-३२

सनत्कुमार वृत्र को कहते हैं, "हे दैत्य! प्रजाविसर्ग का परिमाण हजारों बावड़ी (तालाब) जितना होता है। यह बावड़ी एक योजन जितनी चौड़ी, एक कोश जितनी गहरी तथा पाँच सौ योजन जितनी लम्बी है तथा उत्तरोत्तर एक दूसरी से एक-एक योजन बड़ी है। अब यदि एक केशाग्र (बाल के किनारे) से एक बावड़ी के जल को कोई दिन-भर में एक ही बार उलीचे, दूसरी बार नहीं तो इस प्रकार उलीचने से उन सारी बावड़ियों का जल जितने समय में समाप्त हो सकता है, उतने ही समय में प्राणियों की सृष्टि और संहार के क्रम की समाप्ति हो सकती है।"

समय की यह कल्पना जैनों के व्यवहार पल्योपम समय से मिलती-जुलती है।

जैन दर्शन के अनुसार परम कृष्णलेश्या वाले सप्तम पृथ्वी के नारकी जीव की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम की होती है। महाभारत के अनुसार कृष्णवर्णवाले जीव अनेक प्रजाविसर्ग काल तक नरकवासी होते हैं।

कृष्णस्य वर्णस्य गतिर्निकृष्टा स सज्जते नरके पच्यमानः।
स्थानं तथा दुर्गतिभिस्तु तस्य प्रजाविसर्गान् सुबहून् वदन्ति॥

—महा० शा० पर्व। अ २८०। श्लो ३७

कृष्णवर्ण की गति निकृष्ट होती है और वह अनेकों प्रजाविसर्ग (कल्प) काल तक नरक भोगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·९८·२ अंगुत्तरनिकाय में :—

·९८·२·१—पूरणकाश्यप द्वारा प्रतिपादित :—

भारत की अन्य प्राचीन श्रमण परम्पराओं में भी 'जाति' नाम से लेश्या से मिलती-जुलती मान्यताओं का वर्णन है। पूरणकाश्यप के अक्रियावाद तथा मक्खलि गोशालक के संसार-विशुद्धिवाद में भी छः जीव भेदों का वर्णन हैं।

एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"पूरणेन, भंते, कस्सपेन छलभिजातियो पञ्ञत्ता—तण्हाभिजाति पञ्ञत्ता, नीलाभिजाति पञ्ञत्ता, लोहिताभिजाति पञ्ञत्ता, हलिद्दाभिजाति पञ्ञत्ता, सुक्काभिजाति पञ्ञत्ता, परमसुक्काभिजाति पञ्ञत्ता।

"तत्रिदं, भन्ते, पूरणेन कस्सपेन तण्हाभिजाति पञ्ञत्ता, ओरब्भिका सूकरिका साकुणिका मागविका लुद्दा मच्छघातका चोरा चोरघातका बन्धनागारिका ये वा पनञ्ञे पि केचि कुरूरकम्मन्ता।" "तत्रिदं, भन्ते, पूरणेन कस्सपेन नीलाभिजाति पञ्ञत्ता, भिक्खू कण्टकवुत्तिका ये वा पनञ्ञे पि केचि कम्मवादा किरियवादा।" "तत्रिदं, भन्ते, पूरणेन कस्सपेन लोहिताभिजाति पञ्ञत्ता, निगण्ठा एकसाटका।" "तत्रिदं, भन्ते, पूरणेन कस्सपेन हलिद्दाभिजाति पञ्ञत्ता, गिही ओदातवसना अचेलकसावका।" "तत्रिदं, भंते, पूरणेन कस्सपेन सुक्काभिजाति पञ्ञता, आजीवका आजीवकिनियो।" "तत्रिदं, भंते, पूरणेन कस्सपेन परमसुक्काभिजाति पञ्ञता, नन्दो वच्छो किसो सङ्किच्चो मक्खलि गोसालो। पूरणेन, भन्ते, कस्सपेन इमा छलभिजातियो पञ्ञत्ता" त्ति।

—अंगुत्तरनिकाय। ६ महावग्गो। ३ छलभिजातिसुत्तं।

आनन्द भगवान् बुद्ध को पूछते हैं—"भदन्त! पूरणकाश्यप ने कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, शुक्ल तथा परम शुक्ल वर्ण ऐसी छः अभिजातियाँ कही हैं। खाटकी (खटिक), पारधी इत्यादि मनुष्य का कृष्ण जाति में समावेश होता है। भिक्षुक आदि कर्मवादी मनुष्यों का नील जाति में, एक वस्त्र रखनेवाले निर्ग्रन्थों का लोहित जाति में, सफेद वस्त्र धारण करने वाले अचेलक श्रावकों का हारिद्र जाति में, आजीवक साधु तथा साध्वियों का शुक्ल जाति में तथा नन्द, वच्छ, किस, संकिच्च और मक्खली गोशालक का परम शुक्ल जाति में समावेश होता है।"

·९८·२·२ भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित छः अभिजातियाँ :—

"अहं खो पनानन्द, छलभिजातियो पञ्ञापेमि। तं सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—"कतमा चानन्द, छलभिजातियो? इधानन्द, एकच्चो कण्हाभिजातियो समानो कण्हं धम्मं अभिजायति। इध पनानन्द, एकच्चो कण्हाभिजातियो समानो सुक्कं धम्मं अभिजायति। इध पनानन्द, एकच्चो कण्हाभिजातियो समानो अकण्हं असुक्कं निब्बानं अभिजायति। इध पनानन्द, एकच्चो सुक्काभिजातियो समानो कण्हं धम्मं अभिजायति। इध पनानन्द, एकच्चो सुक्काभिजातियो समानो सुक्कं धम्मं अभिजायति। इध पनानन्द, एकच्चो सुक्काभिजातियो समानो अकण्हं असुक्कं निब्बानं अभिजायति।

—अंगुत्तरनिकाय। ६ महावग्गो। ३ छलाभिजाति सुत्तं।

भगवान बुद्ध भी वर्ण की अपेक्षा से छः अभिजातियाँ बतलाते हैं किन्तु कृष्ण और शुक्ल वर्ण के आधार पर। यथा, (१) कृष्ण अभिजाति कृष्ण धर्म करने वाली, (२) कृष्ण अभिजाति शुक्ल धर्म करने वाली, (३) कृष्ण अभिजाति अकृष्ण-अशुक्ल निर्वाण धर्म करने वाली, (४) शुक्ल अभिजाति कृष्ण धर्म करने वाली, (५) शुक्ल अभिजाति शुक्ल धर्म करने वाली तथा (६) शुक्ल अभिजाति अकृष्ण-अशुक्ल निर्वाण धर्म करने वाली।

·९८·३ पातंजल योगदर्शन में :—

योगी के कर्म तथा दूसरों का चित्त कृष्ण, अशुक्ल-अकृष्ण तथा शुक्ल ऐसा त्रिविध प्रकार का होता है, ऐसा पातंजल योगदर्शन में वर्णित है :—

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषां।

—पायो० पाद ४। सू ७

यह त्रिविध वर्ण षड्विध लेश्या, वर्ण अथवा जाति का संक्षिप्त रूपान्तर मालूम होता है।

·९९ लेश्या सम्बन्धी फुटकर पाठ :—

·९९·१ भिक्षु और लेश्या :—

गुत्तो वईए य समाहिपत्तो, लेसं समाहट्टु परिव्वएज्जा।

—सूय० श्रु १। अ १०। गा १५। पृ० १२५

भिक्षु वचन-गुप्ति तथा समाधि को प्राप्त होकर लेश्या (परिणामों) को समाहित करके संयम में विहरे।

तम्हा एयासि लेसाणं, अणुभावे वियाणिया।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थाओऽहिट्ठिए मुणी॥

—उत्त० अ ३४। गा ६१। पृ० १०४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेश्याओं के अनुभावों को जानकर संयमी मुनि अप्रशस्त लेश्याओं को छोड़कर प्रशस्त लेश्या में अवस्थित हो—विचरे।

लेसासु छसु काएसु, छक्के आहारकारणे।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले॥

—उत्त० अ ३१। गा ८। पृ० १०३८

जो साधु छः लेश्या, छः काय तथा आहार करने के छः कारणों में सदा सावधानी बरतता है वह भव भ्रमण नहीं करता। साधु को छ लेश्याओं में कैसी सावधानी बरतनी चाहिए—यह एक विचारणीय विषय है।

·९९·२ देवता ओर उनकी दिव्य लेश्या :—

××× दिव्वेणं वन्नेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढिए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा ×××।

—पण्ण० प २। सू २८। पृ० २९९

दिव्य वर्ण आदि के साथ देवताओं की लेश्या भी दिव्य होती है तथा दसों दिशाओं में उद्द्योतमान यावत् प्रभासमान होती है। ऐसा पाठ प्रज्ञापना पद २ में अनेक स्थलों पर है। टीकाकार ने दिव्य लेश्या का अर्थ देह तथा वर्ण की सुन्दरता रूप "लेश्या—देहवर्ण-सुन्दरतया"—किया है।

ऐसा पाठ देवताओं के वर्णन में अनेक जगह है।

·९९·३ नारकी और लेश्या परिणाम :—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं पोग्गलपरिणामं पच्चणुभवमाणा विहरंति? गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं, एवं जाव अहेसत्तमाए [एवं णेयव्वं]।

—जीवा० प्रति ३। उ ३। सू ९५। पृ० १४५-१४६

पोग्गलपरिणामे वेयणा य लेसा य नाम गोए य।
अरई भए य सोगे खुहापिवासा य वाही य॥
उस्सासे अणुतावे कोहे माणे य माया लोहे य।
चत्तारि य सण्णाओ नेरइयाणं तु परिणामे॥

—जीवा० प्रति ३। उ ३। सू ९५। टीका। पृ० १४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारकियों का लेश्या परिणाम अनिष्टकर, अकंतकर, अप्रीतिकर, अमनोज्ञ तथा अनभावना होता है। मूल में पुद्गल-परिणाम का पाठ है। टीकाकार ने उपर्युक्त संग्रहणीय गाथा देकर नारकी के अन्यान्य परिणामों को भी इसी प्रकार जानने को कहा है। अर्थात् पुद्गल-परिणाम की तरह लेश्या आदि परिणाम भी अनिष्टकर यावत् अनभावने होते हैं।

'९६'४ निक्षिप्त तेजोलेश्या के पुद्गल अचित्त होते हैं :—

कुद्धस्स अणगारस्स तेयलेस्सा निसट्ठा समाणी दूरं गता, दूरं निपतइ, देसं गता, देसं निपतइ, जहिं जहिं च णं सा निपतइ, तहिं तहिं च णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, जाव पभासेंति।

—भग० श ७। उ १०। प्र ११। पृ० ५३०

क्रोधित अणगार— साधु द्वारा निक्षिप्त तेजोलेश्या, दूर या निकट, जहाँ-जहाँ जाकर गिरती है, वहाँ-वहाँ तेजोलेश्या के अचित्त पुद्गल अवभासित यावत् प्रभासित होते हैं।

'९६'५ परिहारविशुद्ध चारित्री और लेश्या :—

लेश्याद्वारे—तेजःप्रभृतिकासूत्तरासु तिसृषु विशुद्धासु लेश्यासु परिहारविशुद्धिकं कल्पं प्रतिपद्यते, पूर्वप्रतिपन्नः पुनः सर्वासु अपि कथंचिद् भवति, तत्रापीतरास्व-विशुद्धलेश्यासु नात्यन्तसंक्लिष्टासु वर्तते, तथाभूतासु वर्तमानो(ऽपि) न प्रभूत-कालमवतिष्ठते, किंतु स्तोकं, यतः स्ववीर्यवशात् झटित्येव ताभ्यो व्यावर्तते, अथ प्रथमत एव कस्मात् प्रवर्तते ? उच्यते, कर्मवशात्, उक्तं च—

"लेसासु विसुद्धासु पडिवज्जइ तीसु न उण सेसासु।
पुव्वपडिवन्नओ पुण होज्जा सव्वासु वि कहंचि॥
णऽच्चंतसंकिलिट्ठासु थोवं कालं स हंदि इयरासु।
चित्ता कम्माण गई तहा वि विरियं (विवरीयं) फलं देइ॥"

—पण्ण० प १। सू ७६। टीका

तेजोलेश्या प्रभृति पीछे की तीन विशुद्ध लेश्या में परिहारविशुद्धिक कल्प का स्वीकरण होता है। पूर्वप्रतिपन्न परिहारविशुद्धि को किसीने पूर्व में प्राप्त किया हो तो उसका सब लेश्याओं में कथंचित् रहना हो सकता है; पर वह अत्यन्त संक्लिष्ट और अविशुद्ध लेश्या में नहीं रहता है। यदि वैसी लेश्या में रहे भी तो अधिक लम्बे समय तक नहीं रहता है, थोड़े काल तक रहता है; क्योंकि निजकी सामर्थ्य से वह शीघ्र ही उससे निवृत्त हो जाता है। प्रश्न—तो पहले उस अविशुद्ध लेश्या में प्रवर्तन करता ही क्यों है ? कर्म के वशीभूत होकर करता है। कहा भी है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"तीन विशुद्ध लेश्या में कल्प को स्वीकार करता है। लेकिन तीन अविशुद्ध लेश्या में कल्प को स्वीकार नहीं करता है। यदि कल्प को पूर्व में स्वीकार किया हुआ हो तो सर्व लेश्याओं में कथंचित् प्रवर्तन करता है लेकिन अत्यन्त संक्लिष्ट अविशुद्ध लेश्या में प्रवर्तन नहीं करता है। अविशुद्ध लेश्या में प्रवर्तन करता है तो थोड़े समय के लिए करता है; क्योंकि कर्म की गति विचित्र होती है। फिर भी वीर्य—सामर्थ्य फल देता है।"

'९९'६ लेसणावंध :—

टीकाकारों ने 'लिश्यते—शिलष्यते इति लेश्या' इस प्रकार लेश्या की व्याख्या की है। भगवतीसूत्र में 'अल्लियावणबंध' के भेदों में 'लेसणाबंध' एक भेद बताया गया है। आत्मप्रदेशों के साथ लेश्याद्रव्यों का किस प्रकार का बंध होता है सम्भवतः इसकी भावना 'लेसणाबंध' से हो सके।

से किं तं लेसणाबंधे ? लेसणाबंधे जन्नं कुट्टाणं कोट्टिमाणं खंभाणं पासायणं कट्ठाणं चम्माणं घडाणं पडाणं कडाणं छुहाचिक्खिल्लसिलेसलक्खमहुसित्थमाइएहिं लेसणएहिं बंधे समुप्पज्जइ जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं, सेत्तं लेसणा-बंधे।

—भग० श ८। उ ९। प्र १३। पृ० ५६१-६२

टीका—श्लेषणा—श्लथद्रव्येण द्रव्ययोः सम्बन्धनं तद्रूपो यो बन्धः स तथा।

शिखर का, कुट्टिम का, स्तम्भ का, प्रासाद का, लकड़ी का, चमड़े का, घड़े का, वस्त्र का, कड़ी का, खड़िया का, पंक का श्लेष—वज्रलेप का, लाख का, मोम आदि द्रव्यों का या इन द्रव्यों द्वारा श्लेषणाबंध होता है। यह बंध जघन्य में अंतर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट में संख्यात काल तक स्थायी रहता है।

'९९'७ नारकी और देवता की द्रव्य-लेश्या :—

से नूणं भंते ! कण्हलेसा नीललेसं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ ? हंता गोयमा ! कण्हलेसा नीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए, णो तावन्नत्ताए, णो तागंधत्ताए, णो तारसत्ताए, णो ताफासत्ताए भुज्जो २ परिणमइ। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! आगारभावमायाए वा से सिया, पलिभाग-भावमायाए वा से सिया। कण्हलेस्सा णं सा, णो खलु नीललेसा तत्थ गया ओसक्कइ उस्सक्कइ वा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—'कण्हलेसा नीललेसं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ। से नूणं भंते ! नीललेसा काऊलेसं पप्प णो तारूवत्ताए जाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भुज्जो भुज्जो परिणमइ ? हंता गोयमा ! नीललेसा काऊलेसं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ— 'नीललेसा काऊलेसं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ ? गोयमा ! आगारभावमायाए वा सिया, पलिभागभावमायाए वा सिया। नीललेसा णं सा, णो खलु काऊलेसा तत्थगया ओसक्कइ उस्सक्कइ वा, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ - 'नीललेसा काऊलेसं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो २ परिणमइ। एवं काऊलेसा तेऊलेसं पप्प, तेऊलेसा पम्हलेसं पप्प, पम्हलेसा सुक्कलेसं पप्प। से नूणं भंते ! सुक्कलेसा पम्हलेसं पप्प, णो तारूवत्ताए जाव परिणमइ ? हंता गोयमा ! सुक्कलेसा तं चेव। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—'सुक्कलेसा जाव णो परिणमइ ? गोयमा ! आगारभावमायाए वा जाव सुक्कलेस्सा णं सा, णो खलु सा पम्हलेसा, तत्थगया ओसक्कइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—'जाव णो परिणमइ'।

—पण्ण० प १७। उ ५। सू ५५। पृ० ४५१

उपरोक्त सूत्र पर टीकाकार ने इस प्रकार विवेचन किया है :—

'से नूणं भंते !' इत्यादि, इह तिर्यङ्मनुष्यविषयं सूत्रमनन्तरमुक्तं, इदं तु देव-नैरयिक विषयमवसेयं, देवनैरयिका हि पूर्वभवगतचरमान्तर्मुहूर्त्तादारभ्य यावत् परभवगतमाद्यमन्तर्मुहूर्त्तं तावदवस्थितलेश्याकाः ततोऽमीषां कृष्णादिलेश्याद्रव्याणां परस्परसम्पर्केऽपि न परिणम्यपरिणामकभावो घटते ततः सम्यगधिगमाय प्रश्नयति— 'से नूणं भंते !' इत्यादि, से शब्दोऽथशब्दार्थः, स च प्रश्ने, अथ नूनं - निश्चितं भदंत ! कृष्णलेश्या - कृष्णलेश्याद्रव्याणि नीललेश्या - नीललेश्याद्रव्याणि प्राप्य, प्राप्तिरिह प्रत्यासन्नत्वमात्रं गृह्यते न तु परिणम्यपरिणामकभावेनान्योऽन्यसंश्लेषः, तद्रूपतया -- तदेव—नीललेश्याद्रव्यगतं रूपं— स्वभावो यस्य कृष्णलेश्यास्वरूपस्य तत्तद्रूपं तद्भावस्त-द्रूपता तया, एतदेव व्याचष्टे— न तद्वर्णतया न तद्गन्धतया न तद्रसतया न तत्स्पर्श-तया भूयो भूयः परिणमते, भगवानाह—हन्तेत्यादि, हन्त गौतम ! कृष्णलेश्येत्यादि, तदेव ननु यदि न परिणमते तर्हि कथं सप्तमनरकपृथिव्यामपि सम्यक्त्वलाभः, स हि तेजोलेश्यादिपरिणामे भवति सप्तमनरकपृथिव्यां च कृष्णलेश्येति, कथं चैतत् वाक्यं घटते ? 'भावपरावत्तीए पुण सुरनेरइयाणंपि छल्लेसा' इति [भावपरावृत्तेः पुनः सुरनैरयिकाणामपि षड् लेश्याः] लेश्यान्तरद्रव्यसम्पर्कतस्तद्रूपतया परिणामासंभवेन भावपरावृत्तेरेवायोगात्, अत एव तद्विषये प्रश्ननिर्वचनसूत्रे आह— 'से केणट्ठेणं भंते !' इत्यादि, तत्र प्रश्नसूत्रं सुगमं निर्वचनसूत्रं—आकारः-तच्छायामात्रं आकारस्य भावः— सत्ता आकारभावः स एव मात्रा आकारभावमात्रा तयाऽऽकारभावमात्रया मात्रा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द आकारभावातिरिक्तपरिणामान्तरप्रतिपत्तिव्युदासार्थः, 'से' इति सा कृष्णलेश्या नीललेश्यारूपतया स्यात् यदिवा प्रतिभागः—प्रतिबिम्बमादर्शादाविव विशिष्टः प्रतिबिम्ब्यवस्तुगत आकारः प्रतिभाग एव प्रतिभागमात्रा तया अत्रापि मात्राशब्दः प्रतिबिम्बातिरिक्त-परिणामान्तरव्युदासार्थः स्यात् कृष्णलेश्या नीललेश्यारूपतया, परमार्थतः पुनः कृष्णलेश्यैव नो खलु नीललेश्या सा, स्वस्वरूपापरित्यागात्, न खल्वादर्शादयो जपाकुसुमादिसन्निधानतस्तत्प्रतिबिम्बमात्रामादधाना नादर्शादय इति परिभावनीयमेतत्, केवलं सा कृष्णलेश्या तत्र—स्वस्वरूपे गता—अवस्थिता सती उत्ष्वष्कते तदाकार भावमात्रधारणतस्तत्प्रतिबिम्बमात्रधारणतो वोत्सर्प्पतीत्यर्थः, कृष्णलेश्यातो हि नीललेश्या विशुद्धा ततस्तदाकारभावं तत्प्रतिबिम्बमात्रं वा दधाना सती मनाक् विशुद्धा भवतीत्युत्सर्प्पतीति व्यपदिश्यते, उपसंहारवाक्यमाह—'से एएणट्ठे ण'मित्यादि, सुगमं। एवं नीललेश्यायाः कापोतलेश्यामधिकृत्य कापोतलेश्यायास्तेजोलेश्यामधिकृत्य तेजोलेश्यायाः पद्मलेश्यामधिकृत्य पद्मलेश्यायाः शुक्ललेश्यामधिकृत्य सूत्राणि भावनीयानि।

सम्प्रति पद्मलेश्यामधिकृत्य शुक्ललेश्याविषयं सूत्रमाह—'से नूणं भंते ! सुक्कलेसा पम्हलेसं पप्प' इत्यादि, एतच्च प्राग्वद् भावनीयं, नवरं शुक्ललेश्यापेक्षया पद्मलेश्या हीनपरिणामा ततः शुक्ललेश्या पद्मलेश्याया आकारभावं तत्प्रतिबिम्बमात्रं वा भजन्ती मनागविशुद्धा भवति ततोऽवष्वष्कते इति व्यपदिश्यते, एवं तेजः कापोतनीलकृष्णलेश्याविषयाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि, ततः पद्मलेश्यामधिकृत्य तेजः कापोतनीलकृष्णलेश्याविषयाणि तेजोलेश्यामधिकृत्य कापोतनीलकृष्णविषयाणि कापोतलेश्यामधिकृत्य नीलकृष्णलेश्याविषये नीललेश्यामधिकृत्य कृष्णलेश्याविषयमिति, अमूनि च सूत्राणि साक्षात् पुस्तकेषु न दृश्यन्ते केवलमर्थतः प्रतिपत्तव्यानि, तथा मूलटीकाकारेण व्याख्यानात्, तदेवं यद्यपि देवनैरयिकाणामवस्थितानि लेश्याद्रव्याणि तथापि तत्तदुपादीयमानलेश्यान्तरद्रव्यसम्पर्कतः तान्यपि तदाकारभावमात्रां भजन्ते इति भावपरावृत्तियोगतः षडपि लेश्या घटन्ते, ततः सप्तमनरकपृथिव्यामपि सम्यक्त्वलाभ इति न कश्चिद्दोषः।

यह सूत्र देव तथा नारकी के सम्बन्ध में जानना क्योंकि देव तथा नारकी पूर्वभव के शेष अन्तर्मुहूर्त्त से आरम्भ करके परभव के प्रथम अन्तर्मुहूर्त्त तक अवस्थित लेश्यावाले होते हैं। इससे इनके कृष्णादिलेश्या द्रव्यों का परस्पर में सम्बन्ध होते हुए भी परिणमन—परिणामक भाव नहीं घटता है, इसलिए यथार्थ परिज्ञान के लिए प्रश्न किया गया है। हे भगवन् ! क्या यह निश्चित है कि कृष्णलेश्या के द्रव्य नीललेश्या के द्रव्यों को प्राप्त करके [यहाँ प्राप्ति का अर्थ समीप मात्र है—लेकिन परिणमन—परिणामक भाव द्वारा परस्पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्ध रूप अर्थ नहीं है] 'तद्रूपतया'—'नीललेश्या के रूप में, 'तद्वर्णतया' नील-लेश्या के वर्ण में, 'तद्गन्धतया' नीललेश्या की गन्ध में, 'तद्रसतया' नीललेश्या के रस में, 'तद्स्पर्शतया' नीललेश्या के स्पर्श में, बारम्बार परिणमन नहीं करते हैं।

भगवान् उत्तर देते हैं—हे गौतम ! 'अवश्य कृष्णलेश्या नीललेश्या में परिणमन नहीं करती है।' अब प्रश्न उठता है कि सातवीं नरक पृथ्वी में तत्र सम्यक्त्व की प्राप्ति कैसे होती है ? क्योंकि जब तेजोलेश्यादि शुभ लेश्या के परिणाम होते हैं, तब सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है तथा सातवीं नरक पृथ्वी में कृष्णलेश्या ही होती है। तथा 'भाव की परावृत्ति होने से देव तथा नारकियों के भी छः लेश्याएँ होती हैं', यह वाक्य कैसे घटेगा ? क्योंकि अन्य लेश्या द्रव्यों के सम्बन्ध से यदि तद्रूप परिणमन असंभव है तो भाव की परावृत्ति नहीं हो सकती। अतः गौतम फिर से प्रश्न करते हैं—भगवन् ! आप यह किस अर्थ में कहते हैं ? भगवान उत्तर देते हैं कि उक्त स्थिति में आकारभावमात्र—छायामात्र परिणमन होता है अथवा प्रतिभाग-प्रतिबिम्ब मात्र परिणमन होता है। वहाँ कृष्णलेश्या प्रतिबिम्ब मात्र में नीललेश्या रूप होती है। लेकिन वास्तविक रूप में तो वह कृष्णलेश्या ही है, नीललेश्या नहीं है ; क्योंकि वह स्व स्वरूप का त्याग नहीं करती है। जिस प्रकार दर्पण में जवाकुसुम आदि का प्रतिबिम्ब पड़ता है, वह दर्पण जवाकुसुम रूप नहीं होता, केवल उसमें जवाकुसुम का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। इसी प्रकार लेश्या के सम्बन्ध में जानना।

इसी प्रकार अवशेष पाठ जानने।

यह सूत्र पुस्तकों में साक्षात् नहीं मिलता, लेकिन केवल अर्थ से जाना जाता है ; क्योंकि इस रीति से मूल टीकाकार ने व्याख्या की है। इस प्रकार देव और नारकियों के लेश्या द्रव्य अवस्थित हैं। फिर भी उनकी लेश्या अन्यान्य लेश्याओं को ग्रहण करने से अथवा दूसरी-दूसरी लेश्या के द्रव्यों से सम्बन्ध होने से उस लेश्या का आकारभावमात्र धारण करती है। अतः प्रतिबिम्ब भावमात्र भाव की परावृत्ति होने से छः लेश्या घटती है ; उससे सातवीं नरक पृथ्वी में सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है—इस कथन में कोई दोष नहीं आता है।

'६६'८ चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-तारा की लेश्याएँ :—

बहिया णं भंते ! मणुस्सखेत्तस्स ते चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवा ते णं भंते ! देवा किं उड्ढोववण्णगा × × × दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा सुहलेस्सा सीयलेस्सा मन्दलेस्सा मंदायवलेस्सा चित्तंतरलेसागा कूडा इव ठाणाट्ठिता अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेसाहिं ते पदेसे सव्वओ समंता ओभासेंति उज्जोवेंति तवंति पभासेंति।

—जीवा॰ प्रति ३ । उ २ । सू १७६ । पृ॰ २१६-२२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभलेश्याः, एतच्च विशेषणं चन्द्रमसः प्रति, तेन नातिशीततेजसः किन्तु सुखोत्पादहेतुपरमलेश्याका इत्यर्थः, मन्दलेश्या, एतच्च विशेषणं सूर्यान् प्रति, तथा च एतदेव व्याचष्टे --'मन्दातपलेश्याः' मन्दा नात्युष्णस्वभावा आतपरूपा लेश्या-रश्मि संघातो येषां ते तथा, पुनः कथम्भूताश्चन्द्रादित्याः ? इत्याह--'चित्रान्तरलेश्याः' चित्रमन्तरं लेश्या च येषां ते तथा, भावार्थश्चास्य पदस्य प्रागेवोपदर्शितः, ['चित्रान्तर-लेश्याकाः' चित्रमन्तरं लेश्या च प्रकाशरूपा येषां ते तथा, तत्र चित्रमन्तरं चन्द्राणां सूर्यान्तरितत्वात् सूर्याणां चन्द्रान्तरितत्वात्, चित्रा लेश्या चन्द्रमसां शीतरश्मित्वात् सूर्याणामुष्णरश्मित्वात्'—सू १७७ टीका] त इत्थम्भूताश्चन्द्रादित्याः परस्परम-वगाढाभिर्लेश्याभिः, तथाहि--चन्द्रमसां सूर्याणां च प्रत्येकं लेश्या योजनशतसहस्र-प्रमाणविस्तारा, चंद्रसूर्याणां च सूचीपङ्क्त्या व्यवस्थितानां परस्परमन्तरं पंचाशद् योजनसहस्राणि, ततश्चन्द्रप्रभासम्मिश्राः सूर्यप्रभाः सूर्यप्रभासम्मिश्राश्च चन्द्रप्रभाः इतीत्थं परस्परमवगाढाभिर्लेश्याभिः। 'कूटानीव'—पर्वतोपरिव्यवस्थितशिखराणीव 'स्थानस्थिताः सदैवैकत्र स्थाने स्थितास्तान् तान् प्रदेशान् स्वस्वप्रत्यासन्नान् उद्द्योतयन्ति अवभासयन्ति तापयन्ति प्रकाशयन्ति।

—जीवा० प्रति ३ । उ २ । सू १७६ टीका

मनुष्य क्षेत्र के वाहर जो चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-तारा हैं वे ज्योतिषी देव ऊर्ध्वोत्पन्न हैं यावत् दिव्य भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरते हैं यावत् शुभलेश्या, शीतलेश्या, मन्द-लेश्या, मन्दातपलेश्या तथा चित्रान्तरलेश्या वाले हैं। वे शीर्ष स्थान में स्थित रहते हैं तथा उनकी लेश्याएँ परस्पर में अवगाहित होकर मनुष्य क्षेत्र के वाहर के प्रदेश को सर्वतः चारों तरफ से अवभासित, उद्योतित, आतप्त तथा प्रभासित करती हैं।

लेश्या विशेषणों सहित ज्योतिषी देवों के सम्वन्ध में ऐसे पाठ अनेक स्थलों पर मिलते हैं। हमने उनकी लेश्याओं की भिन्नता तथा विशेषताओं को दिखाने के लिए उनमें से एक पाठ ग्रहण किया है।

टीकाकार के अनुसार चन्द्रमा की लेश्या को शुभलेश्या कहा गया है। टीकाकार ने अन्यत्र 'सुहलेस्सा' का सुखलेश्या अर्थात् सुखदायक लेश्या अर्थ भी किया है। यह शुभलेश्या न अधिक शीतल होती है, न अधिक तप्त। सुख उत्पन्न करने वाली वह परम-लेश्या होती है।

'सीयलेस्सा' का टीकाकार ने कोई अर्थ नहीं किया है।

सूर्य की लेश्या को मन्द विशेषण दिया जाता है। अतः सूर्य की लेश्या को मन्दलेश्या कहा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो लेश्या मन्द तो है, अति उष्ण स्वभाववाली आतपरूपा नहीं है उसे मन्दातप लेश्या कहा गया है। इस लेश्या में रश्मियों का संघात होता है।

चित्रान्तर लेश्या प्रकाशरूपा होती है। चन्द्रमा की लेश्या सूर्यान्तर तथा सूर्य की लेश्या चन्द्रमान्तर होकर जो लेश्या बनती है वह चित्रान्तर लेश्या कहलाती है। चित्रालेश्या चन्द्रमा की शीत रश्मि तथा सूर्य की उष्ण रश्मि के मिश्रण से बनती है। चन्द्र तथा सूर्य की लेश्याएँ प्रत्येक लाख योजन विस्तृत होती हैं तथा ऋजु (सीधी) श्रेणी में व्यवस्थित एक दूसरे में पचास हजार योजन परस्पर में अवगाहित होती हैं। वहाँ चन्द्र की प्रभा सूर्य की प्रभा से मिश्रित होती है तथा सूर्य की प्रभा चन्द्र की प्रभा से मिश्रित होती है। इसीलिए उनकी लेश्या परस्पर में अवगाहित होती है ऐसा कहा गया है। और इस प्रकार शीर्ष स्थान में सदैव स्थित चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-तारा की लेश्याएँ परस्पर में अवगाहित होकर उस मनुष्य क्षेत्र के बाहर अपने-अपने निकटवर्ती प्रदेश को उद्द्योतित, अवभासित, आतप्त तथा प्रकाशित करती हैं।

'९९'९ गर्भ में मरनेवाले जीव की गति में लेश्या का योग :—

'९९'९'१ नरकगति में :—

जीवे णं भंते! गब्भगए समाणे नेरइएसु उववज्जेज्जा? गोयमा! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा। से केणट्ठेणं? गोयमा! से णं सन्नि-पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वीरियलद्धीए × × × संगामं संगामेइ। से णं जीवे अत्थकामए, रज्जकामए × × × कामपिवासिए; तच्चित्ते, तम्मणे, तल्लेसे तदज्झवसिए × × × एयंसि णं अंतरंसि कालं करेज्ज नेरइएसु उववज्जइ।

—भग० श० १। उ ७। प्र २५४-५५। पृ० ४०६-७

सर्व पर्याप्तियों में पूर्णता को प्राप्त गर्भस्थ संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव वीर्यलब्धि आदि द्वारा चतुरंगिणी सेना की विकुर्वणा करके शत्रु की सेना के साथ संग्राम करता हुआ, धन का कामी, राज्य का कामी यावत् काम का पिपासु जीव; उस तरह के चित्तवाला, मन वाला, लेश्या वाला, अध्यवसाय वाला होकर वह गर्भस्थ जीव यदि उस काल में मरण को प्राप्त हो तो नरक में उत्पन्न होता है।

गर्भस्थ जीव गर्भ में मरकर यदि नरक में उत्पन्न हो तो मरणकाल में उस जीव के लेश्या परिणाम भी तदुपयुक्त होते हैं।

'९९'९'२ देवगति में :—

जीवे णं भंते! गब्भगए समाणे देवलोगेसु उववज्जेज्जा? गोयमा! अत्थेगइए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा। से केणट्ठेणं ? गोयमा ! से णं सन्नि-पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए तहारूवस्स समणस्स वा, माहणस्स वा अंतिए ××× तिव्वधम्माणुरागरत्ते, से णं जीवे धम्मकामए ××× मोक्खकामए ××× पुण्णसग्गमोक्खपिवासिए तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए ××× एयंसि णं अंतरंसि कालं करेज्ज देवलोगेसु उववज्जइ।

—भग० श १। उ ७। प्र २५६-५७। पृ० ४०७

सर्व पर्याप्तियों में पूर्णता को प्राप्त गर्भस्थ संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तथारूप श्रमण-माहण के पास आर्यधर्म के एक भी वचन को सुनकर आदि, धर्म का कामी होकर यावत् मोक्ष का पिपासु होकर, उस तरह के चित्तवाला, मनवाला, लेश्यावाला, अध्यवसायवाला होकर गर्भस्थ जीव यदि उस काल में मरण को प्राप्त हो तो वह देवलोक में उत्पन्न होता है।

गर्भस्थ जीव गर्भ में मरकर यदि देवलोक में उत्पन्न हो तो मरणकाल में उस जीव के लेश्या परिणाम भी तदुपयुक्त होते हैं।

'९६'१० लेश्या में विचरण करता हुआ जीव और जीवात्मा :—

अन्नउत्थियाणं भंते ! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति—एवं खलु पाणाइवाए, मुसावाए, जाव मिच्छादंसणसल्ले वट्टमाणस्स अन्ने जीवे अन्ने जीवाया, पाणाइवाय वेरमणे जाव परिग्गहवेरमणे, कोहविवेगे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे वट्टमाणस्स अन्ने जीवे अन्ने जीवाया ; उप्पत्तियाए जाव परिणामियाए वट्टमाणस्स अन्ने जीवे अन्ने जीवाया ; उग्गहे ईहा अवाए धारणाए वट्टमाणस्स जाव जीवाया ; उट्ठाणे जाव परक्कमे वट्टमाणस्स जाव जीवाया ; नेरइयत्ते, तिरिक्खमणुस्सदेवत्ते वट्टमाणस्स जाव जीवाया ; नाणावरणिज्जे जाव अंतराइए वट्टमाणस्स जाव जीवाया, एवं कण्हलेस्साए जाव सुक्कलेस्साए ; सम्मदिट्ठीए ३, एवं चक्खुदंसणे ४, आभिणिबोहियनाणे ५, मइ-अन्नाणे ३, आहारसन्नाए ४ एवं ओरालियसरीरे ५ एवं मणजोए ३ सागारोवओगे अणागारोवओगे वट्टमाणस्स अण्णे जीवे अण्णे जीवाया ; से कहमेयं भंते ! एवं ? गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति, जाव मिच्छं ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—एवं खलु पाणाइवाए जाव मिच्छादंसण-सल्ले वट्टमाणस्स सच्चेव जीवे सच्चेव जीवाया जाव अणागारोवओगे वट्टमाणस्स सच्चेव जीवे सच्चेव जीवाया।

—भग० श० १७। उ २। प्र ६। पृ० ७५६

प्राणातिपातादि १८ पापों में, प्राणातिपातविरमणादि १८ पाप-विरमणों में, औत्पातिकी आदि ४ बुद्धियों में, अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणा में, उत्थान यावत् पुरुषाकार पराक्रम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में, नैरयिकादि ४ गतियों में, ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों में, कृष्णादि छओं लेश्याओं में, सम्यग्दृष्टि आदि तीन दृष्टियों में, चक्षुदर्शनादि चार दर्शनों में, आभिनिबोधिकज्ञानादि ५ ज्ञानों में, मतिअज्ञान आदि ३ अज्ञानों में, आहारादि ४ संज्ञाओं में, औदारिकादि ५ शरीरों में, मनोयोग आदि ३ योगों में, साकारोपयोग, अनाकारोपयोग में वर्तता हुआ जीव तथा जीवात्मा एक ही है—भिन्न-भिन्न नहीं है।

इसके विपरीत अन्यतीर्थियों की जो प्ररूपणा है उसका भगवान् ने यहाँ निराकरण किया है।

प्राणातिपात आदि भाव-विभावों, छओं लेश्याओं यावत् अनाकार उपयोग में विचरण करता हुआ जीव अन्य है, जीवात्मा अन्य है—अन्य तीर्थियों का यह कथन गलत है। भगवान् महावीर कहते हैं कि वास्तविक सत्य यह है कि प्राणातिपात यावत् छओं लेश्याओं यावत् अनाकार उपयोग आदि भाव-विभावों में विचरण करता हुआ जीव वही है, जीवात्मा वही है। दोनों अभिन्न हैं।

सांख्यादि मतों के अनुसार भाव-विभावों में विचरण करता हुआ जीव (प्रकृति) अन्य है तथा जीवात्मा (पुरुष) अन्य है—इसका निराकरण करते हुए भगवान् कहते हैं कि दोनों अन्य-अन्य नहीं हैं।

·९९·११ (सलेशी) रूपी जीव का अरूपत्व में तथा (अलेशी) अरूपी जीव का रूपत्व में विकुर्वणः—

देवे णं भंते! महिड्ढिए, जाव महेसक्खे पुव्वामेव रूवी भवित्ता पभू अरूविं विउव्वित्ता णं चिट्ठित्तए? नो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—देवेणं जाव नो पभू अरूविं विउव्वित्ता णं चिट्ठित्तए? गोयमा! अहमेयं जाणामि, अहमेयं पासामि, अहमेयं बुज्झामि, अहमेयं अभिसमन्नागच्छामि, मए एयं नायं, मए एयं दिट्ठं, मए एयं बुद्धं, मए एयं अभिसमन्नागयं—जण्णं तहागयस्स जीवस्स सरूविस्स, सकम्मस्स, सरागस्स, सवेयस्स, समोहस्स, सलेसस्स, ससरीरस्स, ताओ सरीराओ अविप्पमुक्कस्स एवं पन्नायइ, तं जहा—कालत्ते वा, जाव—सुक्किलत्ते वा, सुब्भिगंधत्ते वा, दुब्भिगंधत्ते वा, तित्ते वा, जाव—महुरत्ते वा, कक्खडत्ते वा, जाव लुक्खत्ते वा से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव चिट्ठित्तए।

—भग० श १७। उ २। प्र १०। पृ० ७५६-५७

महर्द्धिक यावत् महाक्षमतावाले देव भी रूपत्व अवस्था से अरूपी रूप (अमूर्तरूप) का निर्माण करने में समर्थ नहीं हैं; क्योंकि रूपवाला, कर्मवाला, रागवाला, वेदवाला,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहवाला, लेश्यावाला, शरीरवाला तथा शरीर से जो मुक्त नहीं हुआ हो ऐसे शरीरयुक्त देव जीव में कृष्णत्व यावत् शुक्लत्व, सुगंधत्व, दुर्गन्धत्व, तिक्तत्व यावत् मधुरत्व, कर्कशत्व यावत् रूक्षत्व होता है। इसी हेतु से देव अरूपी (अमूर्तरूप) विकुर्वण करने में असमर्थ हैं।

सच्चेव णं भंते ! से जीवे पुव्वामेव अरूवी भवित्ता पभू रूविं विउव्वित्ताणं चिट्ठित्तए ? नो इणट्ठे समट्ठे (से केणट्ठेणं) जाव चिट्ठित्तए ? गोयमा ! अहं एयं जाणामि जाव जण्णं तहागयस्स, जीवस्स अरूवस्स, अकम्मस्स, अरागस्स, अवेयस्स, अमोहस्स, अलेसस्स, असरीरस्स, ताओ सरीराओ विप्पमुक्कस्स नो एवं पन्नायइ, तंजहा—कालत्ते वा जाव—लुक्खत्ते वा, से तेणट्ठेणं जाव—चिट्ठित्तए वा।

—भग० श० १७। उ २। प्र ११। पृ० ७५७

महर्द्धिक यावत् महाक्षमतावाले देव भी यदि अरूपत्व को प्राप्त हो गये हों तो वे मूर्त्त रूप का निर्माण करने में समर्थ नहीं हैं ; क्योंकि अरूपवाला, अकर्मवाला, अवेदवाला, मोहरहित, अलेश्यावाला, शरीरवाला तथा शरीर से जो मुक्त हुआ हो—ऐसे अशरीरी जीव (देव) में कृष्णत्व यावत् शुक्लत्व, सुगंधत्व, दुर्गन्धत्व, तिक्तत्व यावत् मधुरत्व, कर्कश यावत् रूक्षत्व नहीं होता है। इस हेतु से अरूपत्व को प्राप्त जीव मूर्त्तरूप विकुर्वण करने में असमर्थ होता है।

'९६'१२ वैमानिक देवों के विमानों का वर्ण, शरीरों का वर्ण तथा लेश्या :—

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! विमाणा कइवण्णा पन्नता ? गोयमा ! पंचवण्णा पन्नत्ता, तंजहा कण्हा नीला लोहिया हालिद्दा सुक्किल्ला, सणंकुमारमाहिंदेसु चउवण्णा नीला जाव सुक्किला, बंभलोगलंतएसुवि तिवण्णा लोहिया जाव सुक्किल्ला, महासुक्कसहस्सारेसु दुवण्णा—हालिद्दा य सुक्किल्ला य ; आणयपाणयारणच्चुएसु सुक्किल्ला, गेविज्जविमाणा सुक्किल्ला अणुत्तरोववाइयविमाणा परमसुक्किल्ला वण्णेणं पन्नत्ता।

—जीवा०। प्रति ३। उ १। सू. २१३। पृ० २३७

टीका—**सौधर्मेशानयोर्भदन्त ! कल्पयोर्विमानानि कति वर्णानि प्रज्ञप्तानि ? भगवानाह गौतम ! पंच वर्णानि, तद्यथा—कृष्णानि नीलानि लोहितानि हारिद्राणि शुक्लानि, एवं शेषसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं सनत्कुमारमाहेन्द्रयोश्चतुर्वर्णानि कृष्णवर्णाभावात्, ब्रह्मलोकलान्तकयोस्त्रिवर्णानि कृष्णनीलवर्णाभावात्, महाशुक्र-**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहस्रारयोर्द्विवर्णानि कृष्णनीलहारिद्रवर्णाभावात्, आनतप्राणतारणच्युतकल्पेषु एक वर्णानि, शुक्लवर्णस्यैकस्य भावात्। ग्रैवेयकविमानानि अनुत्तरविमानानि च परम शुक्लानि।

सोहम्मीसाणेसु देवा केरिसया वण्णेणं पन्नत्ता? गोयमा! कणगत्तयरत्ताभा वण्णेणं पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु णं पउमपम्हगोरा वण्णेणं पण्णत्ता। बंभलोगे णं भंते! गोयमा! अल्लमधुगवण्णाभा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव गेवेज्जा, अणुत्तरोववाइया परमसुक्किल्ला वण्णेणं पण्णत्ता।

—जीवा०। प्रति ३। उ १। सू २१५। पृ० २३८

टीका—अधुना वर्णप्रतिपादनार्थमाह—'सोहम्मी'त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवानां शरीरकाणि कीदृशानि वर्णेन प्रज्ञप्तानि? भगवानाह—गौतम! कनकत्वगृयुक्तानि, कनकत्वगिव रक्ता आभा -छाया येषां तानि तथा वर्णेन प्रज्ञप्तानि, उत्तप्तकनकवर्णानीति भावः। एवं शेषसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं सनत्कुमारमाहेन्द्रयोर्ब्रह्मलोकेऽपि च पद्मपक्ष्मगौराणि, पद्मकेसरतुल्यावदातवर्णानीति भावः, ततः परं लान्तकादिषु यथोत्तरं शुक्लशुक्लतरशुक्लतमानि, अनुत्तरोपपातिनां परमशुक्लानि, उक्तञ्च—

कणगत्तयरत्ताभा सुरवसभा दोसु होंति कप्पेसु।
तिसु होंति पम्हगोरा तेण परं सुक्किला देवा॥

सोहम्मीसाणदेवाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! एगा तेऊलेस्सा पन्नत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु एगा पम्हलेस्सा, एवं बंभलोगे वि पम्हा, सेसेसु एक्का सुक्कलेस्सा, अणुत्तरोववाइयाणं एक्का परमसुक्कलेस्सा।

—जीवा० प्रति ३। उ १। सू २१५। पृ० २३६

टीका—सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवानां कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः? भगवानाह—गौतम! एका तेजोलेश्या, इदं प्राचुर्यमङ्गीकृत्य प्रोच्यते। यावता पुनः कथंचित्तथाविधद्रव्यसम्पर्कतोऽन्याऽपि लेश्या यथासम्भवं प्रतिपत्तव्या, सनत्कुमारमाहेन्द्रविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! एका पद्मलेश्या प्रज्ञप्ता, एवं ब्रह्मलोकेऽपि, लान्तके प्रश्नसूत्रं सुगमं, निर्वचनं—गौतम! एका शुक्ललेश्या प्रज्ञप्ता, एवं यावदनुत्तरोपपातिका देवाः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैमानिकों के विमानों के वर्णों, शरीर के वर्णों तथा लेश्या का तुलनात्मक चार्ट :—

	विमान	शरीर	लेश्या
सौधर्म	पाँचों वर्ण	तप्तकनकरक्तआभा	तेजो
ईशान	,,	,,	,,
सनत्कुमार	कृष्ण बाद चार	पद्मपद्मगौर	पद्म
माहेन्द्र	,,	,,	,,
ब्रह्मलोक	लाल-पीत-शुक्ल	'अल्ल' मधूकवर्ण	,,
लान्तक	,,	,,	शुक्ल
महाशुक्र	पीत-शुक्ल	,,	,,
सहस्रार	,,	,,	,,
आनत यावत् अच्युत	शुक्ल	,,	,,
ग्रैवेयक	,,	,,	,,
अनुत्तरौपपातिक	परम शुक्ल	परम शुक्ल	परम शुक्ल

टीकाकार ने सौधर्म तथा ईशान देवों के शरीर का वर्ण उत्तप्त कनक की रक्त आभा के समान बताया है। सनत्कुमार माहेन्द्र देवों के शरीर का वर्ण पद्मपद्मगौर अथवा पद्मकेशर तुल्य शुभ्र वर्ण कहा है। ब्रह्मलोक देवों के शरीर का वर्ण मूल पाठ में 'अल्लमधुग-वण्णाभा' है लेकिन टीकाकार ने उसे सनत्कुमार—माहेन्द्र के वर्ण की तरह, 'पद्मपद्म-गौर' ही कहा है। तथा लांतक से ग्रैवेयक तक उत्तरोत्तर शुक्ल, शुक्लतर, शुक्लतम कहा है। अनुत्तरौपपातिक देवों के शरीर का वर्ण परम शुक्ल कहा हैं। टीकाकार ने एक प्राकृत गाथा उद्धृत की है—"दो कल्पों में कनकतप्तरक्त आभा के समान शरीर का वर्ण होता है पश्चात् के तीन कल्पों के शरीर का वर्ण पद्मपद्मगौर वर्ण होता है, तत्पश्चात् देवों के शरीर का वर्ण शुक्ल होता है।"

·९६·१३ नारकियों के नरकावासों का वर्ण, शरीरों का वर्ण तथा उनकी लेश्या :—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरया केरिसिया वण्णेणं पन्नत्ता? गोयमा! काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकण्हा वण्णेणं पन्नत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए।

—जीवा० प्रति ३। उ १ (नरक)। सू ८३। पृ० १३८-३९

टीका—**रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः कीदृशा वर्णेन प्रज्ञप्ताः? भगवानाह—गौतम! कालाः तत्र कोऽपि निष्प्रतिभतया मंदकालोऽप्याशंकयेत् ततस्तदाशंकाव्यव-**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

च्छेदार्थं विशेषणान्तरमाह—'कालावभासाः' कालः—कृष्णोऽवभासः—प्रतिभाविनिर्गमो येभ्यस्ते कालावभासाः, कृष्णप्रभापटलोपचिता इति भावः × × × वर्णमधिकृत्य परमकृष्णाः प्रज्ञप्ताः।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं सरीरगा केरसिया वण्णेणं पन्नत्ता, गोयमा ! काला कालोभासा जाव परमकण्हा एवं जाव अहेसत्तमाए।

—जीवा० प्रति ३ । उ २ (नरक) । सू ८७ । पृ० १४१

टीका—रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिकाणां भदन्त ! शरीरकानि कीदृशानि वर्णेन प्रज्ञप्तानि ? भगवानाह गौतम ! 'काला-कालोभासा' इत्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमपृथिव्याम्।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! एक्का काऊलेस्सा पन्नत्ता, एवं सक्करप्पभाए वि। वालुयप्पभाए पुच्छा, गोयमा ! दो लेस्साओ पन्नत्ताओ, तं जहा—नीललेस्सा य काऊलेस्सा य; × × × पंकप्पभाए पुच्छा, एक्का नीललेस्सा पन्नत्ता; धूमप्पभाए पुच्छा, गोयमा ! दो लेस्साओ पन्नत्ताओ, तंजहा—कण्हलेस्सा य नीललेस्सा य; × × × तमाए पुच्छा, गोयमा ! एक्का कण्हलेस्सा; अहेसत्तमाए एक्का परमकण्हलेस्सा।

—जीवा० प्रति ३ । उ २ (नरक) । सू ८८ । पृ० १४१

नारकियों के नरकावास के वर्णों, शरीर के वर्णों तथा लेश्या का तुलनात्मक चार्ट

	नरकावास	शरीर	लेश्या
रत्नप्रभापृथ्वी	काला-कालावभास-परमकृष्ण	काला-कालावभास-परमकृष्ण	कापोत
शर्कराप्रभापृथ्वी	"	"	"
वालुकाप्रभापृथ्वी	"	"	कापोत, नील
पंकप्रभापृथ्वी	"	"	नील
धूमप्रभापृथ्वी	"	"	नील, कृष्ण
तमप्रभापृथ्वी	"	"	कृष्ण
तमतमाप्रभापृथ्वी	"	"	परमकृष्ण

'६६'१४ देवता और तेजोलेश्या-लब्धि :—

तए णं सा बलिचंचा रायहाणी ईसाणेणं देविंदेणं देवरन्ना अहे, सपक्खि सपडिदिसिं समभिलोइया समाणी तेणं दिव्वप्पभावेणं इंगालब्भूया मुम्मुरभूया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छारियब्भूया तत्तकवेल्लकब्भूया तत्ता समजोइ० भूया जाया यावि होत्था, तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य, देवीओ य तं बलिचंचा-रायहाणिं इङ्गालब्भूयं, जाव —समजोइब्भूयं पासंति, पासित्ता भीया,उत्तत्था सुसिया, उव्विग्गा, संजायभया, सव्वओ समंता आधावेंति, परिधावेंति, अन्नमन्नस्स कायं समतुरंगेमाणा चिट्ठंति, तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य, देवीओ य ईसाणं देविंदं, देवरायं परिकुविय जाणित्ता, ईसाणस्स देविंदस्स, देवरन्नो तं दिव्वं देविड्ढि, दिव्वं देवज्जुइं, दिव्वं देवाणुभागं, दिव्वं तेयलेस्सं असह-माणा सव्वे सपक्खि सपडिदिसिं ठिच्चा करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धाविंति, एवं वयासी :—अहो णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी, जाव अभिसमन्ना गया तं दिव्वा णं देवाणुप्पियाणं दिव्वा देविड्ढी, जाव लद्धा, पत्ता, अभिसमन्नागया, तं खामेमो देवाणुप्पिया! खमंतु देवाणुप्पिया! [खमंतु]मरिहंतु णं देवाणुप्पिया! णाइ भुज्जो २ एवंकरणयाएणंत्ति कट्टु एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो २ खामेंति, तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया तेहिं बलिचंचारायहाणि-वत्थव्वेहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो २ खामिए समाणे तं दिव्वं देविड्ढिं, जाव तेयलेस्सं पडिसाहरइ।

—भग० श ३। उ १। प्र १७। पृ० ४४६

जब ईशान देवेन्द्र देवराज ने नीचे, समक्ष, सप्रतिदिशा में बलिचंचा राजधानी की तरफ देखा तब उसके दिव्य प्रभाव से वह बलिचंचा राजधानी अंगार जैसी, अग्निकण जैसी, राख जैसी, तपी हुई बालुका जैसी तथा अत्यन्त तप्त लपट जैसी हो गई। उससे बलिचंचा राजधानी में रहनेवाले अनेक असुरकुमार देव देवी बलिचंचा को अंगार यावत् तप्त लपट जैसी हुई देखकर, भयभीत हुए, त्रस्त हुए, उद्विग्न हुए, भयप्राप्त हुए, चारों तरफ दौड़ने लगे, भागने लगे आदि। और उन देव-देवियों ने यह जान लिया कि ईशान देवेन्द्र देवराज कुपित हो गया है और वे उस ईशान देवेन्द्र देवराज की दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति, दिव्य देवप्रभाव तथा दिव्यतेजोलेश्या सह नहीं सके। तब वे ईशान देवेन्द्र देवराज के सामने, ऊपर, समक्ष, सप्रतिदिशा में बैठकर करबद्ध होकर नतमस्तक होकर ईशान देवेन्द्र देवराज की जय-विजय बोलने लगे तथा क्षमा मांगने लगे। तब उस ईशानेन्द्र ने दिव्य देवऋद्धि यावत् निक्षिप्त तेजोलेश्या को वापस खींच लिया।

नोट :—जैसे साधु की तपोलब्धि से प्राप्त तेजोलेश्या अंग-बंगादि १६ देशों को भस्मीभूत करने में समर्थ होती है (देखो ·२५·४) वैसे ही देवताओं की तेजोलेश्या भी प्रखर, तेज वा तापवाली होती है। ऐसा उपर्युक्त वर्णन से प्रतीत होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

·९६·१५ तैजससमुद्घात और तेजोलेश्या-लब्धि :—

तैजससमुद्घातस्तेजोलेश्याविनिर्गमकाले तैजसनामकर्म पुद्गलपरिशातहेतुः ।

—पण्ण० प ३६ । गा १ । टीका

असुरकुमारादीनां दशानामपि भवनपतिनां तेजोलेश्यालब्धिभावात् आद्याः पंच समुद्घाताः। ××× पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकानामाद्याः पंच, केषांचित्तेषां तेजोलब्धेरपि भावात्, मनुष्याणाम् सप्त, मनुष्येषु सर्वसम्भवात्, व्यन्तरज्योतिष्क-वैमानिकानामाद्याः पंच, वैक्रियतेजोलब्धिभावात् ।

—पण्ण० प ३६ । सू १ । टीका

तेजोलेश्या लब्धि वाला जीव ही तैजससमुद्घात करने में समर्थ होता है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य तथा देवों में तेजोलेश्या-लब्धि होती है। तैजससमुद्घात करने के समय तेजोलेश्या निकलती है तथा उसके निर्गमन काल में तैजस नामकर्म का क्षय होता है।

·९६·१६ लेश्या और कषाय :—

कषायपरिणामश्चावश्यं लेश्यापरिणामाविनाभावी, तथाहि—लेश्यापरिणामः सयोगिकेवलिनमपि यावद् भवति, यतो लेश्यानां स्थितिनिरूपणावसरे लेश्याध्ययने शुक्ललेश्याया जघन्या उत्कृष्टा च स्थितिः प्रतिपादिता—

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ।
नवहिं वरिसेहिं ऊणा नायव्वा सुक्कलेसाए।। इति

सा च नववर्षोनपूर्वकोटिप्रमाणा उत्कृष्टा स्थितिः शुक्ललेश्यायाः सयोगि-केवलिन्युपपद्यते, नान्यत्र, कषायपरिणामस्तु सूक्ष्मसंपरायं यावद् भवति, ततः कषायपरिणामो लेश्यापरिणामाऽविनाभूतो लेश्यापरिणामश्च कषायपरिणामं विनापि भवति, ततः कषायपरिणामानन्तरं लेश्यापरिणाम उक्तः, न तु लेश्यापरिणामानन्तरं कषायपरिणामः।

—पण्ण० प १३ । सू० २ । टीका

कषाय और लेश्या का अविनाभावी सम्बन्ध नहीं है। जहाँ कषाय है वहाँ लेश्या अवश्य है लेकिन जहाँ लेश्या है (अन्ततः जहाँ शुक्ललेश्या है) वहाँ कषाय नहीं भी हो सकता है। यथा—केवलज्ञानी के कषाय नहीं होता है तो भी उसके लेश्या के परिणाम होते हैं, यद्यपि वह शुक्ललेश्या ही होती है। यह शुक्ललेश्या की उत्कृष्ट स्थिति—नव वर्ष कम पूर्व कोटि प्रमाण से प्रतिपादित होती है क्योंकि यह स्थिति सयोगी केवली में ही सम्भव है, अन्यत्र नहीं ; और सयोगी केवली अकषायी होते हैं। अतः यह कहा जाता है कि लेश्या-परिणाम कषाय-परिणाम के बिना भी होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब प्रश्न उठता है कि लेश्या और कषाय जब सहभावी होते हैं तब एक दूसरे पर क्या प्रभाव डालते हैं। कई आचार्य कहते हैं कि लेश्या-परिणाम कषाय-परिणाम से अनुरंजित होते हैं––

कषायोदयाऽनुरंजिता लेश्या।

कषाय और लेश्या के पारस्परिक सम्बन्ध में अनुसंधान की आवश्यकता है।

'९६'१७ लेश्या और योग :—

लेश्या और योग में अविनाभावी सम्बन्ध है। जहाँ योग है वहाँ लेश्या है। जो जीव सलेशी है वह सयोगी है तथा जो अलेशी है वह अयोगी भी है। जो जीव सयोगी है वह सलेशी है तथा जो अयोगी है वह अलेशी भी है।

कई आचार्य योग-परिणामों को ही लेश्या कहते हैं।

यत उक्तं प्रज्ञापनावृत्तिकृता :—

योगपरिणामो लेश्या, कथं पुनर्योगपरिणामो लेश्या ?, यस्मात् सयोगी केवली शुक्ललेश्यापरिणामेन विहृत्यान्तर्मुहूर्त्ते शेषे योगनिरोधं करोति ततोऽयोगीत्वमलेश्यत्वं च प्राप्नोति अतोऽवगम्यते 'योगपरिणामो लेश्ये'ति, स पुनर्योगः शरीरनामकर्मपरिणतिविशेषः, यस्मादुक्तम्—"कर्म हि कार्मणस्य कारणमन्येषां च शरीराणामिति," तस्मादौदारिकादिशरीरयुक्तस्यात्मनो वीर्यपरिणतिविशेषः काययोगः, तथौदारिकवैक्रियाहारकशरीरव्यापाराहृतवाग्द्रव्यसमूहसाचिव्यात् जीवव्यापारो यः स वाग्योगः, तथौदारिकादिशरीरव्यापाराहृतमनोद्रव्यसमूहसाचिव्यात् जीवव्यापारो यः स मनोयोग इति, ततो तथैव कायादिकरणयुक्तस्यात्मनो वीर्यपरिणतिर्योग उच्यते तथैव लेश्यापीति।

—ठाण० स्था १। सू ५१। टीका

प्रज्ञापना के वृत्तिकार कहते हैं :—

योग-परिणाम ही लेश्या है। क्योंकि सयोगी केवली शुक्ललेश्या परिणाम में विहरण करते हुए अवशिष्ट अन्तर्मुहूर्त में योग का निरोध करते हैं तभी वे अयोगीत्व और अलेश्यत्व को प्राप्त होते हैं। अतः यह कहा जाता है कि योग-परिणाम ही लेश्या है। वह योग भी शरीर नामकर्म की विशेष परिणति रूप ही है। क्योंकि कर्म कार्मण शरीर का कारण है और कार्मण शरीर अन्य शरीरों का। इसलिए औदारिक आदि शरीर वाले आत्मा की वीर्य परिणति विशेष ही काययोग है। इसी प्रकार औदारिकवैक्रियाहारक शरीर व्यापार से ग्रहण किये गए वाक् द्रव्यसमूह के सन्निधान से जीव का जो व्यापार होता है वह वाक् योग है। इसी तरह औदारिकादि शरीर व्यापार से गृहीत मनोद्रव्य समूह के सन्निधान से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव का जो व्यापार है वह मनोयोग है। अतः कायादिकरणयुक्त आत्मा की वीर्य परिणति विशेष को योग कहा जाता है और उसीको लेश्या कहते हैं।

तेरहवें गुणस्थान के शेष अन्तर्मुहूर्त के प्रारम्भ में योग का निरोध प्रारम्भ होता है। मनोयोग तथा वचनयोग का सम्पूर्ण निरोध हो जाता है तथा काययोग का अर्ध निरोध होता है (देखो ·९५·४)। उस समय में लेश्या का कितना निरोध या परित्याग होता है इसके सम्बन्ध में कोई तथ्य या पाठ उपलब्ध नहीं हुआ है। अवशेष अर्ध काययोग का निरोध होकर जब जीव अयोगी हो जाता है तब वह अलेशी भी हो जाता है। अलेशी होने की क्रिया योग निरोध के प्रारम्भ होने के साथ-साथ होती है या अर्ध काययोग के निरोध के प्रारम्भ के साथ-साथ होती है—यह कहा नहीं जा सकता। लेकिन यह निश्चित है कि जो सयोगी है वह सलेशी है तथा जो अयोगी है वह अलेशी है। जो सलेशी है वह सयोगी है तथा जो अलेशी है वह अयोगी है। योग और लेश्या का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है—आगमों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है।

द्रव्यलेश्या के पुद्गल कैसे ग्रहण किये जाते हैं, यह भी एक विवेचनीय विषय है। द्रव्य मनोयोग तथा द्रव्य वचनयोग के पुद्गल काययोग के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। क्या यह कहा जा सकता है कि द्रव्य लेश्या के पुद्गल भी काययोग के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं।

जब जीव मन-अयोगी तथा वचन-अयोगी होता है उस समय वह कियदंश में भी अलेश्यत्व को प्राप्त होता है या नहीं—यह विचारणीय विषय है। यदि नहीं हो तो यह सिद्ध हो जाता है कि लेश्या का काययोग के साथ सम्बन्ध है और जब अर्धकाय योग का निरोध होता है तभी जीव अलेश्यत्व को प्राप्त होता है।

लेश्या की दो प्रक्रियायें हैं—(१) द्रव्यलेश्या के पुद्गलों का ग्रहण तथा (२) उनका प्रायोगिक परिणमन। जब योग का निरोध प्रारम्भ होता है उस समय से लेश्या द्रव्यों का ग्रहण भी बंद हो जाना चाहिये तथा योग निरोध की संपूर्णता के साथ-साथ पूर्वकाल में गृहीत तथा अपरित्यक्त द्रव्य लेश्या के पुद्गलों का प्रायोगिक परिणमन भी सम्पूर्णतः बन्द हो जाना चाहिये।

·९६·१८ लेश्या और कर्म :—

कर्म और लेश्या शाश्वत भाव हैं। कर्म और लेश्या पहले भी हैं, पीछे भी हैं, अनानुपूर्वी हैं। इनका कोई क्रम नहीं है। न कर्म पहले है, न लेश्या पीछे है; न लेश्या पहले है, न कर्म पीछे। दोनों पहले भी हैं, पीछे भी हैं, दोनों शाश्वत भाव हैं, दोनों अनानुपूर्वी हैं। दोनों में आगे-पीछे का क्रम नहीं है (देखो ·९४)। भावलेश्या जीवोदयनिष्पन्न है (देखो ·५२·५)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यलेश्या अजीवोदयनिष्पन्न है (देखो '५१'१८)। यह जीवोदय-निष्पन्नता तथा अजीवोदयनिष्पन्नता किस-किस कर्म के उदय से हैं—यह पाठ उपलब्ध नहीं हुआ है। तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य जयाचार्य का कहना है कि कृष्णादि तीन अप्रशस्त लेश्या—मोहकर्मोदय-निष्पन्न हैं तथा तेजो आदि तीन प्रशस्त लेश्या नामकर्मोदयनिष्पन्न हैं। विशुद्ध होती हुई लेश्या कर्मों की निर्जरा में सहायक होती है (देखो ६६'२)। टीकाकारों का कहना है—

"कर्मनिस्यन्दो लेश्येति सा च द्रव्यभावभेदात् द्विधा, तत्र द्रव्यलेश्या कृष्णादिद्रव्याण्येव, भावलेश्या तु तज्जन्यो जीवपरिणाम इति।"

"लिश्यते प्राणी कर्मणा यया सा लेश्या।" यदाह —"श्लेष इव वर्णबन्धस्य कर्मबंधस्थितिविधात्र्यः।"

—अभयदेवसूरि (देखो '०५३'१)

अष्टानामपि कर्मणां शास्त्रे बिपाका वर्ण्यन्ते, न च कस्यापि कर्म्मणो लेश्यारूपो बिपाक उपदर्शितः।

— मलयगिरि (देखो '०५३'२)

यद्यपि लेश्या कर्मनिष्यंदन रूप है तो भी अष्टकर्मों के विपाकों के वर्णन में आगमों में कहीं लेश्यारूपी विपाक का वर्णन नहीं है।

लेश्यास्तु येषां भंते कषायनिष्यन्दो लेश्याः तन्मतेन कषायमोहनीयोदयजत्वाद् औदयिक्यः, यन्मतेन तु योगपरिणामो लेश्याः तदभिप्रायेण योगत्रयजनककर्मोदय-प्रभवाः, येषां त्वष्टकर्मपरिणामो लेश्यास्तन्मतेन संसारित्वासिद्धत्ववद् अष्टप्रकार-कर्मोदयजा इति।।

—चतुर्थ कर्म० गा ६६। टीका

जिनके मत में लेश्या कषायनिस्यंद रूप है उनके अनुसार लेश्या कषायमोहनीय कर्म के उदय जन्य औदयिक्य भाव है। जिनके मत में लेश्या योगपरिणाम रूप है उनके अनुसार जो कर्म तीनों योगों के जनक हैं वह उन कर्मों के उदय से उत्पन्न होनेवाली है। जिनके मत में लेश्या आठों कर्मों के परिणाम रूप है उनके मतानुसार वह संसारित्व तथा असिद्धत्व की तरह अष्ट प्रकार के कर्मोदय से उत्पन्न होनेवाली है।

कई आचार्यों का कथन है कि लेश्या कर्मबंधन का कारण भी है, निर्जरा का भी। कौन लेश्या कब बंधन का कारण तथा कब निर्जरा का कारण होती है, यह विवेचनीय प्रश्न है।

'६६'१६ लेश्या और अध्यवसाय :—

लेश्या और अध्यवसाय का घनिष्ठ सम्बन्ध मालूम पड़ता है; क्योंकि जातिस्मरण आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानों की प्राप्ति में अध्यवसायों के शुभतर होने के साथ लेश्या परिणाम भी विशुद्धतर होते हैं। इसी प्रकार अध्यवसाय के अशुभतर होने के साथ लेश्या की अविशुद्धि घटती है।

ऐसा मालूम पड़ता है कि छओं लेश्याओं में प्रशस्त-अप्रशस्त दोनों प्रकार के अध्यवसाय होते हैं।

पज्जत्ता असन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु उववज्जित्तए × × × तेसि णं भंते! जीवाणं कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! तिन्नि लेस्साओ पन्नत्ताओ, तं जहा— कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काऊलेस्सा। × × × तेसि णं भंते! जीवाणं केवइया अज्झवसाणा पन्नत्ता? गोयमा! असंखेज्जा अज्झवसाणा पन्नत्ता। ते णं भंते! किं पसत्था अपसत्था? गोयमा! पसत्था वि अपसत्था वि।

—भग० श २४। उ १। प्र ७, १२, २४, २५। पृ० ८१५-१६

सव्वट्ठसिद्धगदेवे णं भंते! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए०? सा चेव विजयादिदेव वत्तव्वया भाणियव्वा। नवरं ठिई अजहन्नमनुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। एवं अणुबंधो वि। सेसं तं चेव।

—भग० श २४। उ २१। प्र १७। पृ० ८४६

उपरोक्त पाठों से यह स्पष्ट है कि कृष्ण, नील तथा कापोत लेश्या वाले जीवों में प्रशस्त तथा अप्रशस्त दोनों अध्यवसाय होते हैं तथा शुक्ललेश्या में भी दोनों अध्यवसाय होते हैं। अतः छओं लेश्याओं में दोनों अध्यवसाय होने चाहिये।

'६६'२० किस और कितनी लेश्या में कौन से जीव :—

'६६'२०'१ एक लेश्या वाले जीव :—

कृष्णलेश्या वाले जीव—(१) तमप्रभा नारकी, (२) तमतमाप्रभा नारकी।

नीललेश्या वाले जीव—(१) पंकप्रभा नारकी।

कापोतलेश्या वाले जीव—(१) रत्नप्रभा नारकी, (२) शर्कराप्रभा नारकी।

तेजोलेश्या वाले जीव—(१) ज्योतिषी देव, (२) सौधर्म देव, (३) ईशान देव, (४) प्रथम किल्विषी देव।

पद्मलेश्या वाले जीव—(१) सनत्कुमारदेव, (२) माहेन्द्रदेव (३) ब्रह्मलोकदेव, (४) द्वितीय किल्विषी देव।

शुक्ललेश्या वाले जीव—(१) लान्तक देव, (२) महाशुक्रदेव, (३) सहस्रार देव, (४) आनत देव, (५) प्राणत देव, (६) आरण देव, (७) अच्युत देव, (८) नव ग्रैवेक देव,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६) विजय-अनुत्तरौपपातिक देव, (१०) वैजयन्त अनुत्तरौ-पपातिक देव, (११) जयन्त अनुत्तरौपपातिक देव, (१२) अपराजित अनुत्तरौपपातिक देव, (१३) सर्वार्थसिद्धअनुत्तरौपपातिक देव।

·९६·२०·२ दो लेश्या वाले जीव :—

कृष्ण तथा नील लेश्या वाले जीव—(१) धूमप्रभा नारकी।

नील तथा कापोत लेश्या वाले जीव—(१) बालुकाप्रभा नारकी।

·९६ २०·३ तीन लेश्या वाले जीव :—

कृष्ण-नील-कापोत लेश्यावाले जीव—(१) नारकी, (२) अग्निकाय, (३) वायुकाय, (४) द्वीन्द्रिय, (५) त्रीन्द्रिय, (६) चतुरिन्द्रिय, (७) असंज्ञी तिर्यंच पंचेंद्रिय, (८) असंज्ञी मनुष्य, (६) सूक्ष्म स्थावर जीव, (१०) बादर निगोद जीव।

तेजो-पद्म-शुक्ललेश्या वाले जीव—(१) वैमानिक देव, (२) पुलाक निर्ग्रन्थ, (३) बकुस निर्ग्रन्थ, (४) प्रतिसेवनाकुशील निर्ग्रन्थ, (५) परिहारविशुद्ध संयती, (६) अप्रमादी साधु।

·९६·२०·४ चार लेश्या वाले जीव :—

कृष्ण-नील-कापोत-तेजोलेश्या वाले जीव—(१) पृथ्वीकाय, (२) अप्काय, (३) वनस्पतिकाय, (४) भवनपति देव, (५) वानव्यंतर देव, (६) युगलिया, (७) देवियाँ।

·९६·२०·५ पांच लेश्या वाले जीवः—

कृष्ण यावत् पद्मलेश्यावाले जीव :—(१) अपनी जघन्यस्थितिवाले पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव जो सनत्कुमार, माहेन्द्र तथा ब्रह्मलोक देवों में उत्पन्न होने योग्य हैं।

·९६·२०·६ छः लेश्या वाले जीव :—

कृष्ण यावत् शुक्ललेश्यावाले जीव :—(१) तिर्यंच पंचेन्द्रिय, (२) मनुष्य, (३) देव, (४) सामायिक संयत, (५) छेदोपस्थानीय संयत, (६) कषाय कुशील निर्ग्रन्थ, (७) संयत।

·९६·२०·७ अलेशी जीव :—(१) मनुष्य, (२) सिद्ध।

·९६·२१ भुलावण (प्रति सन्दर्भ) के पाठ :—

(क) कइ णं भंते ! लेस्साओ पण्णत्ताओ? गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ता(ओ), तं जहा, लेस्साणं बिइओ उद्देसो भाणियव्वो, जाव—इड्ढी।

—भग० श १। उ २। प्र ९८। पृ० ३९३

प्रज्ञापना लेश्या पद १७ उद्देशक २ की भुलावण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जइ अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ ? पन्नवणाए लेस्सापए तइओ उद्देसओ भाणियव्वो जाव नाणाइं।

—भग० श ४ । उ ६ । पृ० ४६८

प्रज्ञापना लेश्या पद १७, उद्देशक ३ की भुलावण।

(ग) से नूणं भंते ! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए एवं चउत्थो उद्देसओ पन्नवणाए चेव लेस्सापए नेयव्वो जाव—

परिणामवण्णरसगंध सुद्ध अपसत्थ संकिलिट्ठुण्हा।
गइपरिणामपदेसोगाहणवग्गणा ठाणमप्पबहुं॥

—भग० श ४ । उ १० । पृ० ४६८

प्रज्ञापना लेश्या पद १७, उद्देशक ४ की भुलावण।

(घ) इमीसे णं भंते ! रयणपभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु असंखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएणं केवइया नेरइया उववज्जंति जाव केवइया अणागारोवउत्ता उववज्जंति। ××× नाणत्तं लेस्सासु लेस्साओ जहा पढमसए।

—भग० श १३ । उ १ । प्र ७ । पृ० ६७८

भगवती श १ । उ २ । प्र ९८ की भुलावण। उसमें प्रज्ञापना लेश्या पद १७, उद्देशक २ की भुलावण।

(च) कइ णं भंते ! लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! छल्लेसाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—एवं जहा पण्णवणाए चउत्थो लेसुद्देसओ भाणियव्वो निरवसेसो।

—भग० श १६ । उ १ । पृ० ७८१

प्रज्ञापना लेश्यापद १७ के चतुर्थ उद्देशक की भुलावण।

(छ) कइ णं भंते ! लेस्साओ प० ? एवं जहा पन्नवणाए गब्भुद्देसो सो चेव निरवसेसो भाणियव्वो।

—भग० श १६ । उ २ । पृ० ७८१

प्रज्ञापना लेश्यापद १७ के गर्भ उद्देशक की भुलावण।

(ज) तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जाव एवं वयासी—कइ णं भंते ! लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! छ लेस्साओ पन्नत्ताओ, तं जहा—कण्हलेस्सा जहा पढमसए बिइए उद्देसए तहेव लेस्साविभागो। अप्पाबहुगं च जाव चउव्विहाणं देवाणं चउव्विहाणं देवीणं मीसगं अप्पाबहुगंति।

—भग० श २५ । उ १ । प्र १ । पृ० ८५१

भग० श १ । उ २ । प्र ९८ की भुलावण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(झ) से नूनं भंते ! कण्हलेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावन्नत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ ? इत्तो आढत्तं जहा चउत्थओ उद्देसओ तहा भाणियव्वं जाव वेरुलियमणिदिट्ठंतो त्ति ।

—पण्ण० प १७ । उ ५ । सू ५४ । पृ० ४५०

प्रज्ञापना लेश्या पद १७ । उद्देशक ४ की भुलावण ।

(ञ) कइ णं भंते ! लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! छ लेस्साओ पन्नत्ताओ, तं जहा—कण्हा, नीला, काऊ, तेऊ, पम्हा, सुक्का, एवं लेस्सापयं भाणियव्वं ।

—सम० पृ० ३७५

प्रज्ञापना लेश्या पद १७ की भुलावण ।

·९६·२२ सिद्धांत ग्रन्थों से लेश्या सम्बन्धी पाठ :—

·९६·२२·१ देवेन्द्रसूरि विरचित कर्म ग्रन्थों से :—

(क) लेश्या और कर्म प्रकृतियों का वंध :—

ओहे अट्ठारसयं आहारदुगूण आइलेसतिगे ।
तं तित्थोणं मिच्छे साणाइसु सव्वहिं ओहो ॥
तेऊ नरयनवूणा, उजोयचउ नरयबार विणु सुक्का ।
विणुनरयबार पम्हा, अजिणाहारा इमा मिच्छे ॥

—तृतीय कर्म० गा २१,२२

(ख) लेश्या और गुणस्थान :—

तिसु दुसु सुक्काइ गुणा, चउ सग तेरत्ति बंध सामित्तं ।
देविंदसूरिलिहियं, नेयं कम्मत्थयं सोउं ॥

—तृतीय कर्म० गा २४

तथाहि—

लेसा तिन्नि पमत्तं, तेऊपम्हा उ अप्पमत्तंता ।
सुक्का जाव सजोगी, निरुद्धलेसो अजोगि त्ति ॥

—जिनवल्लभीय षडशीति गा० ७३

छसु सव्वा तेउतिगं, इगि छसु सुक्का अजोगि अल्लेसा ।

—चतुर्थ कर्म० गा ५०।पूर्वार्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ग) विभिन्न जीवों में कितनी लेश्या :—

(१) सन्निदुगि छलेस अपज्जबायरे पढम चउ ति सेसेसु ।

—चतुर्थ कर्म० गा ७ । पूर्वार्ध

(२) अहखाय सुहुम केवलदुगि सुक्का छावि सेसठाणेसु ।

—चतुर्थ कर्म० गा ३७ । पूर्वार्ध

टीका—यथाख्यातसंयमे सूक्ष्मसंपरायसंयमे च 'केवलद्विके' केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपे शुक्ललेश्यैव न शेषलेश्याः, यथाख्यातसंयमादौ एकांतविशुद्धपरिणामभावात् तस्य च शुक्ललेश्याऽविनाभूतत्वात्। 'शेषस्थानेषु' सुरगतौ तिर्यग्गतौ मनुष्यगतौ पंचेन्द्रियत्रसकाययोगत्रयवेदत्रयकषायचतुष्टयमतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानमनःपर्यायज्ञानमत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभंगज्ञानसामायिकच्छेदोपस्थापन-परिहारविशुद्धिदेशविरताविरतचक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनभव्याभव्यक्षायिकक्षायोपशमिकोपशमिक-सास्वादनमिश्रमिथ्यात्वसंज्ञ्याहारकानाहारकलक्षणैकचत्वारिंशत्सु शेषमार्गणास्थानकेषु षडपि लेश्याः।

(३) भव्य-अभव्य जीवों में कितनी लेश्या :—

किण्हा नीला काऊ, तेऊ पम्हा य सुक्क भव्वियरा ।

—चतुर्थ कर्म० गा १३ । पूर्वार्ध

(घ) लेश्या और सम्यक्त्व चारित्र :—

सम्यक्त्वदेशविरतिसर्वविरतीनां प्रतिपत्तिकाले शुभलेश्यात्रयमेव भवति । उत्तरकालं तु सर्वा अपि लेश्याः परावर्तन्तेऽपि इति । श्रीमदाराध्यपादा अप्याहुः—

सम्मत्तसुयं सव्वासु लहइ सुद्धासु तीसु य चरित्तं ।
पुव्वपडिवन्नओ पुण, अन्नयरीए उ लेसाए ।।

—आव० नि० गा ८२२

—चतुर्थ कर्म० गा १२ की टीका

'९६'२३ अभिनिष्क्रमण के समय भगवान् महावीर की लेश्या की विशुद्धि :—

छट्ठेणं उ भत्तेणं अज्झवसाणेण सोहणेण जिणो ।
लेसाहिं विसुज्झंतो आरुहई उत्तमं सीयं ।।

—आया० श्रु २ । अ १५ । गा १२१ । पृ० ९२

अभिनिष्क्रमण के समय भगवान् ने जब श्रेष्ठ पालकी में आरोहण किया उस समय उनके दो दिन का उपवास था, उनके अध्यवसाय शुभ थे तथा लेश्या विशुद्धमान थी।

३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'६६'२४ वेदनीय कर्म का बन्धन तथा लेश्या :—

जीवे णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ? गोयमा ! अत्थेगइए बंधी बंधइ बंधिस्सइ १, अत्थेगइए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ २, अत्थेगइए बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ ४, सलेस्से वि एवं चेव तइयविहूणा भंगा। कण्हलेस्से जाव—पम्हलेस्से पढम-बिइया भंगा, सुक्कलेस्से तइयविहूणा भंगा, अल्लेसे चरिमो भंगो। कण्ह-पक्खिए पढमबिइया। सुक्कपक्खिया तइयविहूणा। एवं सम्मदिट्ठिस्स वि ; मिच्छादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स य पढमबिइया। णाणिस्स तइयविहूणा, आभिणिबोहिय, जाव मणपज्जवणाणी पढमबिइया, केवलनाणी तइयविहूणा। एवं नो सन्नोवउत्ते, अवेदए, अकसायी। सागारोवउत्ते अणागारोवउत्ते एएसु तइयविहूणा। अजोगिम्मि य चरिमो, सेसेसु पढमबिइया।

—भग० श २६। उ १। प्र १७। पृ० ८६६-६००

वेदनीय कर्म ही एक ऐसा कर्म है जो अकेला भी बंध सकता है। यह स्थिति ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें गुणस्थान के जीवों में होती है। इन गुणस्थानों में वेदनीय कर्म के अतिरिक्त अन्य कर्मों का बन्धन नहीं होता है। इनमें से ग्यारहवें गुणस्थान वाले को चतुर्थ भंग लागू नहीं हो सकता है। चौदहवें गुणस्थान के जीव के निर्विवाद चतुर्थ भंग लागू होता है। उपरोक्त पाठ से यह ज्ञात होता है कि सलेशी—शुक्ललेशी जीवों में कोई एक जीव ऐसा होता है जिसके चतुर्थ भंग से वेदनीय कर्म का बन्धन होता है अर्थात् वह शुक्ललेशी जीव वर्तमान में न तो वेदनीय कर्म का बन्धन करता है और न भविष्यत् में करेगा। चौदहवें गुण स्थान का जीव सलेशी—शुक्ललेशी नहीं हो सकता है। अतः उपरोक्त शुक्ललेशी जीव बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थान वाला ही होना चाहिए। लेकिन बारहवें तथा तेरहवें गुण-स्थान के जीव के साता वेदनीय कर्म का बन्धन ईर्यापथिक के रूप में होता रहता है। बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थान का जीव वेदनीय कर्म का अबन्धक नहीं होता है।

टीकाकार का कहना है, "सलेशी जीव पूर्वोक्त हेतु से तीसरे भंग को बाद देकर—अन्य भंगों से वेदनीय कर्म का बन्धन करता है लेकिन उसमें चतुर्थ भंग नहीं घट सकता है क्योंकि चतुर्थ भंग लेश्या रहित अयोगी को ही घट सकता है। लेश्या तेरहवें गुणस्थान तक होती है तथा वहाँ तक वेदनीय कर्म का बन्धन होता रहता है। कई आचार्य इसका इस प्रकार समाधान करते हैं कि इस सूत्र के वचन से अयोगीत्व के प्रथम समय में घण्टालाला न्याय से परम शुक्ललेश्या संभव है तथा इसी अपेक्षा से सलेशी—शुक्ललेशी जीव के चतुर्थ भंग घट सकता है। तत्त्व बहुश्रुतगम्य है।"

हमारे विचार में इसका एक यह समाधान भी हो सकता है कि लेश्या परिणामों की अपेक्षा अलग से वेदनीय कर्म का बन्धन होता है तथा योग की अपेक्षा अलग से वेदनीय कर्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का बन्धन होता है। तब बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थान में कोई एक जीव ऐसा हो सकता है जिसके लेश्या की अपेक्षा से वेदनीय कर्म का बन्धन रुक जाता है लेकिन योग की अपेक्षा से चालू रहता है।

'९९'२५ छूटे हुए पाठ :—

'०४ सविशेषण-ससमास लेश्या शब्द :—

४७ सूरियसुद्धलेसे	—सूय० श्रु १ । अ ६ । गा १३ । पृ० ११६
४८ अत्तपसन्नलेसे	—उत्त० अ १२ । गा ४६ । पृ० ६६६
४९ सोमलेसा	—कप्पसु० सू ११७ ; ओव० सू १७ । पृ० ८
५० अप्पडिलेस्सा	—ओव० सू १६ । पृ० ७

अध्ययन, गाथा, सूत्र आदि की संकेत सूची

अ	अध्ययन, अध्याय	प्र	प्रश्न
अधि	अधिकार	प्रति	प्रतिपत्ति
उ	उद्देश, उद्देशक	प्रा	प्राभृत
गा	गाथा	प्रप्रा	प्रतिप्राभृत
च	चरण	भा	भाष्य
चू	चूर्णी	भाग	भाग
चूलि	चूलिका	ला	लाइन
टी	टीका	व	वर्ग
द	दशा	वा	वार्तिक
द्वा	द्वार	वृ	वृत्ति
नि	निर्युक्ति	श	शतक
प	पद	श्रु	श्रुतस्कंध
पं	पंक्ति	श्लो	श्लोक
पृ०	पृष्ठ	सम	समवाय
पै	पैरा	सू	सूत्र
		स्था	स्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकलन-सम्पादन-अनुसंधान में प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची

१—आयारांग प्रथम श्रुतस्कन्ध—संकेत—आया० श्रु १

(प्रति क) सनिर्युक्ति तथा सशीलांकाचार्यवृत्ति—प्रकाशक—सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई। (प्रति ख) प्रकाशक—जैन साहित्य समिति, उज्जैन। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग पृष्ठ १-३२।

२—आयारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध—संकेत—आया० श्रु २

(प्रति क) सशीलांकाचार्यवृत्ति—प्रकाशक—सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई। (प्रति ख) प्रकाशक—रवजी भाई देवराज, राजकोट। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग—पृ० ३३ से ९९।

३—सूयगडांग—संकेत—सूय०

(प्रति क) सशीलांकाचार्यवृत्ति—प्रथम खंड—प्रकाशक—शा० छगनमल मुहता, बंगलोर ; द्वितीय खंड—प्रकाशक—शा० छगनमल मुहता, बंगलोर ; तृतीय खंड—प्रकाशक—महावीर जैन ज्ञानोदय सोसाइटी ; चतुर्थ खंड—शम्भूमल गंगाराम मुहता, बंगलोर। (प्रति ख) सनिर्युक्ति-प्रकाशक—श्रेष्ठि मोतीलाल, पूना। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग—पृ० १०१ से १८२।

४—ठाणांग—संकेत—ठाण०

(प्रति क) साभयदेवसूरिकृत वृत्ति—प्रकाशक-अष्टकोटीय बृहद्पक्षीय संघ, मुद्रा (कच्छ) भाग ४। (प्रति ख) साभयदेवसूरिकृत वृत्ति—प्रकाशक—माणेकलाल चुन्नीलाल, अहमदावाद। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग पृ० १८३ से ३१५।

५—समवायांग—संकेत—सम०

(प्रति क) साभयदेवसूरिकृत वृत्ति—प्रकाशक—माणेकलाल चुन्नीलाल, अहमदाबाद। (प्रति ख) साभयदेवसूरिकृत वृत्ति—प्रकाशक—जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग पृ० ३१६ से ३८३।

६—भगवई—संकेत—भग०

(प्रति क) प्रथम खण्ड, द्वितीय खण्ड—प्रकाशक—जिनागम प्रकाशक सभा, बम्बई। तृतीय खण्ड—प्रकाशक—गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद ; चतुर्थ खण्ड—प्रकाशक जैन साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, अहमदाबाद। (प्रति ख) साभयदेवसूरि कृत वृत्ति तीन खण्ड—प्रकाशक—ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वेताम्बर संस्था ; रतनपुर। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग—पृ० ३८४ से ९३९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७—नायाधम्मकहाओ—संकेत—नाया०

(प्रति क) साभयदेवसूरिकृत वृत्ति भाग २—प्रकाशक—सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई। (प्रति ख) प्रकाशक—श्री एन० वी० वैद्य, पूना। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग—पृ० ६४१ से ११२५।

८—उवासगदसाओ—संकेत—उवा०

(प्रति क) साभयदेवसूरिकृत वृत्ति—प्रकाशक—पं० भगवानदास हर्षचन्द, अहमदाबाद। (प्रति ख) प्रकाशक—श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन संघ, करांची। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग पृ० ११२७ से ११६०।

६- अंतगडदसाओ—संकेत—अंत०

(प्रति क) प्रकाशक—गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, अहमदाबाद। (प्रति ख) प्रकाशक—श्री श्वे० स्थानकवासी शास्त्रोद्धारक समिति, राजकोट। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग पृ० ११६१ से ११६०।

१०—अणुत्तरोववाइयदसाओ—संकेत—अणुत्त०

(प्रति क) प्रकाशक—जैन शास्त्र माला कार्यालय, लाहौर। (प्रति ख) प्रकाशक—गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, अहमदाबाद। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग पृ० ११६१ से ११६८।

११—पण्हावागरणं—संकेत—पण्हा०

(प्रति क) ज्ञानविमलसूरिकृत वृत्ति भाग २—प्रकाशक मुक्तिविमल जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद। (प्रति ख) प्रकाशक—सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग पृ० ११६६ से १२३६।

१२—विवागसुत्तं—संकेत—विवा०

(प्रति क) साभयदेवसूरि कृत वृत्ति—प्रकाशक—गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, अहमदाबाद। (प्रति ख) प्रकाशक—श्वे० स्था० शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट। (प्रति ग) सुत्तागमे प्रथम भाग पृ० १२४१ से १२८७।

१३—ओववाइयसुत्तं—संकेत—ओव०

(प्रति क) साभयदेवसूरिकृत वृत्ति—प्रकाशक—पंडित भूरालाल कालीदास, सूरत। (प्रति ख) प्रकाशक—साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ, सैलाना। (प्रति ग) सुत्तागमे—द्वितीय भाग—पृ० १ से ४०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४—रायपसेणइयं—संकेत—राय०

(प्रति क) समलयगिरिविहितविवरणं—प्रकाशक—गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, अहमदावाद। (प्रति ख) समलयगिरिविहितं विवरणं—प्रकाशक—खण्डयाता बुक डीपो, अहमदाबाद। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० ४१ से १०३।

१५—जीवाजीवाभिगमे—संकेत—जीवा०

(प्रति क) समलयगिरिप्रणीत विवृत्ति—प्रकाशक—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धारक फंड, सूरत। (प्रति ख) प्रकाशक—लाला सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद, हैदराबाद। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० १०५ से २६४।

१६—पण्णवणा सुत्तं—संकेत—पण्ण०

(प्रति क) भाग ३—प्रकाशक—जैन सोसाइटी, अहमदावाद। (प्रति ख) समलयगिरिकृत वृत्ति दो भाग—प्रकाशक—आगमोदय समिति, मेहसाना। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग—पृ० २६५ से ५३३।

१७—जम्बुदीवपण्णत्ति—संकेत—जम्बु०

(प्रति क) शान्तिचन्द्र विहित वृत्ति—प्रकाशक—देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धारफण्ड, सूरत। (प्रति ख) प्रकाशक—लाला सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद, हैदराबाद। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० ५३५ से ६७२।

१८—चन्द्पण्णत्ति—संकेत—चन्द०

(प्रति क) प्रकाशक—लाला सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद, हैदराबाद।
(प्रति ख)............
(प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग, पृ० ६७३ से ७५१।

१९—सूरियपण्णत्ति संकेत—सूरि०

(प्रति क) समलयगिरिविहितविवरणं—प्रकाशक— आगमोदय समिति; मेहसाना। (प्रति ख) प्रकाशक—लाला सुखदेव सहाय ज्वालाप्रसाद, हैदराबाद। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० ७५३-७५४।

२०—निरियावलिया—संकेत—निरि०

(प्रति क) प्रकाशक—पी० एल० वैद्य, पूना। (प्रति ख) सचन्द्रसूरिकृत वृत्ति—प्रकाशक—गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, अहमदावाद। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० ७५५ से ७६६।

२१—ववहारो संकेत—वव०

(प्रति क) प्रकाशक—डा० जीवराज घेलाभाई डोसी, अहमदाबाद। (प्रति ख) सनिर्युक्ति समलयगिरि वृत्ति भाग ८—प्रकाशक केशवलाल प्रेमचन्द मोदी, अहमदाबाद, भाग ६-१० वकील विक्रमलाल अगरचन्द, अहमदाबाद। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० ७६७ से ८२६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२—बिहकप्पसुत्तं—संकेत—बिह०

(प्रति क) सनिर्युक्ति-भाष्य-टीका—भाग ६ प्रकाशक—श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर।। (प्रति ख) प्रकाशक—डा० जीवराज घेलाभाई डोसी, अहमदाबाद। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० ८३१ से ८४८।

२३—निसीहसुत्तं—संकेत—निसी०

(प्रति क) सचूर्णी भाग ४—प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा। (प्रति ख) प्रकाशक—लाला सुखदेवसहाय, हैदराबाद। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० ८४६ से ६१७।

२४—दसासुयक्खंधो—संकेत—दसासु०

(प्रति क) प्रकाशक—जैन शास्त्रमाला कार्यालय, लाहौर। (प्रति ख) प्रकाशक—श्वे० स्था० शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग, पृ० ६१६ से ६४६।

२५—दशवेआलिय सुत्तं—संकेत—दसवे०

(प्रति क) प्रकाशक—श्री जैन श्वे० तेरापन्थी महासभा, कलकत्ता। (प्रति ख) प्रकाशक—जैन शास्त्रमाला कार्यालय, लाहौर। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग, पृ० ६४७ से ६७६।

२६—उत्तरज्झयणसुत्तं—संकेत—उत्त०

(प्रति क) प्रकाशक—श्री एन० वी० वैद्य, पूना। (प्रति ख) प्रकाशक—पुष्पचंद्र खेमचंद वला (वाया) अहमदाबाद। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० ६७७ से १०६०।

२७—नंदीसुत्तं—संकेत—नंदी०

(प्रति क) समलयगिरि वृत्ति—प्रकाशक—आगमोदय समिति, बम्बई। (प्रति ख) सचूर्णि सहारिभद्रीय वृत्ति—प्रकाशक—जुहारमल मिश्रीलाल पालेसा, इन्दौर। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० १०६१ से १०८३।

२८—अणुओगदारसुत्तं—संकेत—अणुओ०

(प्रति क) सवृत्ति—प्रकाशक—आगमोदय समिति, मेहसाना। (प्रति ख) सचूर्णि सवृत्ति—प्रकाशक—ऋषभदेव केसरीमल, रतलाम। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० १०८५ से ११६३।

२६—आवस्सयसुत्तं—संकेत—आव०

(प्रति क) समलयगिरि वृत्ति—भाग १-२ प्रकाशक—आगमोदय समिति, मेहसाना। भाग ३—प्रकाशक—देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धारक फण्ड। (प्रति ख) प्रकाशक श्वे० स्थानकवासी शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट। (प्रति ग) सुत्तागमे द्वितीय भाग पृ० ११६५ से ११७२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३०—कप्पसुत्तं—संकेत—कप्पसु०

प्रकाशक—साराभाई मणिलाल, अहमदाबाद ।

३१—सभाष्यतत्त्वार्थ सूत्र—संकेत—तत्त्व०

प्रकाशक - परमश्रुत प्रभावक मंडल, खाराकुवा, बम्बई २ ।

३२—तत्त्वार्थ सर्वार्थसिद्धि—संकेत—तत्त्वसर्व०

प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी ।

३३—तत्त्वार्थवार्तिक (राजवार्तिक)—संकेत—तत्त्वराज०

प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी । भाग २ ।

३४—तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार—संकेत—तत्त्वश्लो०

प्रकाशक—रामचन्द्र नाथारंग, बम्बई ।

३५—तत्त्वार्थसिद्धसेन टीका—संकेत—तत्त्वसिद्ध०

भाग २—प्रकाशक—जीवनचन्द साकेरचंद जवेरी, बम्बई ।

३६—कर्मग्रंथ—संकेत—कर्म०

भाग ६—प्रकाशक—श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर ।

३७—गोम्मटसार (जीवकांड)—संकेत—गोजी०

प्रकाशक—परमश्रुत प्रभावक मंडल, बम्बई ।

३८—गोम्मटसार (कर्मकांड)—संकेत—गोक०

प्रकाशक—परमश्रुत प्रभावक मंडल, बम्बई ।

३९—अभिधान राजेन्द्र कोश—संकेत—अभिधा०

प्रकाशक—श्री सौधर्म बृहत्तपागच्छीय—जैन श्वेताम्बर समस्त संघ, रतलाम ।

४०—पाइअसद्दमहण्णवो—संकेत—पाइअ०

प्रकाशक—हरगोविन्दलाल त्री० सेठ, कलकत्ता ।

४१—महाभारत—संकेत—महा०

प्रकाशक—गीताप्रेस, गोरखपुर । नीलकण्ठी टीका, वेंकटेश्वर, बम्बई ।

४२—पातञ्जल योग दर्शन—संकेत—पायो०

४३—अंगुत्तरनिकाय—संकेत—अंगु०

प्रकाशक—बिहार राज्य पालि प्रकाशन मंडल, नालंदा, पटना ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूल पाठों का शुद्धिपत्र

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२।२५	कम्सलेस्सा	कम्मलेस्सा
३।४	जीव	जीवं
३।६	सरूवीं	सरूवी
४।१२	लेस्सागइ	लेस्सागई
४।१३	लेस्साणुवाय-गइ	लेस्साणु-वायगई
४।१६	सिओसिणं-तेऊलेस्सं	सीयोसिणं-तेयलेस्सं
४।१७	सियलीयं-तेऊलेस्सं	सीयलीयं-तेयलेस्सं
४।२७	बजलेस्सं	वजलेस्सं
४।२८	बइरलेस्सं	वइरलेस्सं
५।८	लेस्साअणुवद्ध	लेस्साणुवद्ध
५।११	अविशुद्ध-लेस्सतरागा	अविसुद्ध-लेस्सतरागा
५।१२	चक्खुलोयण-लेस्सं	चक्खुल्लोयण-लेस्सं
५।२८	कईसु	कइसु
५।२९	कालेएणं	कालएणं
६।१	साहिज्जई	साहिज्जइ
६।२	लोहियेणं	लोहिएणं
६।२	पह्मलेस्सा	पम्हलेस्सा
६।६	पन्नते	पन्नत्ते
६।७	अट्टफासे	अट्ठफासे
६।१०	अवट्टिए	अवट्ठिए
७।६,७	गुरू	गुरु
७।२१	बुच्चइ	वुच्चइ
८।३	सेकिंतं	से किं तं
८।४	उरालिय	उरालियं
८।६	परिणामए	परिणामिए
८।११	कइविहे	कइविहे पन्नत्ते
८।२५	केणट्ठेणं	केणट्ठेणं

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९।२	१	१ जीवोदय-निप्फन्ने
९।२	पन्नते	पन्नत्ते
९।१६	सुग्गइ	सुगइ
१०।२५	तिविधात्र्य	विधात्र्य
११।१	दर्शना	दर्शन
११।८	योगान्तगर्त	योगान्तर्गत
१४।३	जावफंदणं	जीवफंदणं
१४।७	भवन्तीत्य-न्येतन्न	भवन्तीत्ये-तन्न
१५।२०	छणंपि	छण्हंपि
१६।७	मनुणुन्नाओ	मणुन्नाओ
१७।३	असंकिलि-ठ्ठाओ	असंकिलि-ट्ठाओ
१८।१९	नोआगतो	नोआगमतो
१९।७	अज्झयेण	अज्झयणे
१९।८	नोआगतो	नोआगमतो
१९।९	पोत्यगइसु	पोत्यगाइसु
२०।८	गोगमा	गोयमा
२०।९	व	वा
२०।१२	वीरए वा	वीरए इ वा
२०।१३	अक्कंतरिया	अक्कंततरिया
२१।१	वणराई	सामा इ वा वणराई
२३।२५	चन्दे।	चंदे
२४।७	सुक्विल्लएणं	सुक्किल्लएणं
२५।२४	घोसाडइफले	घोसाडईफले
२६।१६	रसो	य रसो
२७।२९	आसएणं	आसाएणं
२८।१५	आदंसिय	आदंसिया
२८।१७	एतो	एत्तो
२८।२०	खजूर	खज्जूर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९।७	व	य
२९।१४	सीयललु-क्खाओ	सीयलु-क्खाओ
२९।२५	निद्धण्हाओ	निद्धुण्हाओ
३०।१४	समुग्घादे	समुग्घादे
३१।२,३	गुरू	गुरु
३१।६,१३	लेस्सागइ	लेस्सागई
३१।१६	तावण्णताए	तावण्णत्ताए
३२।११	केणठ्ठेणं	केणट्ठेणं
३४।६	नीललेस्सं	नीललेस्सं काऊलेस्सं
३४।१८	तावन्नत्ताए,	तावन्नत्ताए, णो तागंधत्ताए,
३६।३१	मिच्चादंसण	मिच्छादंसण
३७।२०	अस्संखिज्जा	असंखिज्जा
३८।१८	तेत्तीसं	तेत्तीसा
४१।३	सम्मणे	समणे
४१।३,६	संखित	संखित्त
४१, ४२	पाठ '२५.२ में तेउ, तेऊ की जगह तेय पढ़ें।	
४३।४	मालवागाणं	मालवगाणं
४३।१६	वीइ-	वीई-
४३।२२	छम्मामास	छम्मास
४४।१	अणुत्तरो-वयाइयाणं	अणुत्तरो-ववाइयाणं
४४।२४	सुग्गइ	सुगइ
४५।१	सुग्गइ	सुगइ
४६।५	तल्लेसेस	तल्लेसेसु
४७।११	सव्वोत्थोवा	सव्वत्थोवा
४८।३	एएसट्ठयाए	पएसट्ठयाए
४८।३	पएसठ्ठयाए	पएसट्ठयाए
४८।६	दव्वठ्ठयाए	दव्वट्ठयाए
४८।१८	दव्वट्टयाए	दव्वट्ठयाए
४८।२५	पम्हलेस्साणा	पम्हलेस्सठाणा
४८।२६	दव्वठ्ठ	दव्वट्ठ-
४८।२८	दव्वट्टयाए	दव्वट्ठयाए

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८।२६	सुक्लेस्स	सुक्कलेस्स
४९।१	पएसट्ठाए	पएसट्ठयाए
४९।३	पएसठ्ठयाए	पएसट्ठयाए
५०।१५	पोग्गल	पोग्गला
५१।१	सुरिए	सूरिए
५१।६	तेणठ्ठेणं	तेणट्ठेणं
५१।१६	आदिट्ठावि	अदिट्ठावि
५२।४	वीइवयइ	वीईवयइ
५२।२५	परिणाम	परिणामे
५३।२१,२२	गरु, अगरु,	गुरु, अगुरु
५४।५	अस्संखिज्जा	असंखिज्जा
५४।५	समया वा	समया
५५।२५	?	? जीवोदय-निप्फन्ने
५५।२६	सेतं	सेत्तं
५८।२०	अट्टरुद्दाणि	अट्ठरुद्दाणि
५९।१४	नधरं	नवरं लेस्सा-परिणामेणं
५९।१७	जहा	सेसं जहा
६०।१६,२५	सव्वजीव	सव्वजीवा
६१।१	सइंदिकाए	सइंदियकाए
६१।२१	जाइ	जइ
६४।२५	नावत्तं	नाणत्तं
६६।१८	वायर	वायर
६६।२२	उपलेव्वं	उप्पलेणं
६६।२२	एकपत्तए	एगपत्तए
७२।२६	लेस्साओ पन्नत्ता	लेस्साओ
७३।२७	एरीणं-	एरीणं xxx
८१।१४	पंचिदिय	पंचिंदिय
८८।१६	सणकुमारे	सणंकुमारे
९२।२७	लेसाए	(लेसाए)
९३।१६	केवल	केवलं
९३।२१	ओ	ओ (उ)
९४।६	होंइस	होइ

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९६।८,२९	विशुद्ध	विसुद्ध
९६।८,२९	अविशुद्ध	अविसुद्ध
९६।२१	पंचेदिय	पंचेंदिय
९६।२८	पूव्वोववन्नगा	पुव्वोववन्नगा
९७।१	तेणठ्ठेणं	तेणट्ठेणं
९७।५	पूव्वोववण्णा	पुव्वोववण्णा
९८।१२	दव्वाइं	दव्वाइं
९९।४	(परिस्सउ)	(परिस्सओ)
९९।६	उवज्जितताणं	उवसंपज्जित्ताणं
९९।७	वीइक्क्कंते	वीइक्कंते
१०१।१४	ठ्ठिई	ट्ठिई
१०३।१	जीवा	जीवा०
१०३।६,१७	कालठ्ठिईएसु	कालट्ठिईएसु
१०४।८	कालठ्ठिईय	कालट्ठिईय
१०४।२२	उवन्नो	उववन्नो
१०६।९	सकरप्पभाए	सक्करप्पभाए
१०९।६	उवज्जित्तए	उववज्जित्तए
१११।१३	एसो'ति	एसो'त्ति
११२।३	जन्नकाल- ठ्ठिईओ	जहन्नकाल- ट्ठिईओ
११२।५	उक्कोसकाल- ट्ठिओ	उक्कोसकाल- ट्ठिईओ
११६।२२	पुढविक्का- इएसु	पुढविक्काइ- एसु० ?
११७।७	×××	?
११७।१४	आउक्काइया	आउक्काइया
१२०।२४	वत्तव्या	वत्तव्वया
१२३।११	ट्ठिईएस	ट्ठिईएसु
१२३।१२	ठ्ठिईएसु	ट्ठिईएसु
१२३।१२	सो चेव	सो चेव अप्पणा
१२३।१३	कालठ्ठिईओ	कालट्ठिईओ

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२४।११	गमयएसु	गमएसु वत्तव्वया भणिया एस चेव एयस्स वि मज्झिमेसु तिसु गमएसु
१२४।१३,१४	ठ्ठिइएसु	ट्ठिईएसु
१२५।१२	पुढविक्काइ- उद्देसए	पुढविक्काइय- उद्देसए
१२८।२९	आउक्कायाण	आउक्काइयाण
१२८।२९	वणस्सइका- याण	वणस्सइ- काइयाण
१३३।९	गमगा०	गमगा,
१३३।२२	देवे	देवे
१४२।६	सहस्रारेसु	सहस्सारेसु
१४४।२०	जो	णो
१४४।२१	बंधंति	बंधंति ×××
१५०।१४	दोण्णि	दोण्णि
१५२।२५	असेले (सीं)	अलेसे (सी।
१५४।१९	उव्वट्टइ	उववट्टइ
१५८।६	तदाऽन्याऽपि	तदाऽन्य- थाऽपि
१५८।८	युगपत्ताव- लेश्या	युगपत्ताव- ल्लेश्या
१५८।२२	उवज्जंति	उववज्जंति
१५८।२२	केणठ्ठेणं	केणट्ठेणं
१५९।१८	परणमइत्ता	परिणमइत्ता
१६०।१७	वित्थडेसु	वित्थडेसु वि
१६७।६	सेठ्ठिस्स	सेट्ठिस्स
१६७।२७	केवलीस्स	केवलिस्स
१६८।७	तिणठ्ठे	तिणट्ठे
१६८।११	अविसुद्धलेसं	अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं
१६८।१५	भंते	भंते !
१६९।१३	अप्पाएणं	अप्पाणेणं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७०।३०	अप्पण्णो	अप्पणो
१७१।१२	खेत्तं णो दूरं खेत्तं	खेत्तं
१७१।१३	जाणई	जाणइ
१७२।३	केणठ्ठेणं	केणट्ठेणं
१७२।८	तेणठ्ठेणं	तेणट्ठेणं
१७४।१६	आयारभा	आयारंभा
१७४।१७	तदुभयारंभा	तदुभयारंभा वि
१७४।२७	जेते	जे ते
१८०।१	मायोवउत्तो	मायोवउत्ते
१८१।१६	वधइ	बंधइ
१८२।२६	पाप-	पाव-
१८४।१६	काइयाणं वि	काइयाण वि
१८४।१७	वेइंदिय	वेइंदिय तेइंदिय
१८६।३०	दण्डग	दंडग
१८८।२५	वीससु	वीससु (पदेसु)
१८९।४	भन्ते !	भंते !
१८९।४	वंधी०	वंधी०
१८९।७	नेरइया वि	नेरइयाणं
१८९।१२	पंच्चिदिय	पंचिंदिय
१९०।२१	वंधिसए	जच्चेव वंधिसए
१९०।२२	जच्चेव उद्देस्सगा	उद्देसगा
१९१।६	देवेसु	देवेसु य
१९१।८	नेरइसु	नेरइएसु
१९२।१०	वधिसए	बंधिसए
१९२।३०	जेयंते	जे ते
१९३।१०	अठ्ठसु	अट्ठसु
१९३।११	नव दण्डग	नव दंडग
१९४।१४	जरस	जस्स
१९४।१६	वन्धिसए	बंधिसए
१९४।१६	परिवाड़ी	परिवाडी
१९५।११	बन्धन्ति	बंधंति
१९५।११	वेदेन्ति	वेदेंति
१९५।२०	वणस्सइ- काइया त्ति	वणस्सइ- काइय त्ति
१९५।२६	एवं कण्ह- लेस्सेहिं	जहा कण्ह- लेस्सेहिं
१९५।२७	काउलेस्सेहिं	काउलेस्सेहि
१९७।७	कम्मप्प-	कइ कम्मप्प-
१९७।१३	काउलेस्स	काऊलेस्स
१९८।१०	हंता ?	? हंता !
१९८।११	तेणठ्ठेणं	तेणट्ठेणं
१९८।१२	नवर	नवरं
१९९।१६	भते !	भंते !
१९९।२७	महड्ढिया	महिड्ढिया
१९९।२८	सव्वमहड्ढिया	सव्वमहिड्ढिया
२०१।२५	भन्नंति	भण्णइ
२०२।२२	किरियावाइ	किरियावाई
२०३।२	तिरिक्ख- जोणयाउयं	तिरिक्ख- जोणियाउयं
२०३।९	अन्नाणिया- वाई	अन्नाणिय- वाई
२०४।१५	तिरक्ख- जोणिया	तिरिक्ख- जोणिया
२०७।२१	अजोगी व	अजोगी न
२१२।२५	खुड्ढाग	खुड्डाग
२१४।५	चतारि	चत्तारि
२१४।५	अठ्ठ	अट्ठ
२१४।१४	भाणिया	भणिया
२२०।१९	कण्हलेस्सा	कण्हलेस्सा वा
२२०।१९	सुक्कलेस्सा	सुक्कलेस्सा वा
२२०।२२	कण्हलेस्सा	तहेव कण्हलेस्सा
२२१।७	कण्हलेस्सा वा	कण्हलेस्सा वा जाव
२२१।१२	वेओ	वेओ
२२१।१२	बंधन	बंधग
२२१।२२	जहन्ने णं	जहन्नेणं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२२।२	अंतोमुहुत्त-	अंतोमुहुत्त-	२५०।२०	पण्डितमरणे	पण्डितमरणं
	मब्भहियाइं	मब्भहियाइं	२५०।२३	व्यावृत्तितो	व्यावृत्तितो
२२४।३	समठ्ठे	समट्ठे	२५२।२	एए चिय	एएच्चिय
२३०।२	वेमाणिया	वेमाणिया	२५२।६	विचिंतं ति	विचिंतंति
	जाव	जाव जइ	२५२।१०	साहुवसाहुं	साहुवसाहं
		सकिरिया	२५३।११	घणंती	धणंती
		तेणेव भव-	२५७।२८	मुणी	मुणि
		ग्गहणेणं	२५८।११	इड्ढिए	इड्ढीए
		सिज्झंति,	२६०।१२	पासायणं	पासायाणं
		जाव	२६३।२६	ते	जे
२३३।२६	एएसिं	एएसि	२६३।२७	भुंजमाणा	भुंजमाणा जाव
२३८।१६	सुक्कलसाओ	सुक्कलेसाओ	२६६।१६	वद्धमाणस	वट्टमाणस
२३९।१७	गब्भतिरि या	गब्भतिरिया	२६७।१६	विउ०वित्ता णं	विउव्वित्ताणं
२४०।७	भन्ते !	भंते !	२६८।६	अरूवस्स	अरूविस्स
२४०।२३	देवीणं	देवीण	२६८।२०	सुक्किला	सुक्किल्ला
२४१।१३	कयरेहिंतों	कयरेहिंतो	२६९।१	तारणच्युत	तारणाच्युत
२४२।४	असंखेज्जकुणा	असंखेज्जगुणा	२७१।५	एवं	वन्नेणं पन्नत्ता एवं
२४२।४	नींललेस्सा	नीललेस्सा			
२४४।१	वेमा-	वेमा-	२७२।१	समजोइ०भूया	समजोइब्भूया
२४४।२४	तउलेसाण	तेउलेसाण	२७२।१२	एवंकरणया- एणंति	एवं करणयाए णं त्ति
२४५।८	देवणी	देवीण			
२४६।३	कइविहं	कइविहे	२७३।४	भवनपतिनां	भवनपतीनां
२४६।२६	निर्वृंति	निर्वृंत्ति	२७६।१६	भंते	मते
२४६।२६	जीवं	जींव	२८०।१	कण्हलेस्सं	कण्हलेस्सा नीललेस्सं
२४७।८	वढियं	वट्टियं			
२५०।७	उपस्थिता	अवस्थिता	२८१।१०	परिहार- विशुद्धि	परिहार- विशुद्धिक
२५०।१३	यदुक्त	यद्रुत			

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संदर्भों का शुद्धिपत्र

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५।६	पृ० ७८०	पृ० ७००
५।१७	पृ० ३२०	पृ० २२०
८।१४	पृ० ४०९	पृ० ४०८
८।१८	पृ७ ६६४	पृ० ६६४
८।२७	पृ० ४४१	पृ० ४११
१५।७	पृ० ३२०	पृ० ३९३
१५।१०	सू. १५	सू. १२
१६।१३	पृ० ६४९	पृ० ४४९
२४।६	गा ८	गा ९
२४।२८	पृ० १०४२	पृ० १०४६
४४।२५	सू. २२	सू. २२२
६०।२४	सर्व जी	सर्व जीव
६१।९	सर्व जी	सर्व जीव
६९।२६	सू. १३	प्र १३
६९।२६	पृ० २२३	पृ० ६२३
७१।५	प्र १	प्र १,५
७१।५	पृ० ८११	पृ० ८१०-८११
७२।४	व ३	व २
७४।२२	व २	व ३
७५।६	पृ० ८१२	पृ० ८१३
८०।१८,२३,२८	सू. ३८	सू. ३७, ३९
८१।३	सू. ३८	सू. ३७, ४०
८१।१०	सू. १	सू. ५६
८१।२०,२५	सू. १८१	सू. १३२
८२।७	प्र १	प्रति १
८२।१४,१९,२६	सू. १	सू. ५६
८३।४	सू. १	सू. ५६
८३।१०, १७, २२, २६, ३१	प्र १	सू. ५६
८४।७	प्र १	सू. ५६
८४।११	पृ० ४५८	पृ० ४३८

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८४।१६	प्र १	प्रति १
८४।२७	सू. ३९५	सू. ३१९
८५।४	सू. १८१	सू. १३२
८५।१४	उ ११।	उ ११। प्र २।
८६।१३	सू. ३९५	सू. ३१९
८६।२१	सू. १८१	सू. १३२
८६।२१	पृ० २०१	पृ० २०५
८७।११	सू. १८१	सू. १३२
८९।१०	प्र ५१	प्र ४९
९१।३०	पृ० ५७९	पृ० ५७८
९४।१३	पृ० १०४८	पृ० १०४७-८
९५।१५	सू. ६७	सू. ५७
९७।३	पृ० ४३५	पृ० ४३५-६
९७।१६	३१	उ १
१०८।४	प्र ७।८	प्र० ७८
१०९।२६	पृ० ८२५।२७	पृ० ८२५-२७
११२।१७	पृ० ६२९	पृ० ८२९
११७।१०	प्र ५५	प्र ५६
१२०।२७	प्र १०-१२	प्र १०-११
१३७।८	प्र ३-४	प्र २-३
१३७।१५	प्र ३-७	प्र २-७
१५१।३	पृ० २५९	पृ० २५८
१५८।११	प २७	प १७
१६५।२०	प्र ९६-९७	प्र ९५-९७
१७३।१३	श १९	श १८
२०१।१३	पृ० १०६	पृ० १०६०
२३३।१२	सू. २३५	सू. २४५
२४५।२०	पण्प	पण्ण
२५६।२०	६ महावग्गो	छक्कनिपातो। ६ महावग्गो
२५७।८	६ महावग्गो	छक्कनिपातो। ६ महावग्गो
२६१।१२	पृष्ठ ४५१	पृ० ४५०-४५१
२८१।२३	गा १२	गा २३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी का शुद्धिपत्र

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१।३	लेश्या	लेस्सा	४६।१३	द्रव्यों ग्रहण	द्रव्यों को ग्रहण
१।१६	व्युतयन्न	व्युत्पन्न	४६।११	द्रव्यार्थिक	द्रव्यार्थिक की
२।३,१०	संस्कृति	संस्कृत	५२।८	सूर्यं	सूर्य
३।१८	दिप्ति	दीप्ति	५३।१५	लेश्वा	लेश्या
१२।१५	स्वोपग्य	स्वोपज्ञ	५४।१	लेश्या-स्थान	भावलेश्या-स्थान
१७।६	संक्लिष्ठ	संक्लिष्ट	५६।५	यावतू शक्ल लेश्या	यावत् शुक्ल-लेश्या
१७।८	दुर्गतिगमी	दुर्गतिगामी			
१७।२२	अपक्षाओं	अपेक्षाओं	५६।२०	गोम्भरसार	गोम्मटसार
१७।२३,२५	उत्तराज्झययणं	उत्तरज्झयणं	५६।२६	शास्वत	शाश्वत
१८।१३	संक्लिष्ठत्व	संक्लिष्टत्व	५८।२६	चित्शान्त	चित्त शान्त
२०।२३	के अंकतकर	अकंतकर	५९।२६	स्तनित् कुमार	स्तनितकुमार
२१।१२	के शिकर	केशिकर	६०।५	तिर्यचपचेन्द्रिय	तिर्यंच पंचेन्द्रिय
२१।१४	अकंतर	अकंतकर	६१।१६	लेश्या	लेशी
२४।१०	मयुर	मयूर	६२।२०	पक्षी	पक्ष
२४।१२	केनर	कनेर	६४।२१	नारकी	नरक
२४।१२	मुचकन्द	मुचकुन्द	६६।१५,	प्रत्येक	प्रत्येक शरीर
२५।३	लेश्यार्ओ	लेश्याओं	६६।१७	प्रत्येक	प्रत्येक शरीर
२७।५	तिंदक	तिंदुक	७०।४	पूर्वोक्त	पूर्वोक्त
२८।४	श्रेष्टवारूणी	श्रेष्ठवारुणी	७२।५	कलत्थी	कुलत्थी
२८।६	श्रेष्ट	श्रेष्ठ	७२।१३	कुसम्भ	कुसुम्भ
२८।२४	शिद्धार्थिका	सिद्धार्थिका	७३।७	तवखीर	अवखीर
३१।६	सथा	तथा	७३।८	सुकंलितृण	सुंकलितृण
३४।१४	लेश्याओं	द्रव्यलेश्याओं	७३।१५	अभ्ररूह	अभ्ररुह
३७।११	पुरूषाकार	पुरुषाकार	७४।२५	छत्रोंध	छत्रोघ
३७।२३	कृष्णलेष्या	कृष्णलेश्या	७४।२५	कस्तुम्भरी	कुस्तुम्भरी
३८।३	में परिणमन	परिणमन	७४।२५	शिरिष	शिरीष
३९।५	असंख्यामवें	असंख्यातवें	७५।७	रूपी	रूपी,
४०।४	लेश्या	द्रव्यलेश्या	७५।८	कस्तुंभरी	कुस्तुंभरी
४०।१३	मुहुर्त	अन्तर्मुहूर्त	७५।९	कस्तुबरि	कस्तुंबरि
४१।८	अपान-केन	अपानकेन	७५।९	निगुडी	निर्गुंडी
४१।१३	अचित्	अचित्त	७५।११	भालग	मालग
४२।२५	प्राप्त	प्राप्ति	७५।११	गजभारिणी	गजमारिणी
४३।१२	उद्देश	उद्देशक	७५।१२	अल्कोल	अंकोल्ल
४४।१०	इशानवासी	ईशानवासी	७५।१०	सिन्दुवार	सिंदुवार,
४६।१०	लेश्या के	लेश्या की	८६।१	कपोत	कापोत
			८८।२३	माहिन्द्र	माहेन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८।२३	लातंक	लांतक	२०८।३०	मनुप्यायु	मनुष्यायु
८८।२५	मनुप्य	मनुष्य	२०९।८	तीयंच	तिर्यंच
८९।११	गुणस्थान	गुणस्थान के	२०९।१६	कृष्णलेश्या	कृष्णादि लेश्या
८९।१७	जीव में	जीवों में	२०९।१६	अपेक्षा	अपेक्षा से
८९।२६	जीवों में	जीव	२१२।८	मेंए क	में एक
९०।२६	एक लेश्या	एक शुक्ललेश्या	२१५।८	कृययुग्म	कृतयुग्म
९१।१	दोनो	दोनों	२१५।२१	उपयुक्त	उपर्युक्त
९४।१८	जधन्य	जघन्य	२२३।२४	उत्तर में हैं	उत्तर में
९७।१२	वाणव्यंतर	वानव्यंतर	२२३।२४	नहीं हैं	नहीं है
९८।२१	वैमाणिक	वैमानिक	२२४।१७	सज्ञी	संज्ञी
१००।२३	जघन्यस्थिति	जघन्यकालस्थिति	२२४।२१	भाग देने	भाग देने पर
१००।२५	जीवनस्थान	जीवस्थान	२२४।२४	समान हैं	समान है
१०७।१७	योग्य जो जीवों	योग्य जीवों	२२५।१	निरन्त	निरन्तर
१०७।२४	तमप्रभापृथ्वी	तमप्रभापृथ्वी के	२२८।२	राशीयुग्म	राशियुग्म
१११।३०	देवों में होने	देवों में	२३२।९,१०	परंपरोपन्न	परंपरोपपन्न
११३।२९	जीवों से	जीवों में	२३८।४,२८	किया हैं	किया है
११४।२७	चेंन्द्रिय	पंचेंद्रिय	२४७।१२	निवृत्त	निर्वृत्त
१३९।२८	उत्पन्न योग्य	उत्पन्न होने योग्य	२४९।९	इनके	इसके
१३९।३१	प्रथम के ×××	प्रथम के तीन	२४९।२१	शैलेशत्व	शैलेशीत्व
१४०।१९	योग्य	होने योग्य	२६४।२०	उद्योतित	उद्द्योतित
१४२।१५	होने योग्य योग्य	होने योग्य	२६८।१५	कर्कश	कर्कशत्व
१४६।१	यावत	यावत्	२७०।३,१६	वर्णं	वर्ण
१५३।२६	जीव	एकेन्द्रिय जीव	२७७।२८	ग्रैवेक	ग्रैवेयक
१५९।२९	संवंध से	सम्बंध में	२७८।१	अनुंत्तरौ पपातिक	अनुत्तरो-पपातिक
१६३।२७	संख्यात लाख	असंख्यात लाख			
१६८।२३,	देवी व	देवी वा	२७८।१२	वकुस	वकुश
१६८।२४	देवी व	देवी वा	२८०।१७	अैर	और
१८७।२४	परंपराहरक	परंपराहारक	सर्वत्र	संख्यात्	संख्यात
१९०।१२	वक्तव्यता	वक्तव्यता	सर्वत्र	असंख्यात्	असंख्यात
१९१।२५	,अलेशी	शुक्ललेशी,	सर्वत्र		मुहूर्त
	शुक्ललेशी,	अलेशी	सर्वत्र		अन्तर्मुहूर्त
१९३।२०	क्योंकि जीव	जीव	सर्वत्र	संमूर्छिम	संमूर्च्छिम
१९८।२१	लेश्या में	लेश्या से	सर्वत्र	वाणव्यंतर	वानव्यंतर
२००।२८	कोई आचार्य	कई आचार्य	सर्वत्र	निग्रन्थ	निर्ग्रन्थ
२०२।१५	तधा	तथा	सर्वत्र	मनुप्य	मनुष्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृपया इस ग्र[illegible]को निम्नांकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi